समाधि के सोपान

महर्षि पतंजलि के साधनपाद पर प्रवचन

परमगुरु ओशो
के श्री चरणों
में अहोभाव
के साथ

–स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिलाः सोनीपत, हरियाणा
131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565
+91-7988969660
+91-7015800931

साधन-पाद में प्रवेश के पूर्व

प्यारे साधक–साधिकाओ, योग–पथ के पथिको, जिज्ञासु मित्रो,

नमस्कार।

अध्यात्म के जगत में पतंजलि ऐसे सितारे हैं जैसे विज्ञान के जगत में आइंस्टीन। और उनके 'योग–सूत्र' के ऊपर ओशो ने जो अपने अमृतज्ञान की गंगा बहायी है... आज के युग में, आज के मनुष्य के लिए, आज की भाषा में, पतंजलि को समझने योग्य बना दिया। साधन–पाद समझने के पूर्व, आओ, पतंजलि के समाधि–पाद पर एक विहंगम दृष्टि डालें।

'जहां खड़े हम लहराता संसार समुंदर, चल हंसा उस देश जहां है मानसरोवर' ... जहां हम रह रहे हैं वह हमारा देश नहीं है, हमारा घर नहीं है। इस तन–मन में हम जी रहे हैं, किन्तु हमें जाना है चेतन में क्योंकि हम मानसरोवर के हंस हैं। कैसे जाएं?

'आओ जाने हम अब अनुशासन योग का, चित्त से वियोग का, आत्मा से योग का'... कुछ खास नहीं करना है, तन–मन से जो हमारा तादात्म्य हो गया है, उसे तोड़ना है और चेतन से तादात्म्य को जोड़ना है। कैसे रोकें वृत्तियों को मन बड़ा चंचल है, दिन–रात जाल बुनता रहता यह प्रतिपल है।

पतंजलि 'योग' की परिभाषा करते हैं– चित्तवृत्ति का निरोध ही कहलाता है योग। साधक के भीतर जब बोध घटित होता है, तब स्वयं में साक्षी स्थापित होता है। सारे धर्म का सार–सूत्र एक शब्द में आ जाता है, वह है 'बोध', वह है 'साक्षी'। स्वयं में स्थित होना ही स्वस्थ होना है, स्वयं से दूर चले जाना रुग्ण हो जाना है। स्वयं से दूर चले जाना व्याधि है, स्वयं में स्थित हो जाना समाधि है। जब चेतना मन से तादात्म्य स्थापित कर लेती है, फिर वह भी वृत्तियों के जैसी ही दिखती है।

'समाधिपाद' के चौथे सूत्र में पतंजलि कहते हैं– चेतना दर्पण के समान है, आइने जैसी। जो भी दृश्य उसके सामने आता है, वह उसके भीतर झलकता है और उससे आइडेंटिफिकेशन हो जाता है। मन में पांच ढंग की होती हैं वृत्तियां, इनसे ही बनती हैं सुख–दुख की स्थितियां। हमारा मन ही स्वर्ग और नर्क का निर्माता है। जिंदगी चलाती हैं ये मन की पांच वृत्तियां– सच्चा ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, नींद, कल्पना, स्मृतियां।

पतंजलि का आठवां सूत्र– 'विपर्यय कथा है जिसमें झूठ ज्यादा, सत्य कम, रस्सी में होता है जैसे सांप का मिथ्या भ्रम'। नौवां सूत्र– 'अर्थ है विकल्प का मात्र एक कल्पना, शब्दों से जन्मी हुई झूठी बिल्कुल धारणा'। शब्दों और भाषा के पीछे हमारा मन जाता है और हम एक कल्पना खड़ी कर लेते हैं, जिसके पीछे कोई ठोस सच्चाई नहीं होती, कोई वास्तविकता नहीं होती। कोरे शब्द और शब्द हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं! 'सिम्बॉल्स' हमारे

लिए सत्य से ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाते हैं। साधक को चाहिए कि वह अपने भीतर गौर से देखे, कहीं भाषा, विचार और शब्द, सत्य के ऊपर आवरण तो नहीं बन गए!

स्वप्नरहित सुषुप्ति में चेतना सो जाती जब, विषयों की मौजूदगी पता नहीं चलती तब... गहरी नींद की बड़ी सुंदर व्याख्या पतंजलि ने की है... किसी विषय का पता न चलना।

'अनुभवों की यादें ही कहलाती हैं स्मृतियां,

पैदा उनको करती हैं चित्त की ही वृत्तियां'... नींद की भी स्मृति बनती है। सुबह उठकर तुम कहते हो कि आज बड़ी अच्छी नींद आई। इसका मतलब है कि कहीं स्मरण है कि नींद में क्या हुआ, बहुत अचेतन ही सही। तो बाकी की अन्य चार जो वृत्तियां हैं, उन सबसे एक पांचवीं वृत्ति पैदा हो जाती है, उसका नाम है स्मृति।

'वैराग्य से रुक जाता बाहर को जाता मन,

अभ्यास से संचालित होता है भीतर सुमिरन'... एक्स्ट्रोवर्सन की हमारी आदत बन गई है। बाहर से वैराग्य हो तभी 'इंट्रोवर्सन' एक नई आदत शुरू होगी, ध्यान की अंतर्यात्रा शुरू होगी।

'आत्मस्मरण में जीने का योगी करता सदा प्रयास,

स्वयं में स्थित होने की कोशिश कहलाती अभ्यास'... धीरे-धीरे एक नई आदत बनानी होगी, अपने भीतर डूबने की, आत्मस्मरण में जीने की।

पतंजलि बड़ी क्रमिक धीमी-धीमी गति से चलते हैं। ए, बी, सी से लेकर एक्स, वाई, जेड तक। कहते हैं शुरुआत तो करो, जहां खड़े हो वहीं से शुरू करो। थोड़ी सी विरक्ति, थोड़ा सा वैराग्य, थोड़ा सा अभ्यास, थोड़ा सा सचेतन यत्न, धीरे-धीरे यही यत्न एक दिन सहज समाधि में ले जाता है। सत्रहवें सूत्र में पतंजलि कहते हैं, चार बातें समाधि में रहती हैं – तर्क, विचार, आनंदभाव, अस्मिता भाव। यह संप्रज्ञात समाधि है। नाममात्र की ही समाधि, उथली-उथली समाधि, ऐसा समझो बच्चे को हम के.जी. स्कूल में ले गए। यह के. जी. स्कूल नाममात्र का स्कूल है। बच्चा वहां खेल-खिलौनों से ही खेलेगा, अभी कोई पढ़ाई-लिखाई नहीं होने वाली। लेकिन बच्चे को समझाने के लिए हम कह देते हैं हां, यह स्कूल है। ठीक इसी प्रकार संप्रज्ञात समाधि को समाधि कह रहे हैं। चलो यहां से शुरू तो करो। दूसरी समाधि का नाम असंप्रज्ञात है, मिट जाते विषय किन्तु रहता संस्कार है। जो चार विषय कहे थे, अब वे तो नहीं रहे, लेकिन उनके संस्कार, उनकी कंडिशनिंग, उनके बीज रह गए।

'विदेही ही करुणावश वसुंधरा पर आते हैं,

असंप्रज्ञात अवस्था को सहज ही पा जाते हैं'...ये लोग जिन्होंने स्वयं को अपनी देह से भिन्न जान लिया, ऐसे विदेही भी फिर से पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। किस कारण? अब अपनी तो कोई कामना नहीं है, लेकिन करुणा है, दूसरों को सहयोग पहुंचाने की भावना है। ये लोग जन्म से ही बड़ी शीघ्रतापूर्वक सहज समाधि को पा लेते हैं। महर्षि रमण,

जे. कृष्णमूर्ति और हमारे परमसद्गुरु ओशो स्वयं इसके उदाहरण हैं। वे जन्मजात विलक्षण होते हैं और पिछले जन्मों से संपदा लेकर ही आए हैं और इस जन्म में बिना अधिक प्रयास के सहज रूप से असंप्रज्ञात समाधि को पा लिया। अन्य लोग पाते हैं एकाग्रता व श्रद्धा से, सम्यक् प्रयत्न द्वारा, स्मृति व प्रज्ञा से।

21वां सूत्र– संवेदनशील साधक शीघ्र सफल होते हैं, तुरावान सच्चे योगी मंजिल पा लेते हैं। जितनी तीव्रता होगी, उतनी शीघ्र मंजिल मिलेगी। अगर हमारी अभीप्सा अत्यंत सघन हो तो एक क्षण में भी घटना घट सकती है और अगर हमारी प्यास कुनकुनी–कुनकुनी हो तो जन्मों–जन्म भी लग सकते हैं।

'ओंकार में लय होना सुगम–समाधि द्वार है,

ईश्वर समर्पण भी ले जाता मन के पार है'... ओंकार में डूबो, इससे ज्यादा सुगम दूसरा कोई समाधि का द्वार नहीं। और भी समाधि के द्वार हैं, पर यह सुगमतम है, अनहद की ध्वनि में डूबना और ईश्वर के प्रति समर्पण भी। याद रखना, यहां पतंजलि 'भी' लगाते हैं। पतंजलि स्वयं भक्त नहीं हैं, लेकिन वे कहते हैं ईश्वर के प्रति समर्पण भी, भक्ति भावना भी मन के पार ले जाती है, समाधि में ले जाती है। एक छोटा सा फुटनोट, एक छोटा सा कमेंट छोड़ते हैं अपने 'योगसूत्र' में कि भक्ति भी एक मार्ग है। यदि कोई समर्पण भाव से जिए तो वह भी निर्बीज समाधि को पा लेगा।

'जीवन के दुख–कर्म–कामना जिसे नहीं हैं छूते,

उस आलोकित दिव्य चेतना को ही ईश्वर कहते'... पतंजलि की ईश्वर की परिभाषा हमारी आम धारणा से भिन्न है। सत्ताइसवां सूत्र– 'वेद कहें हरिओम तत्सत् यही प्रभु का नाम है, शब्द प्रणव या अनहद ही संतों का सतनाम है... गुरु सा जानो गोविंद को एक ओंकार सतनाम को, फिर भाव सहित पीते जाओ– इस अमृत हरिनाम को। क्यों इसे अमृत कहते हैं? विषय है विष। विषय यानी संसार में जो ऑब्जेक्ट्स हैं। वे हैं विष और इसलिए अमृत क्या है? स्वयं के भीतर अंतरात्मा में गूंज रहे ओंकार में डुबकी।

'ओंकार के सुमिरन से शीघ्र समाधि फलती है,

बाधाएं मिट जाती सब, महाचेतना जगती है'...

ओशो जिसे सुपर कॉन्शसनेस कहते हैं, पश्चिम के मनोवैज्ञानिक अभी तक इसे नहीं समझ पाए हैं। उन्होंने कॉन्शस माइंड और अनकॉन्शस माइंड, कलेक्टिव अनकॉन्शस और कॉस्मिक अनकॉन्शस तो खोज लिया। भारत के ऋषियों ने एक दूसरी दिशा में यात्रा की थी, सुपर कॉन्शसनेस, अति चैतन्यता, महाचेतना। वही समाधि की अवस्था है।

अकर्मण्यता, संशय, आलस, आसक्ति, प्रमाद, व्याधि, दुर्बलता, चंचलता व भ्रम में कैसे लगे समाधि? अब पतंजलि गिनाते हैं कि समाधि में कौन–कौन सी बाधाएं हैं। तनावग्रस्त मन घबराता जब कंपन देह में होता है, सांस असंतुलित हो तब दुख में ध्यान नहीं लगता है। ये हैं व्याधियों के लक्षण, बाधाओं के लक्षण। फिर कहते हैं कैसे ये दूर होंगी?

एकै साधे सब सधे, मिट जाते सब क्षोभ,
ओंकार में ध्यान से गिरते सब अवरोध'।

आगे के सूत्र बहुत स्मरणीय है हर साधक–साधिका के धर्म–पथ–प्रदर्शन लिए–

सुखी से मैत्री दुखी पे करुणा, पुण्यात्मा से खुश होना,
मन की शांति चाहिए तो पापी की उपेक्षा करना।
'धीमी–गहरी सांसें लेकर मन तनाव खोता है,
बाहर बारंबार रोक के बड़ा शांत होता है।
दिव्य अनुभवों से जगता है प्रबल आत्मविश्वास,
साधक पथ पर यूं चलता ज्यूं मंजिल बिल्कुल पास।
एक बार जब दिखने लगता भीतर शांत प्रकाश,
मन हो जाता मगन देखकर शोकांतक आकाश।
वीतराग जो हो गए उनसे जोड़ो अपना नाता,
पूर्ण गुरु का ध्यान सहज ही ले समाधि में जाता।
निद्रा के साक्षी हो जाओ सपनों के प्रति जागो,
बोध सहित निद्रा में डूबो सहज समाधि पाओ।
जो भी वस्तु प्रिय हो या कि सुंदर कोई चेहरा,
आकर्षक से शुरू करो तो ध्यान लगेगा गहरा।
साध्य बिंदु हो या सिंधु हो योगी रम जाता है,
और अंत में दृश्य न द्रष्टा, दर्शन रह जाता है'।

परमाणु से लेकर परम विराट आकाश तक जहां भी चाहे योगी उसमें रम जाता है। और अंततः केवल दर्शनमात्र रह जाता है। यहां से अद्वैत का बोध शुरू होता है। ऋतंभरा प्रज्ञा से जन्मे संस्कार जब आते हैं, मन में जमें अन्य पुराने संस्कार कट जाते हैं। जैसे कांटे से कांटा निकालो, ऐसे ही बस ऋतंभरा प्रज्ञा से अन्य संस्कार निकाल दिए जाते हैं।

ऋतंभरा के संस्कार भी जब खुद ही जल जाते हैं, तब योगी निर्बीज समाधि में परम मुक्ति को पाते हैं। पतंजलि के इन सूत्रों को अपने हृदय में गुनना, इन्हें जीना।

समाधि का अर्थ है सब सवालों का समाधान! निष्प्रश्न स्थिति– परमानंद की दशा!!

क्या आप चाहते हैं जीवन रूपी समस्या का समाधान प्राप्त करना?

तो स्वागत है, पतंजलि का 'साधन–पाद' समझने के लिए। समझकर प्रयोग में डूबने के लिए, ब्रह्म–ज्ञान का स्वाद चखने के लिए। योग शास्त्र के ये सूत्र, बौद्धिक चिंतन–मनन करने वालों के लिए व्याख्यान नहीं, बल्कि साधक–साधिकाओं हेतु निमंत्रण पत्र हैं।

आओ, सद्गुरु ओशो की प्रयोगशाला में प्रयोग करो, और स्वयं जानो। सप्रेम–

–स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

गुरु पूर्णिमा महोत्सव (22 जुलाई, 2013)

अनुक्रमांक

1. क्रियायोग के तीनसोपान 08
2. क्रियायोग से दुख का तनुकरण 13
3. दुख का मूल कारण 17
4. सुख–दुख के कारण 21
5. चार प्रकार के अज्ञान 26
6. अस्मिता : दुख का मूल कारण 30
7. आसक्ति : दुख की जन्मदात्री 34
8. द्वेष : कारण एवंनिवारण 39
9. मृत्यु : भय से मुक्ति 43
10. प्रतिप्रसवः क्लेश–मुक्तिका उपाय 48
11. लाख दुखों की एक दवा है ध्यान 52
12. कर्म बंधन का विज्ञान 56
13. कर्मबंध : एक शृंखला 60
14. जैसी करनी वैसी भरनी 64
15. वर्तमान में जीने की कला 68
16. चित्त से वियोग : आत्मा से योग 72
17. त्रिगुण तत्व काअतिक्रमण 76
18. त्रिगुण तत्व की चार दिशाएं 80
19. द्रष्टा एवं दृश्य का खेल 84
20. इन्द्रियों का इन्द्रधनुष 88
21. मुक्तपुरुषोंके लिए संसार स्वप्नवत् 92
22. संसार एक दर्पण 96
23. जागरूकता : मुक्ति का उपाय 100
24. ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय भेद 104
25. हंसा तो मोती चुगै 108
26. संबोधि के सात चरण 112
27. आष्टांगिक मार्ग 116
28. संतोषी परमसुखी 120
29. तपश्चर्या यानी सहज–सरल... 124
30. स्वाध्याय यानी आत्म–निरीक्षण 128
31. समपर्ण का विज्ञान 132
32. आसन 136
33. प्रयासरहित प्रयास 141
34. संतुलितजीवन 145
35. प्राणायाम 149
36. शूक्ष्म प्राणायाम 154
37. तमसो मा ज्योतिर्गमय 158
38. एकाग्रता 162
39. प्रत्याहार : रिटर्निंग टू द सोर्स 166
40. इन्द्रियों की गुलामी मुक्ति 170
41. धारणा 175
42. ध्यान क्या है? 179
43. समाधिः व्याधियों से मुक्ति 184
44. अष्टांग योग : एक विहंगम दृष्टि 189
45. संयम 195
46. मोक्ष क्या है? 200
47. ओशो एवं त्रिविर साहित्य 206

क्रियायोग के तीन सोपान

साधनपाद : 1

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः

क्रियायोग के तीन सोपान, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान;
सहज रहो प्रज्ञा साधो, अनहद में पाओ विश्राम।

महर्षि पतंजलि कहते हैं–क्रियायोग का अभ्यास दुखों को घटाने एवं समाधि की भावना को बढ़ाने में उपयोगी है।

आज से हम 'पातंजलि योग प्रदीपिका' दूसरा पाद– 'साधनपाद' शुरू करते हैं। सबसे पहले मैं जगत के समस्त योगियों को प्रणाम करता हूं। महर्षि पतंजलि को प्रणाम करता हूं और हमारे प्यारे सद्गुरू ओशो को नमन करता हूं, जिनकी कृपा से हम इन योगसूत्रों को समझ सके। साधनपाद के पहले सूत्र में पतंजलि कहते हैं– क्रियायोग एक प्रायोगिक प्राथमिक योग है। और वह संगठित हुआ है तीन बातों से– पहला सहज संयम अर्थात् 'तप', दूसरा स्वाध्याय अर्थात् स्वयं का अध्ययन और तीसरा ईश्वर के प्रति समर्पण अर्थात् ओंकार में डुबकी। इन तीनों बातों को एक–एक करके समझना।

क्रियायोग के तीन तत्व। पहला 'तप'– सामान्यतः तप से समझा जाता है अपने आप को सताना, अपने आप को पीड़ा और कष्ट देना। यह पतंजलि का अर्थ नहीं हो सकता। पतंजलि दुखवादी नहीं हैं, परमानंद की खोज में निकले, परमात्मा अर्थात् सच्चिदानंद उसकी शुरुआत दुख से कैसे होगी। निश्चित ही कहीं भूल–चूक हो गई है, पतंजलि को लोग समझ नहीं पाए। तपश्चर्या का अर्थ है, जीवन में जो दुख सहज रूप से आते हैं, उनको स्वीकारभाव से ग्रहण करना। उसको ही तप समझना। अलग से दुख आमंत्रित करने की जरूरत नहीं है। जीवन में वैसे ही काफी कष्ट हैं। इन कष्टों के प्रति साक्षीभाव जगाओ, इनके द्रष्टा बनो। मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की मृत्यु हुई। उम्मीद तो कर रहा था कि

जिंदगी में जिस प्रकार के कर्म किए हैं नर्क ही जाएगा, लेकिन बहुत आश्चर्य चकित हुआ। जब वो परलोक के दरवाजे पर पहुंचा तो वहां द्वारपाल ने कहा कि इन सज्जन को स्वर्ग भेजा जाए। नसरुद्दीन तो समझा कि उससे कोई भूलचूक हो गई। उसने कहा कि क्षमा करें, मैंने जिंदगी में ऐसे कोई काम किए नहीं कि मुझे स्वर्ग भेजा जाए, मैं तो जहन्नुम की सोच कर आया था और आप मुझे जन्नत भेज रहे हैं। द्वारपाल ने कहा तुम पृथ्वी से आए हो, शादीशुदा इंसान हो, मुसलमान हो, चार–चार शादियां की थीं। काफी नरक भोग के तुम आ रहे हो, अभी तुम्हें सीधा नरक भेजेंगे तो नर्क भी तुम्हें स्वर्ग जैसा मालूम पड़ेगा। वो आइंस्टीन का रिलेटीविटी का सिद्धांत सुना है न। चीजें सापेक्ष हैं, तुम महादुख भोग के आए। इतना महादुख तो नरक में भी नहीं है। तुम्हें सताने के लिए ही हम पहले स्वर्ग में भेज रहे हैं, पहले थोड़ा सुख का मजा ले लो फिर नरक में डाल के सताएंगे। जिंदगी में वैसे ही काफी कष्ट हैं। तप का अर्थ कष्ट आमंत्रित करना नहीं, कष्टों का नियोजन करना नहीं, बल्कि जब भी कोई दुख आन पड़े उसके प्रति द्रष्टाभाव और साक्षीभाव में जीना।

ओशो कहते हैं – क्रियायोग एक प्रायोगिक प्राथमिक योग है और वह निर्मित हुआ है तीन बातों से – तप यानी सहज–संयम, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण से। पहला शब्द गौर से समझना तप। तप यानि सहज–संयम। स्वपीड़कों ने सहज–संयम को स्वपीड़ा में बदल दिया है। वे सोचते हैं कि जितनी ज्यादा तकलीफ तुम अपनी देह को पहुंचाते हो, उतने ज्यादा तुम आध्यात्मिक बन जाते हो। शरीर को उत्पीड़ित करना एक मार्ग है आध्यात्मिक होने का। यही समझ होती है स्वयं को पीड़ा देने वालों की। देह को पीड़ा पहुंचाना कोई धर्म का मार्ग नहीं। उत्पीड़न सदा आक्रामक होता है, चाहे तुम दूसरों को सताओ या स्वयं को, यह बात ही हिंसक होती है। और हिंसक भावना कभी धार्मिक नहीं हो सकती। दूसरों के शरीर को उत्पीड़ित करने और तुम्हारे अपने स्वयं शरीर को उत्पीड़ित करने के बीच क्या भेद है? कोई भी भेद नहीं। शरीरमात्र ही दूसरा है, तुम्हारा अपना शरीर भी दूसरा है, तुम्हारा अपना शरीर थोड़ा निकट है, दूसरे का शरीर कुछ दूर है। बस इतना सा ही फर्क है, क्योंकि तुम्हारा शरीर ज्यादा नजदीक है इसलिए उसके तुम्हारे हिंसा का शिकार बनने की ज्यादा संभावना है। तुम सता सकते हो उसको और हजारों साल से तपस्वी लोग अपने शरीरों को तकलीफ पहुंचाते रहे, इस झूठी धारणा के साथ कि यही है ईश्वर की ओर ले जाने का मार्ग।

पहली बात ईश्वर ने तुम्हें शरीर दिया ही क्यों? उसने तुम्हें शरीर सताने के लिए नहीं दिया है। बल्कि इसके विपरीत परमात्मा ने तुम्हें देह दी है, अपनी संवेदनाओं को, संवेदनशीलताओं को, इंद्रियों को उनसे आनंदित होने के लिए, सताने के लिए नहीं। ईश्वर ने तुम्हें बहुत संवेदनशील बनाया है, क्योंकि संवेदनशीलता के द्वारा ही जागरूकता विकसित होती है। यदि तुम अपने आप को पीड़ा पहुंचाते हो तो तुम्हारे शरीर को तुम ज्यादा से ज्यादा संवेदनशून्य करते जाओगे। यदि तुम कांटों के बिस्तर पर लेटते हो तो धीरे–धीरे

तुम संवेदनशीलता खो दोगे। शरीर बन जाएगा संवेदनशून्य अन्यथा कैसे तुम निरंतर सहन कर पाओगे कांटों को। शरीर को एक तरह से मर ही जाना पड़ेगा, वह खो देगा अपनी सारी संवेदनशीलता। यदि तुम निरंतर खड़े रहते हो तपते सूरज की गर्मी में, शरीर स्वयं को बचाएगा असंवेदनशील होकर। यदि तुम हिमालय जाकर नग्न बैठ जाते हो जब कि बर्फ गिर रही है और सारी पर्वतमाला ढकी है बर्फ से तो धीरे–धीरे शरीर अपनी संवेदनशीलता को खो देगा। वह बन जाएगा मुर्दा।

जीवन अधिक होता है यदि तुम अधिक संवेदनशील होते हो, जीवन कम हो जाता है यदि तुम कम संवेदनशील होते हो। यदि तुम्हारे पास बिना किसी संवेदना का लकड़ी या पत्थर जैसा शरीर है तो जीवन बिल्कुल शून्य हो जाता है, जीवन वहां बचता ही नहीं। तुम पहले से ही पहुंच गए अपनी कब्र में। स्वयं को पीड़ा पहुंचाने वाले तपस्वियों ने ऐसा ही किया है। साधना एक प्रयास बन जाती है शरीर को और उसकी संवेदनशीलता को मारने का। मेरे देखे बिल्कुल विपरीत होता है ढंग। तप का मतलब उत्पीड़न नहीं, तप का मतलब है सहज–संयम, एक सरल जीवन। हर चीज को साधन बना लेना अपने होश के विकास का। दुख जगाने वाला है, दुख का भी उपयोग कर लेना इसका नाम है तप।

दूसरा है स्वाध्याय – स्वाध्याय का अर्थ शास्त्र और ग्रंथों का अध्ययन नहीं, गीता और वेद को कंठस्थ करना नहीं, स्वाध्याय का सीधा–सीधा अर्थ है सेल्फ स्टडी, अपने स्वयं का अध्ययन, अपने जीवन का विश्लेषण, निरीक्षण, गहन अवलोकन। किसी और शास्त्र को पढ़ने की जरूरत नहीं है, अगर हम अपने जिंदगी की किताब को पढ़ लें। लेकिन हम उससे चूकते ही चले जाते हैं। हमारी नजर हमेशा दूसरों पर होती है, कभी लौटकर स्वयं पर नहीं आती। मैंने सुना है चंदूलाल की शादी हुई। सुहागरात को ही चंदूलाल ने अपनी पत्नी से कहा कि देखो कुछ बातें मुझे तुम्हारी पसंद नहीं हैं, आज पहली ही रात मैं तुम्हें बता देना चाहता हूं। तुम इन्हें अपनी कमजोरियां समझ सकती हो। चंदूलाल की पत्नी बोली रहने दो जी रहने दो, मुझे सब पता है अपनी कमजोरियां। उन्हीं की वजह से तो मुझे कोई अच्छा पति न मिल सका और तुम जैसे निकम्मे से शादी हुई। दूसरे की कमजोरियां हमें बड़ी आसानी से दिखाई देती हैं, अपनी नहीं दिखाई देती। हमारे भीतर क्या चल रहा है दिखाई नहीं देता। कबीर साहब ने कहा है –

बुरा जो खोजन मैं चला बुरा न मिलिया कोय,
जो अंतस खोजा आपना मुझसे बुरा न कोय।

आध्यात्मिक व्यक्ति वह है जो स्वयं का निरीक्षण करने लगता है। दूसरों से नजर हटाता है, दूसरों से तुम्हें क्या लेना–देना। उनकी जिंदगी के वे मालिक हैं, उन्हें जीने दो अपने ढंग से। तुम तो बस अपना अवलोकन करो। क्या तुम वैसे जी रहे हो जैसे तुम्हें जीना चाहिए। तुम्हारे कर्मों में और भावनाओं में कोई भेद है, क्या तुम एक पाखण्ड भरा जीवन जी रहे हो या एक ऑथेन्टिक, ईमानदार, प्रामाणिक जीवन जी रहे हो। अपना निरीक्षण करो।

सुना है मैंने नसरुद्दीन की पत्नी की मृत्यु हुई। जब ले जा रहे थे अर्थी को, संयोग की बात एक वृक्ष से अर्थी टकरा गई और उस टकराहट में नसरुद्दीन की पत्नी उठ बैठी। वो वास्तव में मरी नहीं थी, सिर्फ बेहोश ही थी। फिर वापिस घर ले आए, कोई तीन साल वह और जीवित रही। तीन साल बाद पुनः उसकी मृत्यु हुई। खूब अच्छे से जांच–पड़ताल कर ली गई कि इस बार कहीं बेहोश तो नहीं, सचमुच में मर गई है। नसरुद्दीन छाती पीट–पीट के रो रहा था कि हाय मैं कैसे जिंदगी गुजारूंगा, बिना पत्नी के कैसे रहूंगा, यही तो मेरी जिंदगी थी। और बड़ी ऊंची–ऊंची काव्यात्मक बातें कह रहा था। फिर जब अर्थी बांध के ले जाने लगे और जब उस पेड़ के पास पहुंचे, नसरुद्दीन ने कहा भाइयों सावधान! फिर से पेड़ से न टकरा जाना। जानते हो तुम्हारी छोटी सी गलती की सजा मुझे तीन साल भुगतनी पड़ी है। अभी कह रहा था यही मेरी जिंदगी है, इसके बिना मैं जी न सकूंगा। भीतर कुछ और चल रहा है, अपना निरीक्षण करो, यही है स्वाध्याय। तब स्वाध्याय के द्वारा तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में रूपांतरण होना शुरू हुआ। जिस व्यक्ति को अपने भीतर भूल–चूक दिखाई पड़नी शुरू हो गई, वह वैसा ही न रह पाएगा जैसा कि वह था, उसे बदलना ही होगा। लेकिन हम अपनी गलती देखें तब न, हम अपना अध्ययन करें तब न! तो बाहरी वस्तुओं का भी ठीक से अध्ययन नहीं कर पाते।

मैंने सुना है कि एक स्त्री ने अपने पति को मायके से खत लिखा। मैं आपको पढ़ कर सुनाता हूं उसमें क्या लिखा है। मेरे प्यारे जीवनसाथी! मेरा प्रणाम आपके चरणों में। आपने अभी तक चिट्ठी नहीं लिखी। मेरी सहेली को नौकरी मिल गई है, हमारी गाय ने बछड़ा दिया है, दादाजी ने शराब पीनी शुरू कर दी है। मैंने तुमको बहुत खत लिखे पर तुम नहीं आए। कुत्ते के बच्चे भेड़िया खा गया, दो महीने का राशन छुट्टी पर आते वक्त ले आना। एक खूबसूरत औरत इस वक्त टी.वी. पर गाना गा रही है। हमारी बकरी बेच दी गई है, तुम्हारी मां तुमको याद कर रही है। एक पड़ोसन हमें बहुत तंग करती है। तुम्हारी बहन सिरदर्द से लेटी है। तुम्हारी दासी तुम्हारी पत्नी।

जब यह चिट्ठी पति के पास पहुंची, उसने इसे किस प्रकार से पढ़ा जरा देखना। सिर्फ पूर्णविराम की भूल, पत्नी ने पूर्णविराम नहीं लगाए थे, ज्यादा पढ़ी–लिखी नहीं थी। पति ने इसको पढ़ा इस प्रकार से, मेरे प्यारे जीवनसाथी मेरा प्रणाम आपके चरणों में, आपने अभी तक चिट्ठी नहीं लिखी मेरी सहेली को, नौकरी मिल गई है हमारी गाय को, बछड़ा दिया है दादाजी ने, शराब पीनी शुरू कर दी है मैंने, तुमको बहुत खत लिखे पर तुम नहीं आए कुत्ते के बच्चे, भेड़िया खा गया दो महीने का राशन, छुट्टी पर आते वक्त ले आना एक खूबसूरत औरत, इस वक्त टी.वी. पर गाना गा रही है हमारी बकरी, बेच दी गई है तुम्हारी मां, तुमको याद कर रही थी एक पड़ोसन, हमें बहुत तंग करती है तुम्हारी बहन, सिरदर्द से लेटी है तुम्हारी दासी, तुम्हारी पत्नी। हम अध्ययन भी करते हैं तो भूल हो जाती है। स्वयं का जरा ठीक से अध्ययन करना।

और तीसरी बात पतंजलि कहते हैं, समर्पण। मुझे याद आता है एक व्यक्ति ओशो के पास आया और कहने लगा कि मैं संन्यास दीक्षा लेकर बस जो आप कहेंगे वही करना चाहता हूं। ओशो ने कहा ठीक, संन्यास दीक्षा लो। ये रहा तुम्हारा नया नाम और जाकर अपने घर–द्वार को सम्हालो, घर–गृहस्थी की जिम्मेदारी पूरी करो। वह कहने लगा कि नहीं, मैं तो आश्रम में ही रहूंगा, जो आप कहेंगे वही करूंगा। ओशो ने कहा मैं कह तो रहा हूं तुम अपने घर जाओ, तुम्हारे पत्नी, बच्चे, बूढ़े माता–पिता सभी तुम पर निर्भर हैं, उनका ख्याल रखो। उसने कहा कि अब मैं घर नहीं जाने वाला, अब तो मैं पूरी तरह समर्पित हूं, जो आप कहेंगे, वही करूंगा। समर्पण में भी हमारी जिद... समर्पण भी समर्पण नहीं रह जाता।

ईश्वर के प्रति समर्पण में तुम देखना कि कहीं कोई चालबाजी तो नहीं। मंदिर, मस्जिद, चर्चों में जाकर लोगों की प्रार्थनाएं सुनो। वे परमात्मा से भी नौकर–चाकर की तरह अपना काम कराना चाह रहे हैं, अपनी मर्जी पूरी कराना चाह रहे हैं और सोच रहे हैं कि हम भक्त हैं, हम प्रार्थना कर रहे हैं। और उनकी प्रार्थनाओं का सार निचोड़ क्या है? संक्षेप में सारी हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, जैन प्रार्थनाओं का सार निचोड़ यही है कि हे ईश्वर, तुझे अकल नहीं है, मुझ समझदार की सलाह मान और ऐसा–ऐसा कर जैसा मैं बता रहा हूं। सारी प्रार्थनाओं का सार निचोड़ यही है। अच्छे–अच्छे शब्दों में हम अपनी मर्जी मनवाना चाहते हैं, ये समर्पण न हुआ।

ईश्वर के प्रति समर्पण का अर्थ है, ईश्वर की मर्जी से तो जगत चल ही रहा है, तुम इसमें आनंदित होओ, उत्सव मनाओ, तब पता चलेगा कि तुम ईश्वर की मर्जी से राजी हो। वरना तुम्हारी नाराजगी प्रगट होती है। तुम कहते हो, हे प्रभु ऐसा कर दे, हे प्रभु वैसा कर दे। इसका अर्थ है कि तुम प्रसन्न नहीं हो। तुम्हारा उत्सव मनाना, तुम्हारा प्रसन्न होना ही, तुम्हारे समर्पणभाव को दिखाएगा। ईश्वर–प्रणिधान का दूसरा अर्थ है, ओंकार में डुबकी। भीतर जो अनाहत नाद गूंज रहा है, उसमें डूबना है, समाधि में लीन होना है। इन तीन बातों को साधो, यही क्रियायोग है।

धन्यवाद!!

क्रियायोग से दुख का तनुकरण

साधनपादः 2

समाधिभावनार्थः क्लेशतनुकरणार्थश्च

क्रियायोग का साधन करने से दुख घट जाता है;
साधक समाधि पथ पर धीरे–धीरे बढ़ जाता है।

पतंजलि के अनुसार दुख उत्पन्न होने के मुख्य कारण इस प्रकार हैंः अविद्या यानी जागरूकता की कमी, अहंकार, मोह, घृणा, जीवेषणा और मृत्यु–भय।

साधनपाद का दूसरा सूत्र– पतंजलि कहते हैं क्रियायोग का उपयोग करने से धीरे–धीरे दुख कम होने लगता है, क्रमशः तनुकरण होने लगता है। मुझे याद आता है पश्चिम के महान् दार्शनिक और विचारक ज्यां पाल सार्त्र का वचन– 'द अदर इज हेल', दूसरा नर्क है। सार्त्र के चिंतन–मनन का, जिंदगी भर के सोच–विचार का सार निचोड़ है कि दूसरा नर्क है। ओशो ने इसमें सुधार किया है। दूसरा नर्क नहीं है, दूसरापन नर्क है। द अदर इज नॉट हेल, द अदरनेस इज हेल। जब तक दूसरेपन का भाव है किसी के प्रति हमारे मन में, जब तक हम इस जगत को स्वयं के एक्सटेंशन की भांति नहीं देख रहे हैं, तब तक दुख रहेगा। और इसलिए केवल अध्यात्म के द्वारा अद्वैत का अनुभव करने पर ही दुख समाप्त होता है। पतंजलि का वचन बिल्कुल ठीक, सार्त्र का वचन अधूरा है। वह यह तो बता रहा है कि दुख का कारण क्या है, लेकिन इसका निदान क्या हो, इस बीमारी का इलाज क्या हो, पश्चिम के दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक उसे नहीं खोज पाए हैं। भारत के ऋषियों ने इस बात को खोजा।

जब तक द्वैतभाव है, दूसरापन है, जब तक हम स्वयं को अस्तित्व से भिन्न समझ रहे हैं, तब तक दुख रहेगा। जितनी मात्रा में यह द्वैतभाव गिरने लगेगा, एकता की अनुभूति होने लगेगी, उतना ही जीवन में दुख कम होने लगेगा। इसलिए तो प्रेम के क्षणों में सुख और

शांति महसूस होती है। क्यों? क्षणिक ही सही, थोड़ी देर के लिए ही सही, किसी एक व्यक्ति के प्रति ही सही, प्रेम के क्षणों में हमें लगता है दूसरा, दूसरा नहीं है। जैसे मेरे ही होने का हिस्सा हो गया। मैं उसमें समाहित हुआ, वह मुझमें समाहित हुआ, हम दो न रहे, एक हो गए। माना कि यह घटना ज्यादा देर तक नहीं रह पाती, हम फिर विलग हो जाते हैं और फिर दूसरापन आ जाता है और फिर अहंकार की दीवार बीच में खड़ी हो जाती है और फिर दुख शुरू हो जाता है। इसलिए तो प्रेमी–प्रेमिकाओं के बीच, पति–पत्नियों के बीच, भाई–भाइयों के बीच, पिता–पुत्र के बीच, जहां–जहां प्रेम का नाता है, वहां–वहां घोर दुख है।

याद रखना, जितना दुख आपको अपने लोगों से मिला है, उतना अजनबियों से नहीं मिला। कभी–कभी तो शत्रुओं से भी उतना दुख नहीं मिलता, जितना दुख आपको मित्रों से मिला है। जो आपके बहुत निकट हैं, करीबी हैं, उन्हीं के साथ आपके अहंकार की टकराहट भी है। दुश्मन तो बहुत दूर होता है,उससे तो कभी–कभार टकराहट होती है। वे जो निकट के लोग हैं, परिवार के जन हैं, उनके साथ निरंतर टकराहट है और इसलिए जिसे हम दांपत्य जीवन कहते हैं, पारिवारिक जीवन कहते हैं वह सिवाय एक दुखद कहानी के और कुछ भी नहीं। और कारण, कारण दूसरा नहीं, कारण है दूसरापन। और जिन्हें हम प्रेम कर रहे हैं, उनके साथ किन्हीं क्षणों में अपनापन महसूस होता है, इसलिए कंट्रास्ट में दुख और भी बढ़ जाता है। फिर अहंकार बीच में आ जाता है, फिर दूरी निर्मित हो जाती है।

मैंने सुना है फजलू अपने पिता नसीरुद्दीन से पूछ रहा था कि पिताजी, आपकी शादी पर कुल मिलाकर कितना पैसा खर्च हुआ था? नसीरुद्दीन ने कहा बेटा क्या बताऊं, अभी हिसाब–किताब पूरा नहीं हुआ है। पिछले तीस वर्षों से अभी तक कीमत चुकाता ही चला आ रहा हूं। फजलू ने पूछा कि पिताजी निराशावादी कौन होता है? नसीरुद्दीन ने कहा, एक ऐसा आशावादी जिसकी शादी हो गई। दो सहेलियों की लंबे समय बाद मुलाकात हुई। एक–दूसरे से कुशल–क्षेम पूछने के बाद एक ने कहा कि मेरे पति तो टाइपिस्ट कम क्लर्क हैं, तुम्हारे पति क्या हैं? दूसरी बोली, मेरे पति हसबैंड कम होमसर्वेंट हैं। पंडितजी ने कन्या का हाथ देखकर हस्तरेखाएं पढ़कर कहा कि बेटी तुम्हारी तो किस्मत ठीक नहीं है। शनि का प्रबल प्रकोप है। किसी पिअक्कड़, धूर्त इंसान से तुम्हारा विवाह होगा और शुरुआत के दस साल बहुत ही कष्ट और दुख में बीतेंगे। लड़की थोड़ी चिंतित हुई, उसने कहा फिर दस साल बाद, उसके बाद तो मेरे जीवन में सुख होगा। पंडितजी बोले नहीं बेटी उस समय तक तुम्हें दुख सहने की आदत पड़ जाएगी। दुख तो वहीं का वहीं रहेगा, आदत पड़ जाएगी।

और मैंने सुना है एक व्याकरण के शिक्षक जो सिखा रहा था कि बहुत सारे गुणों को एक शब्द में कैसे व्यक्त करना। उसने अपना पाठ सिखाकर बच्चों से पूछा कि बताओ एक दुखी, उदास, चिंतित, हैरान, परेशान, संतापग्रस्त, विषादयुक्त, तनाव से भरे, चिड़चिड़े झुंझलाए इंसान को एक शब्द में क्या कहोगे? एक बच्चे ने हाथ ऊंचा उठाया और कहा विवाहित!

क्यों विवाह पर इतने चुटकुले होते हैं, क्यों दांपत्य जीवन इतना दुख से भरा है? ये सिर्फ पति–पत्नी का ही सवाल नहीं। चूंकि पति–पत्नी साथ रहते हैं इसलिए उनके बीच का दुख उजागर हो जाता है, सबको पता चल जाता है। लेकिन सभी संबंधों के बीच में दुख है। और कारण, अहंकार की टकराहट, दूसरापन।

क्रियायोग से कैसे यह दूर होगा, इसे थोड़ा समझें। पहली बात तप– तप का अर्थ है कि दुख को हम स्वीकार भाव से लेंगे। काश, हम दुख को स्वीकार करने लगें कि ऐसा है... तथाता। बुद्ध कहते हैं तथ्य ऐसा है, द फैक्ट इज सच। 'सचनेस' में हम जीने लगें, जिंदगी ऐसी है, जीवन ऐसा है। उसे बदलने की कोशिश न करें, दूसरे को रूपांतरित करने का प्रयास छोड़ दें ...तो दुख घट जाता है। याद रखना वह दूसरा व्यक्ति उतना दुख नहीं दे रहा, जितना कि आपको उसे बदलने की कोशिश में जो मेहनत करनी पड़ती है और असफलता मिलती है, वह असफलता दुख देती है। नसीरुद्दीन की पत्नी गुलजान की कब्र पर लिखा हुआ है कि इस कब्र में एक ऐसी स्त्री सो रही है जो जिंदगी भर अपने पति को खुश रखने का प्रयत्न करती रही और अंततः मरकर सफल हुई। दूसरे को प्रसन्न करने की कोशिश भी दुख देती है, दूसरा प्रसन्न होता नहीं। तुम्हें असफलता महसूस होती है। आजतक कोई पत्नी पति को खुश नहीं कर पाई, कोई पिता अपने बच्चों को खुश नहीं कर पाया, कोई बच्चे अपने माता–पिता को खुश नहीं कर पाए। जो व्यक्ति स्वाध्याय में लगेगा उसकी दृष्टि अपने पर आ जाती है। वह दूसरे से मुक्त हो गया, उसके लिए दूसरापन कम होना शुरू हो गया।

पतंजलि के सूत्र बड़े वैज्ञानिक हैं। जब तक तुम दूसरों पर नजर अटकाए हो, दूसरों को बदलने की कोशिश कर रहे हो, तुम दुखी रहोगे। जो व्यक्ति स्वाध्याय में जीने लगा, 'सेल्फ ऑब्जर्वेशन' में ...उसके दुख घटने लगे। क्योंकि उसने दूसरों को बदलने की कोशिश छोड़ दी।

ओशो कहते हैं– लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि मैं चाहता हूं समर्पण करना, वैसा संभव नहीं। कैसे कर सकते हो तुम समर्पण, तुम ही तो गैर–समर्पण हो। जब तुम नहीं होते तभी समर्पण घटता है। जब तुम समाप्त होते हो, तब समर्पण घटता है। तो इस बात को ध्यान में रख लेना– तुम समर्पण को कभी कर नहीं सकते, वह तुम्हारी क्रिया नहीं, तुम्हारा प्रयास नहीं, असंभव है यह बात। तुम केवल एक बात कर सकते हो जिसे पतंजलि कह रहे हैं – आडंबरहीन बनो, सहज, सरल हो जाओ। इतनी ज्यादा ऊर्जा बचती है तब, जो कि सहज ही, स्वयं ही एक जागरूकता बन जाती है और उस होश के मौजूद होते ही तुम मौजूद नहीं रह जाते। अचानक तुम पाते हो कि समर्पण घट गया, अनायास! तुम्हारे अपनी ओर से बिना कुछ प्रयत्न किए ही। तुमने कुछ भी नहीं किया और समर्पण घट गया।परमात्मा के प्रति समर्पण करना तुम्हारे गैर अहंकार की अवस्था है, अहंकार यानि कर्ताभाव। यदि तुमने प्रयास किया तो फिर समर्पण नहीं होगा, समर्पण एक बोधमात्र है। जब तुम जागरूक होते हो और तुम्हारे होश की ज्योतिशिखा ऊंची प्रज्ज्वलित हो रही होती है। अचानक तुम पाते हो

कि वहां अंधकार बचा ही नहीं, बस समर्पण घट गया। तो वह एक उद्घटित/स्वघटित घटना होती है, एक अनायास बोध। अचानक तुम हैरान हो जाते हो कि तुम अनुपस्थित हो और परमात्मा उपस्थित है। तुम्हारी गैरमौजूदगी में परमात्मा की मौजूदगी है। तुम्हारी मौजूदगी में केवल दुख ही मौजूद होता है। तुम्हारी उपस्थिति से कुछ संभव नहीं होता, तुम्हारी अनुपस्थिति में ही सारी असीमता और अनंतता संभव हो पाती है। ये अंतर्संबंधित बातें हैं, सहज संयम, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण।

पतंजलि कहते हैं – क्रियायोग का अभ्यास क्लेश को घटा देता है और समाधि की ओर ले जाता है। ये तीन चरण दुख घटाते हैं और तुम्हें समाधि की ओर ले जाते हैं परम की ओर, जिसके बाद कोई और चीज अस्तित्व नहीं रखती। जब तुम परमात्मा के प्रति समर्पित होते हो, तुम स्वयं ही परमात्मा हो जाते हो, वही है समाधि। ब्रह्म में लीन होकर व्यक्ति स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। इसलिए ईश्वर–प्रणिधान ओंकार में डूबने को कहा जाता है। जो व्यक्ति अपनी अंतरात्मा में गूंज रही महासंगीत की ध्वनि को सुनने लगा, उसकी नजर दूसरे पर से हटी, द अदर इज हेल, नरक से छुटकारा हुआ। तो तप के द्वारा, स्वाध्याय के द्वारा, ईश्वर समर्पण के द्वारा ओंकार में डूबने से, अपनी अंतरात्मा में, साक्षी भाव में स्थित होने से धीरे–धीरे दुख घटने लगता है। इनका क्रमशः अभ्यास, साधक को समाधि की ओर ले जाता है। समाधि है समाधान। दूसरों में उलझाव है व्याधि और उससे छुटकारा है समाधि। ये तीन प्रक्रियाएं स्मरण रखना इसी योग को क्रियायोग कहा गया है। हर साधक को ये तीन बातें साधनी होंगी। तप का अर्थ सहज संयम, जीवन को तथाता भाव में लो, दूसरों को बदलने की कोशिश न करो।

एक प्रवचन में ओशो ने संक्षेप में समझाया है धर्म और राजनीति की परिभाषा। राजनीति अर्थात् दूसरों को बदलने की कोशिश, परिस्थितियों को बदलने की कोशिश और धर्म अर्थात् आत्मरूपांतरण की कला। दूसरे से नजर हटी, द अदर इज हेल, तुम नरक से मुक्त हुए। इसलिए मैंने कहा था कि सार्त्र का वचन अधूरा है । अगर इस बात को पूरा करना हो तो एक बात और जोड़नी होगी, द अदर इज हेल ऐन्ड टू बी वनसेल्फ इज टू बी इन हेवेन, स्वयं में स्थित होना, साक्षी में स्थित होना। हिंदी का शब्द स्वस्थ वही अर्थ रखता है। समाधिस्थ होना ही स्वस्थ होना है। तब हम दूसरे से मुक्त हुए, संसार से मुक्त हुए और एक अद्भुत घटना घटती है जो व्यक्ति स्वयं में डूबा वह स्वयं को पाता ही नहीं, वहां वह पाता है– एक फैली हुई चैतन्यता, अनादि और अनंत ब्रह्म का नाद। वहां स्वयं से मुलाकात नहीं होती, वहां पता चलता है ...बस परमात्मा ही परमात्मा है। तब सारे अस्तित्व से एकता का बोध होता है और वह एक का अनुभव, वह अद्वैत की प्रतीति ही परमानंद की अवस्था है, समाधि की अवस्था है। तो ये तीन बातें साधनी है, स्मरण रखना। क्रियायोग के तीन सोपान – तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। अर्थात् ईश्वर–समर्पण, ओंकार में डूबना, ओंकार का सुमिरन। धन्यवाद!!

दुख का मूल कारण

साधनपाद : 3

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः

दुख के कारण – राग, द्वेष, अस्मिता, मोह, अज्ञान;
मृत्यु से भयभीत, दुखी होकर जीता इन्सान।

साधनपाद का तीसरा सूत्र पतंजलि कहते हैं कि दुख उत्पन्न होने के कारण क्या–क्या हैं? पहला अविद्या अर्थात् जागरूकता की कमी। दूसरा अस्मिता, अहंकार, तीसरा राग और द्वेष, चौथा जीवेषणा और मृत्युभय। इन बातों को थोड़ी गहराई से समझना। अविद्या से सामान्यतः हम अर्थ निकालते हैं कोई गैर पढ़ा–लिखा व्यक्ति, उसे हम कहते हैं अनपढ़, इसके पास विद्या नहीं है, कोई कुशलता नहीं है, किसी कार्य को करने की क्षमता नहीं है, योग्यता नहीं है। पतंजलि इसे अविद्या नहीं कहते। पतंजलि कहते हैं, आत्मअज्ञान को अविद्या। मैं स्वयं को नहीं जानता हूं, मैं बस मानता हूं कि मैं हूं, मैंने स्वयं को कभी साक्षात नहीं किया, मैंने स्वयं को कभी प्रत्यक्ष नहीं देखा। ये केवल मेरी धारणा है कि मैं हूं, यह है अज्ञान, यह है असली अविद्या, दुख का कारण।

मैंने एक कहानी सुनी है– प्रसिद्ध झेन फकीर बोधिधर्म की। जब वे भारत से चीन गए। चीन का सम्राट उनसे मिलने आया और उसने कहा कि मैं अहंकार से बहुत पीड़ित और परेशान हूं। कृपया मुझे अहंकार से छुटकारा दिलवाएं। बोधिधर्म ने कहा बिल्कुल ठीक। कल सुबह चार बजे आ जाना, जब अंधेरा हो तभी आ जाना और अपने साथ ये सेनापति, फौज–फाटा, तुम्हारे सहयोगी मंत्री–वंत्री इनमें से किसी को मत लाना, बिल्कुल अकेले आना। मैं तुम्हारे अहंकार को बिल्कुल नेस्तनाबूत कर दूंगा। वो सम्राट थोड़ा हैरान हुआ। ये कोई तरीका है, अरे कोई दार्शनिक उत्तर देते, कोई ध्यान की विधि बताते, कोई मंत्र जाप बताते। सुबह चार बजे अकेले आना, बिना किसी संगी–साथी के और आदमी खतरनाक–सा जान पड़ता है। देखने में भी पहलवान जैसा है। सम्राट रात भर चैन से सो न पाया। लेकिन उत्सुकता जाग गई थी। सुबह

चार बजे पहुंच गया, बिल्कुल अकेला, थोड़ा डर रहा था। जिस मठ में बोधिधर्म ठहरा हुआ था, जब वह वहां पहुंचा तो देखा कि बोधिधर्म बैठकर एक लंबे बांस के डंडे पर तेल की मालिश कर रहा था। सम्राट थोड़ा चौंका और सोचा कि मारेगा, ये क्या करेगा मुझे। उसने कहा महाराज मैं आ गया हूं, वो अहंकार को नष्ट करने को आपने कहा था। बोधिधर्म ने कहा अच्छा किया आ गए, मैं भी उसी की तैयारी कर रहा हूं। उसने डंडे को दो–तीन बार जमीन पर पटका, आवाज की। सम्राट से कहा बैठ मेरे सामने आंख बंद कर और ये जो अहंकार तुझे जिंदगी भर से परेशान कर रहा है, तू कहता है जन्मों–जन्मों से परेशान कर रहा है, जरा इस अहंकार को खोज, यह कहां है। और जैसे तुझे मिल जाए कहां है, उंगली उठा देना ऊपर, मैं समझ जाऊंगा कि मिल गया अहंकार। दूंगा चार डंडे और उसको मटियामेट कर दूंगा।

सम्राट बैठ गया आंख बंद करके, भीतर–भीतर डर भी लग रहा कि कब मार दे कुछ भरोसा नहीं। इस डर की अवस्था में जागरूकता भी बड़ी सघन हो गई। भय के साथ होश जुड़ा हुआ है। इतना जागरूक वो कभी नहीं हुआ था, कई भिक्षुओं ने कहा था कि सजगता साधो, साक्षीभाव साधो। लेकिन आज भय के कारण बड़ी गहन जागरूकता सध गई। अपने भीतर ढूंढने लगा कहां है अहंकार। और जितनी जागरूकता से उसने खोजा उतना ही उसने पाया कि अहंकार है ही नहीं। करीब 20–25 मिनट गुजर गए, आधा घंटा गुजर गया, उसके चेहरे पर अद्भुत शांति और प्रसन्नता छा गई। अहंकार ही तो दुख का कारण है। वो कहीं मिला ही नहीं, भीतर शून्यता ही रह गई। विचार खो गए, मन खो गया, स्वयं के होने का भाव अस्मिता मिट गई। बोधिधर्म ने आवाज लगाई कि मिला कि नहीं मिला अहंकार, मैं कब तक इंतजार करूं।

सम्राट ने आंखे खोलीं, बोधिधर्म के चरण छुए और कहा कि धन्यवाद आपका, वो कहीं मिला ही नहीं। बोधिधर्म ने कहा जाओ यही मैं तुम्हें बताना चाहता था। तुम जिस चीज से परेशान हो, वो वास्तव में है ही नहीं। अविद्या का अर्थ है हमारी मूर्छित अवस्था। उस मूर्छा में हम स्वयं को मान बैठे हैं कि हम हैं और फिर इसी का फैलाव है राग और द्वेष। राग अर्थात् मेरे का फैलाव, मैं का एक्सटेंशन।

कल हम बात कर रहे थे न, ज्यां पाल सार्त्र के वाक्य की– 'द अदर इज हेल', दूसरा है नर्क। इसी के दूसरे हिस्से को ओशो ने समझाया है, 'पंचमहाव्रत' नामक प्रवचनमाला में। अहिंसा को समझाते हुए ओशो ने कहा है कि जब तक तुम्हारे भीतर मैं का भाव है, तब तक दूसरेपन का भाव रहेगा और जहां दूसरापन है, वहां नर्क रहेगा। असली मुक्ति दूसरे से मुक्ति नहीं है, असली मुक्ति मैं से मुक्ति है। मैं मिट जाए तो दूसरा भी मिट जाए। मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। 'मैं' है तो फिर मेरे का फैलाव फिर मोह और परिग्रह पैदा होगा।

मैंने सुना है मुल्ला नसीरुद्दीन एक होटल में ठहरा हुआ था। होटल छोड़कर जब वह स्टेशन पहुंचा, तब उसे अचानक ख्याल आया कि वो छाता भूल आया है। वापस होटल में पहुंचा लेकिन संयोग की बात इस बीच वह जिस कमरे में ठहरा हुआ था वो कमरा एक नवविवाहित दंपत्ति को, जो हनीमून मनाने आए थे, उनको दिया जा चुका था। दरवाजा बंद था। अब नसीरुद्दीन बिना छाता लिए भी नहीं जा सकता था और अंदर से बात–चीत की कुछ

आवाज आ रही थी तो उसको सुनने में भी उसे उत्सुकता पैदा हो गई। वो जो नवविवाहित पति था वो अपनी पत्नी से पूछ रहा था ये तुम्हारी मछली जैसी चंचल आंखे ये किसकी हैं, पत्नी ने कहा –तुम्हारी, और किसकी। पति ने पूछा ये तुम्हारे काले घुंघराले बाल, काली घटाओं जैसे छाए हुए हैं, ये किसके हैं? पत्नी ने कहा तुम्हारे और किसके। पति ने पूछा तुम्हारे ये गुलाब की पंखुड़ियों जैसे सुंदर होठ किसके हैं? पत्नी ने कहा तुम्हारे लिए। पति ने पूछा और ये तुम्हारे देह की चंदन सी महक किसकी? पत्नी ने कहा तुम्हारी।

अब नसीरुद्दीन से न रहा गया, वह दरवाजे के बाहर से ही बीच में बोलो कि सुनो, मुझे नहीं पता भीतर क्या चल रहा है लेकिन जब छाते का नंबर आए जो कमरे में, कोने में टिका हुआ है, वो मेरा है। जहां 'मैं' है, वहां मेरा है। वहां राग पैदा होगा, परिग्रह पैदा होगा, मेरे का विस्तार और फैलाव पैदा होगा। और याद रखना जहां राग है वहां द्वेष उत्पन्न होगा। राग और द्वेष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर हम किसी चीज को पकड़ेंगे तो हम फिर उससे घृणा भी करेंगे। जिस चीज से हमारा लगाव होगा उसी से फिर हमारी विरक्ति भी पैदा होगी। जिससे आसक्ति होगी, जिससे मित्रता होगी, उसी से शत्रुता उत्पन्न होगी। शत्रुता और मित्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दोस्ती और दुश्मनी दो अलग–अलग बातें नहीं हैं। जो आज तुम्हारे दुश्मन बन गए हैं, तुम याद करो कभी वे तुम्हारे गहरे मित्र थे। दोस्ती से शुरुआत होती है दुश्मनी की। प्रेम से शुरुआत होती है घृणा की। अगर तुम्हें घृणा से बचना है तो तथाकथित प्रेम से भी बचना होगा। दिन और रात एक ही समय के दो हिस्से हैं। अगर दिन है तो फिर रात भी होगी, अगर रात है तो फिर दिन भी होगा। कबीर साहब ने कहा है –

ना काहू से दोस्ती न काहू से बैर, कबिरा खड़ा बजार में मांगे सबकी खैर।

कबीर साहब दोस्ती और दुश्मनी दोनों के पार हो गए। अब न किसी से बैर है, न किसी से लगाव है। तो मोह और घृणा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसमें से एक को बचाकर दूसरे को नहीं छोड़ा जा सकता। और अंत में कहते हैं जीवेषणा और मृत्युभय। ये भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्योंकि हम जीवन को जोर से पकड़ना चाहते हैं, इसलिए मृत्यु से हम भयभीत हैं। हम क्यों जीवन को पकड़ना चाहते हैं? कारण वही है– जागरूकता की कमी। जीवन तो शाश्वत है, उसकी अमरता को, उसकी शाश्वतता से हम परिचित नहीं हैं इसलिए हम जोर से पकड़ते हैं, हम उसे बचाना चाहते हैं। हमें मालूम नहीं कि वह तो बचा ही हुआ है। वह कभी समाप्त होता ही नहीं। हम किसी अनश्वर चीज की रक्षा करने में लगे हुए हैं और इससे हम बड़े दुख में पड़ जाते हैं। तो दुख के इस कारण को समझना और सबके मूल में हमारा अहंकार छुपा है।

मुल्ला नसीरुद्दीन से किसी ने पूछा, प्रलय के बारे में आपका क्या ख्याल है? नसीरुद्दीन ने कहा प्रलय दो प्रकार से होती है। वो आदमी थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा आपने कोई नया सिद्धांत निकाला है, दो प्रकार की प्रलय? नसीरुद्दीन ने कहा हां, एक तो प्रलय वो है जिस दिन दुनिया मिट जाएगी, कयामत आएगी, और एक दूसरी प्रलय जिस दिन मैं समाप्त होऊंगा। देखते हो– आदमी का अहंकार? उसे लगता है मैं समाप्त हो जाऊंगा तो फिर बचेगा क्या? दुनिया चलेगी कैसे? क्या आपको नहीं लगता कि आपके बिना आपका परिवार, पति–पत्नी

और बच्चे, उन सबका क्या होगा? और समाज का और देश का क्या होगा? हर आदमी को लगता है कि वह बहुत महत्वपूर्ण है, ये उसका अहंकार, 'मेरे बिना कुछ चलने वाला नहीं'। नसीरुद्दीन ने कहा एक प्रलय उस दिन होगी, जिस दिन मैं नहीं रह जाऊंगा।

कितने नसीरुद्दीन आए और गए, कितने हिटलर और सिकंदर महान, अकबर महान आए और गए, सब मिट्टी में मिल गए। दुनिया वैसी ही चलती जाती है जैसी चल रही थी। जब नसीरुद्दीन की मृत्यु हुई और कब्रिस्तान में दफन करके लोग लौट रहे थे। किसी ने पूछा कि तकलीफ क्या थी, कैसे मृत्यु हुई? वह आदमी, जो कब्रिस्तान से लौट रहा था उसने कहा कि कोई तकलीफ नहीं थी, न कोई तकलीफ है। सब आनंदित हैं, सब प्रसन्न हैं। अच्छा हुआ छुटकारा हुआ। वो मरा, समझो एक उपद्रव खत्म हुआ। तुम सोच रहे हो तुम्हारे मरने से प्रलय हो जाएगी और लोग इंतजार कर रहे हैं कि कब तुम खिसको। तुम्हारे कारण जो अशांति है, वह समाप्त हो। जहां अहंकार है, वहां अशांति है, वहां दुख है।

इस सूत्र को समझाते हुए ओशो कहते हैं – दुख उत्पन्न होने के कारण हैं जागरूकता की कमी, अहंकार, मोह, घृणा, जीवन से चिपकना अर्थात् जीवेषणा तथा मृत्युभय। वस्तुतः मूल कारण सिर्फ अहंकार ही है, शेष सारी बातें तो अहंकार के पीछे–पीछे आती हैं। वे तो मात्र परछाइयां हैं अहंकार की। आत्मजागरूकता की कमी अहंकार है। तुम अनुभव करते हो कि तुम हो, यद्यपि तुम जानते नहीं, तुम अंधेरे में हो। तुम स्वयं से कभी मिले नहीं और तुम सोचते हो कि तुम हो। यही है अहंकार, जो सारे दुख निर्मित करता है। अहंकार उन चीजों के प्रति आकर्षण है जो बिल्कुल व्यर्थ हैं जैसे द्वेष, घृणा, मोह, ये सब आकर्षण के छोर हैं, जीवेषणा और मृत्युभय। तुम जीवन से क्यों चिपकते हो? क्योंकि तुम जानते ही नहीं कि जीवन है क्या। काश, यदि तुम जानते तो फिर चिपकना नहीं होता, क्योंकि जीवन है शाश्वत, चिपकने की जरूरत क्या? वह स्वयं ही चलता जा रहा है और वह कभी ठहर नहीं सकता। तुम अनावश्यक रूप से जीवन से चिपकते हो और स्वयं को तकलीफ देते हो। यह ऐसे ही हुआ जैसे कि एक नदी बह रही है और तुम नदी को समुद्र की ओर धक्का देने लगो । जबकि वह तो खुद ही समुद्र की ओर जा रही, तुम्हें धकेलने की कोई भी आवश्कता नहीं है। तुम बेकार स्वयं के लिए मुसीबत खड़ी कर रहे हो। तुम सोचते हो कि तुम बड़े बहादुर हो, शहीद बनने जा रहे हो, क्योंकि तुम धकेल रहे हो नदी को और ले जा रहे हो उसे सागर की तरफ, यह मूढ़ता है। नदी तो बह रही है अपनेआप, तुम गड़बड़ मत करो। तुम्हें ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं। यदि तुम सागर तक पहुंचना चाहते हो तो तुम बस एक हिस्सा बन जाओ नदी का और नदी तुम्हें स्वयं ही उस ओर ले चलेगी। लेकिन मदद मत करना नदी की, तुम मदद करने की कोशिश मत करना।

जीवन तो अपने से ही बह रहा है, उसे किसी सहायता की जरूरत नहीं। पैदा होने के लिए तुमने क्या किया, यहां होने के लिए तुमने क्या किया, जीवित रहने के लिए तुमने क्या किया? क्या ऐसी कोई चीज है जो तुमने की? यदि नहीं, तो फिर क्यों करनी फिक्र, चिंता की जरूरत क्या है, जीवन तो स्वयं अपने आप चल ही रहा है। मूढ़ लोग दुख निर्मित करते हैं। याद रखना दुख के ये कारण, इनके प्रति जागरूकता ही इनसे मुक्ति बन जाती है। धन्यवाद!!

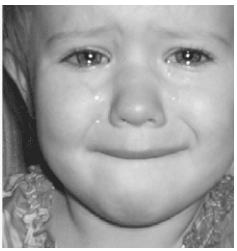

सुख-दुख के कारण

साधनपाद : 4

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्
अविद्या क्षेत्रं उत्तरेषाम्; प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदाराणाम्

कुछ ऐसे हैं सूक्ष्म क्लेश, कारण जिनका अज्ञान;
सोए, शिथिल, दबे अथवा, अनुद्दीप्त दुःख हैं जान।

चाहे वे प्रसुप्तता की, क्षीणता की, प्रत्यावर्तन की या फैलाव की अवस्थाओं में हों, दुख के दूसरे सभी कारण (अर्थात् अन्य चार क्लेश) क्रियान्वित होते हैं– जागरूकता के अभाव द्वारा ही।

टूटे फूटे कुछ अक्षर हैं अपनी रामकहानी में,
जलते प्रश्न निरुत्तर हैं अपनी रामकहानी में।
आंसू की भी एक अलग अपनी ही भाषा होती है,
पीड़ाओं के गूंगे स्वर हैं अपनी रामकहानी में।
जागती आंखों से तो हमने देखा कभी बसंत नहीं,
सपनों तक में भी पतझड़ हैं अपनी रामकहानी में।

मनोवैज्ञानिक लोगों के सपनों का विश्लेषण करते हैं और पाते हैं कि अधिकांश लोग रात को दुःस्वप्न, नाइटमेयर्स देखते हैं।

जागती आंखों से तो हमने देखा कभी बसंत नहीं,
सपनों तक में भी पतझड़ हैं अपनी रामकहानी में।
प्यासे पनघट तप्त मरूस्थल, घावों ही घावों के निशां,
ऐसे ही कुछ हस्ताक्षर हैं अपनी रामकहानी में।
जीवन मंडप सजा रहे पर खुशियों की बारात नहीं,
यूं ही झूठे स्वयंवर हैं अपनी राम कहानी में।
अपने को ही रहे खोजते किंतु खोज नहीं पाए,

राम भटकते जीवन भर हैं अपनी रामकहानी में।

यह किसी एक की राम कहानी नहीं, अपने भीतर तुम देखना, यही कथा तुम्हारी भी है... राम भटकते जीवन भर हैं अपनी राम कहानी में। और कारण? खुद को ही खोज रहे थे और खुद को नहीं खोज पाए। शायद हमें ठीक–ठीक पता भी नहीं कि हम क्यों भटक रहे हैं? हम इतने मूर्च्छित हैं, इतने बेहोश हैं कि हम क्या खोज रहे हैं, यह भी हमें पता नहीं। स्वयं को छोड़कर हम सब को खोज रहे हैं। और आनंद का सिर्फ एक ही सूत्र है, वह है... स्वयं के प्रति जागरूकता, आत्मज्ञान। दुख का सिर्फ एक ही कारण है– स्वयं के प्रति मूर्च्छित होना। साधनपाद के चौथे सूत्र में पतंजलि की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं–

Miseries are caused by lack of awareness, egoism, attractions, repulsions, clinging to life and fear of death. Whether they be in the states of dormancy, attenuation, alteration or expansion, it is through lack of awareness that the other causes of misery are able to operate.

There can be many forms of the causes of misery- they can be in the form of seeds. You can carry your misery in the form of a seed- dormant. You may not be aware of it, but in a certain situation, if the soil is right and the seed can get the water and the sun, it will sprout. So sometimes for years you feel that you have no greed, and suddenly one day when the right opportunity arises, the greed is there. Then the seeds are in a very feeble form that you are not aware of, so feeble that unless you search deeply within yourself, you will not be able to see that they are there. Or they may be in an alternating form- sometimes you feel happy and sometimes you feel unhappy. You feel happy with love, you feel unhappy with hate; but hate and love are two alternating phenomena of the same energy. Sometimes they will be in their perfect form- sometimes you are so depressed that you want to commit suicide or sometimes you are so happy that you feel like going mad. All these forms have to be watched because Patanjali says, 'All these forms exist because of unawareness; you are not aware.'

First become aware of the surface phenomena- greed, anger, hate; then go deeper, and you will be able to feel the alternating phenomenon -- both are connected. Go still deeper, become more aware, and you will feel a very feeble phenomenon inside you, shadow like, but it can gain substance anytime. It so happens with a holy man -- who just a moment ago was holy -- and a beautiful woman comes, and all holiness disappears... just in a single moment! It was there in a feeble form. Or, it can be in seed form. To know the seed form is the most difficult because it is not sprouted. It needs perfect awareness.

But the whole method of Patanjali is awareness... become more and more aware. You will become more aware if you become austere, simple. You will become more aware and self study will become

possible. With self study, the 'self' drops and one feels surrendered. And to be surrendered is to be on the right track.

जागरूकता का अभाव, अहंकार, मोह, घृणा, जीवेषणा और मृत्युभय– इनके बारे में पतंजलि कहते हैं– चाहे वे प्रसुप्तता की, क्षीणता की, प्रत्यावर्तन की या फैलाव की अवस्था में हों, दुख के दूसरे सभी कारण क्रियान्वित होते हैं, जागरूकता के अभाव के कारण ही।

दुख के कारणों के बहुत से रूप हो सकते हैं, वे बीज रूप में हो सकते हैं... तुम अपना दुख उठाए चल सकते हो बीज रूप में, वह प्रसुप्त हो सकता है। तुम्हें उसका होश ही न हो, लेकिन किसी एक खास स्थिति में यदि भूमि ठीक हो और बीज, पानी, धूप मिल जाते हैं तो अचानक वह बीज प्रस्फुटित हो जाता है, अंकुरित हो जाता है। तो कई बार वर्षों तक तुम अनुभव करते हो कि तुम्हें कोई लालच नहीं और अचानक एक दिन जब अनुकूल परिस्थितियां बनतीं हैं, लोभ और लालच प्रकट हो जाता है। बीज बहुत क्षीण रूप में सूक्ष्म होते हैं, जिनका तुम्हें पता भी नहीं चलता। इतने सूक्ष्म कि जब तक तुम स्वयं के भीतर बड़ी गहराई से और जागरूकता से न खोजो, तुम जानोगे ही नहीं कि वे बीज वहां मौजूद हैं। या कभी–कभी वे होते हैं, प्रत्यावर्तित रूप में। कई बार तुम सुख अनुभव करते हो और कई बार तुम दुख अनुभव करते हो।

प्रेम में तुम सुख अनुभव करते हो, घृणा में दुख अनुभव करते हो, लेकिन प्रेम और घृणा एक ही ऊर्जा की बारी–बारी से चली आने वाली दो घटनाएं हैं। कई बार वे होंगी, उनके अपने संपूर्ण रूप में– जब तुम उदास, निराश होते हो, इतने ज्यादा निराश कि आत्महत्या करना चाहते हो या कई बार तुम इतने ज्यादा खुश होते हो कि खुशी के मारे पागल होने जैसा अनुभव करते– इन सारे रूपों पर ध्यान दो।

पतंजलि कहते हैं– ये सारे रूप अस्तित्व रखते हैं, मूर्च्छित होने की वजह से, चूंकि तुम ठीक से जागरूक नहीं हो स्वयं के प्रति। तो पहले तो सतही घटनाओं का होश साधो जैसे लोभ, मोह, क्रोध, घृणा, फिर धीरे–धीरे और गहरे जाओ, तब तुम अनुभव करोगे, बार–बार दोहराई जाने वाली घटनाएं– वे आपस में संयुक्त और जुड़ी हुई हैं। जरा और गहरे जाओ, और सचेत बनो और तब तुम पाओगे बहुत क्षीण घटना तुम्हारे भीतर है, छाया की भांति। लेकिन वह किसी भी समय ठोस रूप में मौजूद हो सकती है। ऐसा घटता है एक धार्मिक आदमी के साथ– एक सुंदर स्त्री आती है और उसकी सारी पावनता अचानक तिरोहित हो जाती है, एक क्षण में। एक क्षण पहले वह क्षीण रूप में मौजूद थी, करीब–करीब गैरमौजूद और वह मौजूद रह सकती है वर्षों तक बीज रूप में। बीजरूप को जान लेना सबसे ज्यादा कठिन बात है, क्योंकि वह अभी अंकुरित नहीं हुआ, उसके लिए पूरा–पूरा होश चाहिए। और पतंजलि की तो संपूर्ण विधि ही जागरूकता की विधि है– और ज्यादा, और ज्यादा होशपूर्ण बनो। सहज, सरल होते ही तुम और ज्यादा होश पा सकोगे और स्व–स्मरण संभव हो पाएगा। उस आत्मस्मरण में अहंकार गिर जाता है और व्यक्ति समर्पित अनुभव करता है और समर्पित होना ही परमात्मा के सम्यक् मार्ग पर होना है।

पतंजलि ने पीछे पांच कारण गिनाए दुख के, कहते हैं कि बाकी के चार कारण सिर्फ एक वजह से ही हैं और वह है अविद्या, जागरूकता की कमी। पुनः स्मरण दिला दूं, यहां अविद्या से वह अर्थ नहीं जो हम स्कूल में, कॉलेज में, किताबों से, शिक्षकों से ग्रहण करते हैं, विद्या कोई कार्य की कुशलता नहीं है, जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है। विद्या का अर्थ है आत्मज्ञान, स्व–बोध, अपने प्रति जागरूकता। स्कूल–कॉलेज में जो सिखाया जा रहा है, वह है किसी ब्राह्य वस्तु के प्रति जागरूकता, किसी बाहरी विषय के प्रति होश। और धर्म में जो सिखाया जा रहा है, वह है अपनी ही अंतरात्मा के प्रति होश।

वेद के ऋषि कहते हैं विद्या वह है जो मुक्त करे, लेकिन आम भाषा में हम जिसे ज्ञान कह रहे हैं, विद्या कह रहे हैं, वह तो बांधने वाला है, मुक्त करने वाला नहीं। ऊंची–ऊंची डिग्रियां लेकर आदमी और घने अहंकार से बंध जाता है, बुरी तरह बंधन में पड़ जाता है। जो भी हम जान लेते हैं बाह्य जगत में, वही हमारा बंधन हो जाता है। और वेद के ऋषि कहते हैं विद्या वह है जो मुक्त करे। वे किसी और विद्या की बात कर रहे हैं, आत्मज्ञान की बात कर रहे हैं। दुख के सारे कारण शुद्ध रूप में एक ही चीज से संबंधित हैं, वह है– आत्मअज्ञान।

मैंने एक चुटकुला सुना है– एक आदमी से किसी ने पूछा कि क्या आप जानते हैं सुख किस चीज का नाम है, सुख किस चिड़िया का नाम है? उसने कहा कि क्षमा करें मुझे मालूम नहीं, मेरी शादी तो बचपन में ही हो गई थी। और दूसरा चुटकुला सुना है कि आदमी के जीवन में दो समय ऐसे आते हैं जब वह स्त्री को नहीं समझ पाता, एक शादी के पहले और दूसरा शादी के बाद। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि हर आदमी के जीवन में वह समय पूरी जिंदगी रहता है जब वह स्वयं को नहीं समझ पाता। दूसरे को समझने की तो बात छोड़ो, हम स्वयं ही स्वयं को नहीं समझ पाते। दुख अपने छुपे हुए रूप में रहता है।

मैंने सुना है एक संन्यासी के बारे में कि तीस साल तक हिमालय पर रहकर उसने तपस्या की। और उसने सोचा कि वह बड़ा शांत और आनंदित हो गया है, क्रोध, काम, लोभ, सब विदा हो गए हैं। फिर उसने सोचा कि कुंभ का मेला लगने वाला है, चलूं कुंभ के मेले में... तीस साल की साधना... लगता है पूर्णता आ गई, अब हमने मंजिल को पा लिया। बिल्कुल अनुद्विग्न, शांत, प्रफुल्लित रहने लगा। आया कुंभ के मेले में और घंटे भर में ही सारी पोल खुल गई। कुंभ की भीड़–भाड़ में एक आदमी का पैर उसके पैर पर पड़ गया। बस, उस आदमी की गर्दन पकड़ ली और धक्का मारकर उसे जमीन पर गिरा दिया, गालियां देने लगा, लातें मारने लगा। कहा कि तेरी जान ले लूंगा... अंधा है, देखकर नहीं चलता? मेरे पैर पर तेरा पैर पड़ गया। और तब अचानक उसे होश आया कि तीस साल से मैं सोच रहा था कि मैं शांत हो गया हूं, कहां गई वह शांति, एक क्षण में सब समाप्त! वह शांति हिमालय की शांति थी, वह तुम्हारी शांति नहीं थी। क्रोध बीज बनकर छिपा हुआ था। बीज को पकड़ना बड़ा मुश्किल है, बड़ी गहन जागरूकता चाहिए। वहां हिमालय में, गुफा में, जंगल में रहते हुए, क्रोध का कोई कारण ही नहीं था, वहां कोई दूसरा था ही नहीं, जिस पर क्रोध करते। तुम्हें

पता चलना बंद हो गया कि क्रोध तुम्हारे भीतर है। साधु–संन्यासी घर–गृहस्थी छोड़कर, समाज को छोड़कर भाग जाते हैं और आत्म प्रवंचना में बड़े धोखे में पड़ जाते हैं। खुद ही खुद को धोखा दे रहे हैं। गुफा में बैठकर सोच रहे हैं कि वे कामवासना से मुक्त हो गए, ब्रह्मचर्य फलित हो गया। तुम जंगल में गए, अब तुम्हें लग रहा है कि मेरे भीतर लोभ बचा ही नहीं। वहां धन है ही नहीं तो लोभ होगा कैसे? वहां कोई स्त्री नहीं है, वासना होगी कैसे? बड़े आराम से अपने आप को धोखा दे सकते हो, लेकिन याद रखना ये सारी चीजें बीज रूप में मौजूद हैं! ठीक भूमि पाकर ये बीज पुनः अंकुरित हो जाएंगे और फिर दुख का विशाल वृक्ष खड़ा हो जाएगा। चीजें जब छोटी हो जाती हैं, पहचानना मुश्किल हो जाता है, बड़े रूप में पहचानना आसान होता है।

मैंने सुना है कि सर्कस का एक बौना इलाज कराने गया। उसने कहा कि मैं इतने छोटे कद का हूं, कुल सवा फुट मेरी हाइट है, मेरी ऊंचाई इतनी कम है कि मुझे समझ में नहीं आता कि मुझे तकलीफ कहां है? यदि मेरे घुटने में दर्द होता है तो मुझे लगता है कि सिरदर्द हो रहा है। सिर उस जगह है, जहां घुटना होना चाहिए। पहचानना मुश्किल है। जब चीजें छोटे रूप में होती हैं, बीज रूप में होती हैं, बहुत छोटी, बौने से भी ज्यादा बौनी हो जाती हैं, पहचानना मुश्किल हो जाता है, लेकिन वे सब भीतर मौजूद रहती हैं। ये मत सोचना कि वे खो गईं, वे सब मौजूद हैं, सारी बीमारियां मौजूद हैं। जब तक तुम्हारी जागरूकता निर्बीज समाधि तक न पहुंच जाए तब तक जानना कि सारी बीमारियों के कीटाणु मौजूद हैं। शायद आपको पता हो, कुछ बीमारियों के कीटाणु हमारे शरीर में सदा ही मौजूद रहते हैं। जैसे हमारे भारत में करीब–करीब 95 प्रतिशत आदमी के भीतर टी.बी. के कीटाणु मौजूद हैं। यद्यपि तकलीफ उन्हें कुछ भी नहीं है, उनके शरीर का जो रेज़िस्टेन्स है, उनकी जो इम्यूनिटी है, उनकी जो प्रतिरोधक क्षमता है, वह लगातार कीटाणुओं से लड़ रही है। कीटाणु जीत नहीं पा रहे, लेकिन मौजूद हैं। हां, कभी किन्हीं कमजोर क्षणों में शरीर किसी अन्य कारण से दुर्बल हो गया, तब ये कीटाणु अचानक तीव्र गति से बढ़ना शुरू हो जाएंगे और तब टी.बी. की बीमारी हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार हरपीज के कीटाणु शरीर के भीतर मौजूद रहते हैं, लेकिन प्रकट होते हैं, हो सकता है कभी 25 साल बाद, हो सकता है कभी 50 साल बाद, कभी 70 साल बाद। 70 साल से वे इंतजार कर रहे थे, डॉरमेंट अवस्था में, छुपे हुए, पता भी नहीं था कि हरपीज की बीमारी हो सकती है। अचानक एक दिन 'हरपीज जूस्टर' की बीमारी हो जाती है। ये अचानक नहीं हुई, 40–50 साल से वे कीटाणु इंतजार कर रहे थे, लेकिन उस समय उन्हें पकड़ना संभव नहीं था। ठीक ऐसे ही दुख के वे जो पांच कारण हैं, उनका मुख्य स्रोत समझ लेना है, वह है अविद्या, जागरूकता की कमी। और लड़ना है तो इस कारण से लड़ना, बाकी अन्य चार कारण लड़ने जैसे नहीं हैं। वे तो सिर्फ लक्षण हैं बीमारी के, असली बीमारी है, जागरूकता की कमी। और इसलिए इलाज है– ध्यान यानी होश, ध्यान यानी जागरूकता। जागो, और–और गहरे जागो, यही सहज योग है। धन्यवाद!!

चार प्रकार के मुख्य अज्ञान

साधनपाद : 5

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिः अविद्या

क्या क्षणभंगुर, क्या है शाश्वत, शुद्धाशुद्ध न ज्ञान;
दुख को सुख, अहं को आत्मा, चार मुख्य अज्ञान।

सबकुछ है फिर भी कुछ खो रहा है आदमी,
होना था क्या, क्या हो गया है आदमी।
इस तरफ कुआं और उस तरफ खाई है,
धार पे तलवार की चल रहा है आदमी।
जिंदगी तो बस यूं ही नाम की है जिंदगी,
अनचाहे बोझ सी ढो रहा है आदमी।
जितना सुलझाओ उतना ही उलझ जाता है,
धागों के गुच्छे सा हो गया है आदमी।
दूर से लुभाता और पास से चुभाता है,
कैक्टस के झाड़ सा हो गया है आदमी।
सब कुछ कर सकता है चाहे जो बन सकता है,
आदमी भर हो नहीं पा रहा है आदमी।

कोई बड़ी बुनियादी भूल हो गई है, किसी गहन भ्रांति में मनुष्य जाति खो गई है, आदमी भर नहीं हो पा रहा है आदमी! जो हमारी प्रकृति थी, जो हमारा स्वाभाव था, जो हमें होना था बस उससे ही हम चूकते जा रहे हैं। पतंजलि कहते हैं, चूकने का यह कारण... अविद्या, जागरूकता की कमी... उसके कुछ प्रमाण समझो, उसकी पहचान समझो। कैसे तुम जानोगे कि तुम अविद्या में जी रहे हो? पतंजलि कहते हैं, क्षणभंगुर क्या है और शाश्वत क्या है, इसकी अगर पहचान न हो, शुद्ध क्या है और अशुद्ध क्या है, इसका ज्ञान न हो, सुख और दुख में भेद

की पहचान न हो, अहंकार और आत्मा में फर्क समझ में न आए तो जानना कि तुम गहन मूर्च्छा में हो। तीन चीजों को तो शायद हम स्वीकार कर लें, दार्शनिक सी प्रतीत होती हैं– क्षणभंगुर और शाश्वत, शुद्ध और अशुद्ध, अहंकार को आत्मा मानना, चौथी बात से शायद ही हम राजी हों कि हम दुख को सुख मानते हैं। क्या हम इतने मूढ़ हैं, क्या हम पागल हैं कि हम दुख को सुख मानते हैं! लेकिन पतंजलि जब कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। वरना ये छः अरब आदमी दुनिया में दुखी न होते। निश्चित रूप से ये दुख को सुख मानते हैं। इन्हें कांटा फूल दिखाई पड़ता है, वरना सारे लोग कांटों से लहूलुहान न हो गए होते। इन्हें फूल दिखाई पड़ता है और ये फिर–फिर धोखे में आ जाते हैं। पास जाते हैं कांटा सिद्ध होता है, लेकिन उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर दूसरा फूल दिखाई पड़ता है, फिर उसको फूल मानते हैं, यद्यपि पुराने अनुभव कह रहे हैं कि कई बार फूल देखा और जब भी निकट गए कांटा हाथ में चुभा, लेकिन क्या पता, इस बार शायद सचमुच का फूल हो, यह कांटा न हो। वे पुराने फूल धोखा दे गए कोई बात नहीं, ये फूल, फूल होना चाहिए। हम कांटों को फूल मानते हैं, ये हमारी गहन से गहन भ्रांति है। और जब तक हम इसके प्रति जागरूक न हो जाएं तब तक विद्या उपलब्ध न होगी।

ओशो ने एक जगह प्रज्ञावान और मूढ़ आदमी की परिभाषा की है, बड़े संक्षेप में। मूढ़ आदमी वह है जिसमें अनुभव के ऊपर आशा की विजय होती चली जाती है। उसके सारे अनुभव कह रहे हैं कि यह दुख है, किन्तु उसकी आशा कहती है नहीं, इस बार सुख होगा। प्रज्ञावान व्यक्ति वह है, जिसकी आशा के ऊपर अनुभव की विजय होती है। जो आशाओं की नहीं सुनता, सपनों की नहीं सुनता, जो कहता है कि जो मुझे अनुभव हुआ है, जो मैंने स्वयं जाना है, मैं तो उसके अनुसार चलूंगा। अगर तुम्हें प्रज्ञावान बनना है, एक छोटे से सूत्र को अपना लो। अपने अनुभवों की सुनो, आशाओं की नहीं। आशाएं तुम्हें धोखा देंगी, सपने दिखाएंगी, बड़ा जाल निर्मित करेंगी, सपनों के प्रपंच में न उलझना, वे तुम्हारे अतीत के अनुभव हैं, उन पर ध्यान देना। और तब तुम पाओगे कि हर बार तुम दुख को सुख समझ रहे थे।

ओशो पतंजलि के इस सूत्र को समझाते हुए बड़ी अद्भुत व्याख्या करते हैं– अविद्या है अनित्य को नित्य समझना, अशुद्ध को शुद्ध जानना, पीड़ा को सुख जानना और अनात्म को आत्म जानना।

पतंजलि कहते हैं– अविद्या क्या है?... जागरूकता का अभाव, होश की कमी... और यह होश की कमी क्या है, कैसे तुम जानोगे उसे, लक्षण क्या होते हैं? लक्षण ये हैं, अनित्य को शाश्वत समझना। जरा देखो अपने चारों तरफ, जीवन एक प्रवाह है, हर चीज गतिमय है, प्रत्येक चीज निरंतर गतिमान हो रही है, बदल रही है, चीजों का स्वभाव है परिवर्तन। परिवर्तन एकमात्र स्थाई चीज जान पड़ती है। स्वीकार करो परिवर्तन को और देखो हर चीज बदल रही है। सबकुछ सागर की लहरों की भांति है। लहरें जन्मती हैं, थोड़ी देर बनी रहती हैं और फिर वे घुल जाती हैं, मिट जाती हैं। लहरों की भांति ही सब कुछ जीवन में भी हो रहा है।

जब पतंजलि कहते हैं शुद्ध और अशुद्ध तो उनका अर्थ सामान्य अर्थ से बिल्कुल भिन्न है। शुद्धता से उनका मतलब है, स्वाभाविक, अशुद्धता से उनका मतलब है, अस्वाभाविक। और

कोई भी चीज तुम्हारे लिए स्वाभाविक हो सकती है या अस्वाभाविक हो सकती है, इसकी कोई बाह्य कसौटी नहीं है। अशुद्ध को शुद्ध जानने का मतलब हुआ कि अस्वाभाविक को स्वाभाविक मानना। यही है जो तुमने किया है, जो सारी मनुष्य जाति ने किया है और इसलिए तुम और–और अशुद्ध होते गए हो। स्वभाव के प्रति सदा सच्चे रहना। जरा ध्यान दो कि क्या स्वाभाविक है, जरा अपने भीतर खोजो। क्योंकि अस्वाभाविक के साथ तुम सदा ही तनावपूर्ण, असहज और बेचैन रहोगे। किसी अस्वाभाविक स्थिति में कोई भी आराम से नहीं रह सकता। तुम अपने चारों ओर गैरनैसर्गिक चीजें खड़ी कर लेते हो। फिर वे अप्राकृतिक बातें बोझ बन जाती हैं और तुम्हारे जीवन को नष्ट करती हैं।

जब मैं कहता हूं कि स्वाभाविक तो मेरा मतलब होता है कि तुम्हारे स्वभाव के बाहर की कोई चीज तुममें आकर मिल गई। स्वाभाविक बनो, शुद्ध बनो। हम सब जानते हैं कि किन चीजों से लोग दुखी हैं, फिर भी हम उन्हीं–उन्हीं चीजों में उलझते हैं। अनित्य को नित्य मानना, अशुद्ध को शुद्ध मानना, अप्राकृतिक को प्राकृतिक मानना, अहंकार को आत्मा मानना... ये जागरूकता के अभाव के लक्षण हैं। लक्षणों से मत लड़ना, जागरूकता को बढ़ाना, असली बीमारी मूर्च्छा है। एक आदमी उपवास कर रहा है, तपस्या कर रहा है, असुविधाओं में रह रहा है, कांटों की सेज पर लेटा है, ये अपनी ही प्रकृति के खिलाफ जा रहा है। स्वर्ग की कामना से भरा है कि तप–तपस्या करके, घर–गृहस्थी त्यागकर ये स्वर्ग को उपलब्ध हो जाएगा। ये नया नर्क पैदा कर रहा है, ये अभी ही नर्क में जी रहा है, लेकिन इसको समझाना मुश्किल है । ये नर्क को स्वर्ग मान रहा है, इसने सब भांति से अपने आप को कष्ट देना शुरू कर दिया।

ईसाई फकीर हुए हैं जो रोज सुबह उठकर अपने आप को कोड़े मारते हैं। उन्हें देखने के लिए बड़ी भीड़ जमा हो जाती है, उनकी पीठ लहूलुहान हो जाती है, पूरे शरीर पर कोड़े मारते हैं। इसको तपस्या समझा जाता है। जैन मुनि नग्न रहते हैं, इतनी तीव्र ठंड में, बरसात में, तीव्र गर्मी में, बड़ी परेशानी में जीते होंगे। अपने सिर, दाढ़ी, मूंछ के बाल नोच–नोच कर उखाड़ लेते हैं। खून बहता है, लेकिन श्रद्धालुओं की भीड़ लगी है, वे ताली बजा रहे हैं। उनकी आंखों से आंसू झड़ रहे हैं कि मुनिजी कितना महान कार्य कर रहे हैं। ये आदमी अपने आप को कष्ट दे रहा है, उपवास कर रहा है, भूखा मर रहा है, ये अप्राकृतिक को प्राकृतिक समझ रहा है, इसने स्वयं अपने दुख पैदा कर लिए। जो हम नहीं हैं, उसे हमने स्वयं का होना समझ लिया है। इस बात को जरा गौर से पकड़ना, हम हैं चैतन्य स्वरूप और हमने तन और मन को अपना होना समझ लिया है।

स्त्रियों ने अपना तादात्म्य अपने तन से कर लिया है, ज्यादा प्रतिशत में। पुरुषों ने अपना तादात्म्य अपने मन से कर लिया है, ज्यादा मात्रा में। यूं तो तन और मन से दोनों का तादात्म्य है। पुरुषों की उत्सुकता विचार में, दर्शनशास्त्र में है, स्त्रियों की रुचि दर्शनीय होने में है, दर्शनशास्त्र में नहीं है। वस्त्रों में और आभूषण में रुचि है। किसी स्त्री से कह दो कि तुम्हारी शकल–सूरत बड़ी कुरूप है, बहुत नाराज हो जाएगी। उसे ऐसा नहीं लगता कि तुमने उसे कहा है कि उसके वस्त्र पर धब्बे लगे हैं, शरीर को वह वस्त्र जैसा नहीं समझती, शरीर को ही वह स्वयं

का होना समझती है। किसी पुरुष से कहो कि तुम्हारा शरीर सुंदर नहीं है, उसे इतनी चोट नहीं लगती। उसे कब चोट लगेगी?... जब आप कहेंगे कि तुम्हारी धारणाएं गलत हैं, तुम्हारी मान्यताएं, तुम्हारे विश्वास, तुम्हारे धर्म, तुम्हारी राजनीति, तुम्हारे विचार गलत हैं, तभी उसे चोट लगेगी। वह अपने आप को मन समझ बैठा है। किसी स्त्री से कहो कि तुम्हारे विचार गलत हैं, उसे कुछ परवाह नहीं, वैसे भी वह विचार करती नहीं। जिस दिन से स्कूल की पढ़ाई छोड़ी, डिग्री हासिल की, उस दिन से उसने किताबों को हाथ नहीं लगाया। उसे विचारों से कुछ लेना–देना नहीं है। उसका तादात्म्य शरीर से है। तो तन और मन जो कि हमारा स्वभाव नहीं है, जो कि वास्तव में हम नहीं हैं, उसे हमने स्वयं का होना मान लिया। और इसलिए हम दुख में पड़े हैं। अहंकार को हमने आत्मा समझ लिया, पर्सनाल्टी को हमने अपनी इंडीविजुऐलिटी मान लिया और इसलिए हम मुश्किल में पड़े।

मैंने सुना है एक प्रेमिका अपने प्रेमी से कह रही थी कि शादी के बाद मैं तुम्हारे सारे दुख बांट लूंगी, तुम बिल्कुल चिंता न करो। प्रेमी ने कहा लेकिन मुझे तो कोई दुख है ही नहीं। प्रेमिका बोली अभी की नहीं, मैं शादी के बाद की बात कर रही हूं। एक अन्य चुटकुला मैंने सुना है कि नसरुद्दीन शादी के बाद बड़ा उखड़ा–उखड़ा और उदास सा रहने लगा। उसके मित्र ने पूछा कि क्या हुआ मुल्ला, तुम्हारी जिंदगी में इतना बदलाव कैसे आ गया? मुल्ला ने कहा, कुछ खास नहीं, पहले तनहाई काटने को दौड़ती थी, अब बीबी काटने को दौड़ती है! किसी ने पूछा चंदूलाल से कि सम्मोहन का अर्थ क्या होता है? चंदूलाल ने कहा कि किसी आदमी को अपने प्रभाव से वशीभूत करके उससे अपना मनचाहा काम करा लेने को सम्मोहन की कला कहते हैं। उस आदमी ने कहा, क्षमा करें, इसका नाम सम्मोहन की कला नहीं है, यह तो शादी है!

शादी में इतना दुख क्यों? जरा गहरा कारण खोजना। शादी में इतना दुख इसलिए है कि जो मेरा होना नहीं है, उसे मैंने स्वयं का होना मान लिया है। पति ने पत्नी को अपना मान लिया, पत्नी ने पति को, माता–पिता ने बच्चों को, पूरे परिवार ने मकान को, अपना होना मान लिया है। जो हम नहीं हैं उसे हमने अपना होना मान लिया, तब हमने दुख का बीज निर्मित कर लिया, यही हमारी मूर्च्छा है। याद रखना, यह किसी पत्नी का दोष नहीं है, यह किसी पति का दोष नहीं है, यह किसी माता–पिता का दोष नहीं है, यह किन्हीं बच्चों का दोष नहीं है। दोष कहां है?... हमारी मूर्च्छा में। काश, हम पत्नी को स्वयं की न माने, काश हम पति को अपना सामान न समझें, काश हम बच्चों पर अपना अधिकार न जानें। हम मकान का उपयोग जरूर करें, कार का उपयोग करें, लेकिन उन्हें हम स्वयं का होना न जाने, तब दुख नहीं होगा, तब गहन जागरूकता घटित होगी। गहन जागरूकता ही दुख से मुक्त कराती है। यही सहज योग है।

धन्यवाद!!

अस्मिता : दुःख का मूल कारण

साधनपाद : 6

धदद्ृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता

आत्मा है द्रष्टा, पर खुद को चित्त समझ लेती है;
यही अस्मिता जीवन में दुख का कारण बनती है।

कहने को सभी अपने हैं मगर, शहरा में हमारा कोई नहीं,
होठों में हंसी के गुल हैं बहुत, खुशबू का बहारां कोई नहीं।
बाहर तो बड़ी रौनक है यहां बहुत, सामान बहुत सुख-सुविधा के,
अंदर तो मगर सुनसान है सब, अपना सा बेचारा कोई नहीं।
रिश्तों की बड़ी इस दुनिया में, हमदर्द यहां दिखते हैं सभी,
जब गौर किया मालूम हुआ, सचमुच का सहारा कोई नहीं।
दामन ही नहीं हम थामें जिसे, बस्ती ही नहीं टिकने को यहां,
बेकार भरम में खोए रहे, आनंद का द्वारा कोई नहीं।
ये रास्ता भटकाने के लिए, अटकाने के बंदोबस्त हैं सब,
यहां प्यार की बातें होतीं मगर, प्यार का मारा कोई नहीं।
तन मन भी नहीं, जीवन भी नहीं, मैं कौन हूं मेरा कोई नहीं,
एक कण भी नहीं, एक क्षण भी नहीं, किस्मत में सितारा कोई नहीं।

कौन हूं मैं और मेरा क्या है?... हम जानते नहीं और इसलिए जो भी हमारे निकट होता है, उसी के साथ हम तादात्म्य बना लेते हैं। पतंजलि कहते हैं, अस्मिता या अहंकार का जन्म होता है तन मन के साथ, दृश्य के साथ तादात्म्य बनाने से। जो भी हमारे निकट हो हम उससे तादात्म्य बना लेते हैं। जैसे दर्पण के निकट की कोई चीज उसमें झलकती हो, दर्पण में उसका प्रतिबिंब बनता हो और दर्पण समझने लगे कि यही मैं हूं। ठीक वैसी ही स्थिति है।

आत्मा है एक दर्पण की भांति। चेतना के इस आईने में मन का, विचारों का, संस्कारों का, हृदय का, भावनाओं का प्रतिबिंब बनता है। शरीर चेतना के इस दर्पण में झलकता है और शरीर के बाहर इंद्रियों से आती हुई सूचनाएं, बाहर के संसार के दृश्य झलकते हैं और उसके साथ हम आइडेंटिफाइड हो जाते हैं। हम सम्मोहित हो जाते हैं, हम उसी को स्वयं मान बैठते हैं, अपना हमें कोई पता ही नहीं। अंदर तो मगर सुनसान है सब, अपना सा बेचारा कोई नहीं। अंदर हम कभी गए नहीं, गौर से कभी हमने देखा नहीं, वहां सुनसान नहीं है, महाशून्यता है। और उस शून्यता में पूर्णता का अवतरण हुआ है। लेकिन यह उसे पता चलेगा जो भीतर जाएगा और साक्षी भाव में रमेगा, जो ध्यान में और समाधि में जाएगा। चूंकि हमें भीतर रिक्तता महसूस होती है, इसलिए हम बाहर की किसी भी चीज से आइडेंटिफाइड हो जाते हैं, विशेषकर तन और मन से। उसमें थोड़ा सा प्रतिशत का भेद है।

पुरुषों का तादात्म्य ज्यादातर मन से होता है, स्त्रियों का तादात्म्य ज्यादातर तन के साथ होता है। यदि किसी स्त्री को कह दो कि तुम्हारा चेहरा बड़ा कुरूप है, उसे बहुत बुरा लगेगा। किसी पुरुष को कह दो कि तुम्हारी शक्ल–सूरत ठीक नहीं है, उसे इतना बुरा नहीं लगेगा। पुरुष का तादात्म्य मन के साथ ज्यादा है। यदि पुरुष से कहो कि तुम्हारी विचारधारा गलत है, तुम्हारी धारणाएं गलत हैं, तुम्हारा धर्म गलत है, तब वह लड़ने–झगड़ने, मरने–मारने को तैयार हो जाएगा। वह मन को स्वयं का होना समझ बैठा है। यदि किसी स्त्री से कह दो कि तुम्हारी विचारधाराएं गलत हैं वह कहेगी रहने दो, उससे करना क्या है। वैसे भी महिलाएं कोई विचार करती नहीं। पढ़ाई–लिखाई से उनका कोई नाता नहीं। स्कूल, कॉलेज में पढ़ती भी हैं तो सिर्फ इसलिए की एक सुंदर, अच्छा, धनी पति मिल सके। जैसे ही उनका विवाह हुआ, उस दिन के बाद वे कागज–कलम को हाथ नहीं लगातीं। विचारों से उनका कुछ विशेष लेना–देना नहीं। हां, घंटों आइने के सामने खड़ी होकर अपने तन को संवारती रहेंगी। तन के साथ गहरा तादात्म्य है स्त्री का, मन के साथ गहरा तादात्म्य है पुरुष का। यूं तो दोनों का दोनों से ही तादात्म्य है, केवल प्रतिशत का, मात्रा का भेद है।

शरीर की जो इंद्रियां हैं उनसे हमारा तादात्म्य हो जाता है और इंद्रियों के माध्यम से जो बाहर का दृश्य हम जानते हैं, पतंजलि कहते हैं, उससे भी हमारा तादात्म्य हो जाता है। मकान दिखाई पड़ता है और मैं कहने लगता हूं मेरा मकान। यद्यपि मैं जानता हूं कि जब मैं इस दुनिया में नहीं था तब भी मकान था, मैं नहीं रह जाऊंगा तब भी यह मकान रहेगा, तो यह मकान मेरा कैसे हो सकता है? मैं कहता हूं, मेरा खेत, मेरी जमीन। ये जमीन पिछले चार अरब सालों से है, मैं तो अभी–अभी आया और अभी–अभी विदा हो जाऊंगा। अरबों–खरबों साल तक ये जमीन यहीं रहेगी, ये जमीन मेरी कैसे हो सकती है। लेकिन हम तो थोड़ी देर के लिए भी जहां हों, उसी दृश्य से आइडेंटिफाइड हो जाते हैं। ट्रेन में हम बैठते हैं, हम कहते हैं कि यह मेरी सीट है। मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में घुसा, एक खाली सीट देखकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद एक आदमी आया और कहा कि क्षमा करें ये मेरी सीट है, मैं बाथरूम गया था, आप कैसे यहां

आकर बैठ गए? और मैं रूमाल बिछाकर गया था, ये मेरी सीट है। नसरुद्दीन ने कहा, ये रूमाल बिछा देने से तुम्हारी सीट कैसे हो जाएगी? उस सीट पर तुम्हारी पत्नी बैठी है, मैं अपना रूमाल उसके ऊपर डाल दूं तो क्या वह मेरी पत्नी हो जाएगी? लेकिन हम आइडेंटिफाइड हो जाते हैं। जिस स्त्री के साथ हम रह रहे हैं वह मेरी पत्नी हो गई, जिस बेटे के साथ हम रह रहे हैं वह मेरा बेटा हो गया। बाहर के दृश्यों से भी हमारा तादात्म्य हो जाता है, उसे भी हम 'मेरा' कहने लगते हैं और यह अस्मिता, यह अहंकार, दुख का कारण है।

पतंजलि ने पांच दुख के कारण बताए, एक–एक करके हम उन्हें समझ रहे हैं। पहला है अविद्या, दूसरा है अस्मिता, तीसरा है राग, चौथा है द्वेष और पाचवां है जीवेषणा या अभिनिवेष। जैसे हाथ में पांच अंगुलियां होती हैं... यूं तो हाथ का ही एक्सटेंशन है पांचों अंगुलियां... लेकिन फिर भी पांचों को हम अलग–अलग कह सकते हैं। ठीक इसी प्रकार ये पांच क्लेश के कारण हैं, मुख्य बात इसमें एक ही है, वह है मूर्च्छा, अविद्या या अज्ञान। लेकिन उसके पांच प्रकार हो सकते हैं और इसे तोड़ने की विधि है, भेद विज्ञान या विवेक जिसे कहते हैं, अर्थात् इस तादात्म्य को तोड़ना। सुनो ओशो क्या कहते हैं –

अस्मिता है द्रष्टा का दृश्य के साथ तादात्म्य। तुम होते हो तुम्हारी आंखों के पीछे, बिल्कुल ऐसे खड़े हुए जैसे कोई खड़ा हो खिड़की के पीछे और बाहर झांक रहा हो। खिड़की से बाहर देख रहा व्यक्ति ठीक तुम जैसा है। आंखो में से तुम झांक रहे हो मेरी ओर, लेकिन तुम आंखों के साथ तादात्म्य बना सकते हो, तुम दृश्य के साथ भी तादात्म्य बना सकते हो। देखना एक क्षमता है, एक माध्यम है, आंखें मात्र खिड़कियां हैं, वे तुम नहीं। तुम्हारा शरीर एक मकान के समान है और तुम्हारी सारी इंद्रियां उसकी सारी खिड़कियां हैं। पतंजलि कहते हैं, पांच इंद्रियों द्वारा तुम्हारा माध्यम के साथ, शरीर के साथ तादात्म्य बन जाता है और इन पांचों के कारण जन्म ले लेता है अहंकार। अहंकार एक झूठा अस्तित्व है, वह वास्तव में कहीं है नहीं, अहंकार कुछ है नहीं, बस एक मान्यता है। खिड़की में खड़ा हुआ आदमी सोचने लगता है कि वह स्वयं खिड़की है। क्या कर रहे हो तुम आंखों के पीछे, तुम तो देख रहे हो आंखों के द्वारा। आंखें खिड़कियां हैं, कान झरोखे हैं। तुम सुन रहे हो कानों के द्वारा। तुम फैला देते हो अपने हाथ मेरी ओर और मैं छू लेता हूं तुम्हें, हाथ तो बस एक माध्यम है। तुम नहीं हो हाथ और इस बात को तुम गौर से, ध्यान से देखो और इसका प्रयोग करो। बहुत बार ऐसा होता है कि कोई चीज घटती है ठीक तुम्हारी आंखों के सामने और तुम चूक जाते हो। कई बार तुमने किसी किताब का पूरा पृष्ठ पढ़ लिया और अचानक तुम्हें याद आता है कि अरे! तुम पढ़ तो रहे हो, किन्तु एक भी शब्द तुमने पढ़ा नहीं। तुम्हें याद ही नहीं कि तुमने क्या पढ़ा, फिर पीछे पेज पलटना पड़ता है। क्या हुआ? यदि तुम आंख ही हो तब यह बात कैसे संभव हो सकती थी। नहीं, तुम आंख नहीं हो। खिड़की खाली थी पृष्ठ की ओर देखती हुई और खिड़की के पीछे मौजूद चेतना गायब थी, वह कहीं और व्यस्त थी, ध्यान वहां नहीं था। तुम शायद आंखें बंद किए हुए होगे खिड़की पर या तुम्हारी पीठ थी खिड़की की तरफ, लेकिन तुम देख नहीं रहे थे खिड़की में से। ऐसा अक्सर हो जाता है, मालिक कहीं और देख रहा है, खिड़की के बाहर वह देख ही नहीं रहा और खिड़की खुली हुई है।

खिड़की के पीछे हम खड़े हैं, आंखों की, कानों की, अन्य इंद्रियों की और उनके साथ हमारा तादात्म्य बन गया है। हम समझने लगे कि यह दृश्य, यह देखने की क्षमता, यही मैं हूं। ये दोनों आपस में 'मिक्सड–अप' हो गए।

चेतना अपने आप को चित्त समझने लगी, अपने आप को इंद्रिय समझने लगी, अपने आप को बाहर का दृश्य समझने लगी। मेरा नाम, रूप, मेरी शकल–सूरत, मेरी लंबाई–चौड़ाई, मेरा रंग, मेरा कुल–खानदान, मेरी पढ़ाई–लिखाई, मेरी डिग्री, मेरा प्रोफेशन, मेरी जाति, मेरा धर्म, मेरी राजनीतिक पार्टी, मेरा देश इन सबके साथ जो तादात्म्य हो गया है, उसका नाम है अहंकार या अस्मिता। और यह अहंकार जितना घना होगा, उतना ही बड़ा दुख होगा। ये हम दुख के कारण समझ रहे हैं, एक–एक करके। जितना दुखी आदमी, समझना उतना ही अहंकारी आदमी। हर छोटी–छोटी चीज में उसको चोट लगती है, हर छोटी–छोटी बात उसे दुख देती है। मैंने सुना है, एक क्लब के मैनेजर ने एक महिला से पूछा कि मैडम ये किन सज्जन के साथ आप नाच रही थीं? वह महिला अकड़कर बोली– आपके प्रश्न में दो बातें गलत हैं, पहली बात वे कोई सज्जन–वज्जन नहीं हैं, मेरे पति हैं और दूसरी बात मैं उनके साथ नहीं नाच रही थी, वे मेरे इशारे पर नाचते हैं। छोटी सी बात और चोट कर जाएगी, एक–एक शब्द चोट कर जाएगा। जितना घना अहंकार उतना ही दुखी आदमी, हर छोटी–छोटी बात में दुखी हो जाता है। और यह नहीं सोचना कि अहंकार के लिए कोई बड़ी भारी चीज चाहिए, अमीर को अमीर होने का अहंकार है, गरीब को गरीब होने का अहंकार है। तुम यह नहीं सोचना कि भिखारी को अहंकार नहीं है, वह कहता है कि इस इलाके में मुझसे ज्यादा दरिद्र कोई भिखारी नहीं है। यहां तक कि विनम्र लोग कहते सुने जाते हैं कि मुझसे ज्यादा विनम्र और कोई भी नहीं है। और अगर तुम सिद्ध कर दो कि तुम क्या, अरे! खाक विनम्र, तुमसे ज्यादा विनम्र एक महात्मा हमने देखा है! उस आदमी को उतनी ही चोट और तकलीफ होगी, जितनी की किसी को भी होती हो। अहंकार विनम्रता का भी रूप धारण कर लेता है। यह अस्मिता दुख का कारण है।

मैंने सुना है, एक हाथी ने एक चुहिया के साथ छेड़खानी कर दी। चुहिया ने जाकर हाथी की पत्नी हथिनी से कहा कि सुनो बहन, अपने पति को जरा नियंत्रण में रखा करो, अभी तो बात औरतों तक सीमित है, लेकिन याद रखना, अगर बात मर्दों तक पहुंच गई फिर तुम्हारी भी खैरियत नहीं, आखिर मर्द हमारे घर में भी हैं। चुहिया को भी अपना अहंकार है, चूहे को भी अपना अहंकार है, तुम ऐसा नहीं सोचना कि सिर्फ हाथी को ही अहंकार होता है। भोगी को भी अहंकार होता है, त्यागी को भी अहंकार है कि हमने लाखों रुपए त्याग दिए, लाखों रुपए पर लात मार दी, उसका भी अहंकार है। हर आदमी को अहंकार है। और अहंकार का कारण समझ लेना, वह है दृश्य का द्रष्टा के साथ तादात्म्य। वह जो देखने की शक्ति है हमारी, चैतन्यता, वह दृश्य के साथ, ज्ञेय के साथ स्वयं को एक मानने लगती है और इसलिए दुख उत्पन्न होता है, क्योंकि वास्तव में ऐसा है नहीं। जीवन में बार–बार ऐसी घटनाएं घटेंगी जब सिद्ध हो जाएगा कि हमारी धारणा गलत है और तब हम बड़े दुखी होगे, पीड़ित होगे। आगे हम राग, द्वेष और अभिनिवेष को समझेंगे। धन्यवाद!!

आसक्ति : दुःख की जन्मदात्री

साधनपाद : 7

सुखानुशयी रागः

वस्तु हो या व्यक्ति, जिससे मन को सुख मिलता है;
होती है आसक्ति वहीं पर, राग जन्म लेता है।

पतंजलि ने दुख के पांच कारण कहे; अविद्या और अहंकार को हमने समझा, आज दुख के तीसरे कारण को समझते हैं। पतंजलि कहते हैं, वस्तु हो या व्यक्ति जिससे मन को सुख मिलता है, होती है आसक्ति वहीं पर, राग जन्म लेता है। हम सुख के पीछे भागते हैं, सुख से चिपकने की कोशिश करते हैं और इस कोशिश में दुख पैदा करते हैं।

बड़ी गहरी बात पतंजलि कह रहे हैं, बड़ा वैज्ञानिक दृष्टिकोण है उनका। सुख को पकड़ने की कोशिश दुख पैदा करती है, क्योंकि जीवन परिवर्तनशील है। अभी जो सुखद जान पड़ रहा है, थोड़ी देर बाद वही सुखद नहीं रह जाएगा। शुरुआत में जो मीठा है, अंत में कड़वा साबित होगा। तो संसारी भोग के पीछे दौड़ रहे हैं, इसके ठीक विपरीत त्यागी हैं। वे दुख के पीछे दौड़ रहे हैं क्योंकि वे इस गणित को समझ गए कि यदि सुख के पीछे दौड़ो तो दुख मिलता है, फिर इसका उल्टा भी संभव है, यदि तुम दुख को पकड़ो, त्याग और तपस्या में जाओ, उससे सुख मिलेगा। लेकिन याद रखना, वह त्याग भी कोई आध्यात्मिक घटना नहीं है।

ये सुख–दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, राग और द्वेष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिससे हमें सुख मिलता है, उससे राग उत्पन्न होता है, जिससे हमें दुख मिलता है, उससे द्वेष उत्पन्न होता है, लेकिन वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों ही हमारे चित्त की उत्तेजित अवस्थाओं के नाम हैं। सुख ऐसी उत्तेजना है जिसे हम चाहते हैं कि हो और दुख ऐसी उत्तेजना है जिसे हम चाहते हैं कि नहीं हो, लेकिन हैं दोनों ही उत्तेजनाएं, एक्साइटमेंट्स।

और इसलिए दोनों का परिणाम अंततः एक सा ही है, अशांति, बेचैनी, उद्विग्नता। शांति और आनंद इन दोनों के पार है। मैं पढ़ रहा था एक गजल –

कभी–कभी तेरे होठों की मुस्कराहट से, मुझे बहार की आहट सुनाई देती है,
तेरी निगाह की यह बेहिसाब सरगोशी, मुझे फवार सी पड़ती दिखाई देती है।
जब आसमां पे लपकता है बाँकपन तेरा, तभी कमान से कोई तीर छूट जाता है,
तेरे बदन के जवां माल जमजमे सुनकर, गरूर मेरी समाद टूट जाता है।
महकी हुई गुफ्तार में फूलों का तबस्सुम, बहकी हुई रफ्तार में झोंकों की रवानी
मुमकिन है फिजाओं का तसव्वुर ही बदल दे, ऐ जाने बहारां तेरी गुलपोश जवानी।

युवापन और सौंदर्य के मोह में हम पड़ जाते हैं, लेकिन सब युवावस्था अंततः बुढ़ापे में परिणत हो जाती है, सारा सौंदर्य कुरूपता में परिवर्तित हो जाता है। जीवन में सब चीजें परिवर्तनशील हैं। यदि वे परिवर्तनशील न हों तब भी हमें सुख नहीं मिलेगा, क्योंकि तब वे मुर्दा होंगी। याद रखना, जो चीज परिवर्तित नहीं होती, किसी का सौंदर्य अगर समाप्त ही न हो और जवानी कभी खत्म ही न हो तो वह व्यक्ति कोई जीवित व्यक्ति न होगा, वह प्लास्टिक या पत्थर की मूर्ति होगा। फिर उससे वह सुख हमें न मिलेगा और अगर वह परिवर्तित होता है, जो कि जीवन का लक्षण है तब भी हमें दुख मिलेगा, हर हाल में दुख ही मिलेगा।

पतंजलि बड़े वैज्ञानिक तरीके से समझाते हैं, ओशो इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं– महर्षि पतंजलि कहते हैं, आकर्षण और उसके द्वारा बनी आसक्ति होती है उस चीज के प्रति जो सुख पहुंचाती है और द्वेष उपजता है उस चीज के प्रति जो दुख देता है। ये तुम्हारे इस संसार में होने के दो ढंग हैं। तुम उस चीज के प्रति आकर्षित होते हो, जिससे तुम्हें लगता है कि सुख मिल रहा है और तुम द्वेष और घृणा अनुभव करते हो उस चीज के प्रति जिससे तुम्हें लगता है कि दुख मिल रहा है। लेकिन यदि तुम अधिकाधिक जागरूक होते जाओ तो तुम्हारे पास होगा समग्र रूपांतरण। तुम देख पाओगे कि जिससे सुख बनता है, उसी से दुख भी बनता है। आरंभ में सुख और अंत में दुख। जो कुछ तुम्हें दुख देता है, वही तुम्हें सुख भी देता है। आरंभ में दुख अंत में सुख।

ये दो ढंग हैं संसार के, कभी शुरुआत में सुख, कभी शुरुआत में दुख, लेकिन अंत हमेशा विपरीत में होता है। एक ढंग है गृहस्थ का, उसे समझने की कोशिश करना, यह बात बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। एक ढंग है गृहस्थ का वह जीता है मोह के द्वारा, आकर्षण के द्वारा। जो कुछ वह अनुभव करता है कि सुख पहुंचाता है, वह सरकता है उसकी ओर, वह चिपकता है उससे और अंततः वह दुख पाता है, और कुछ भी नहीं, पीड़ा के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आता। इसके ठीक विपरीत संन्यासी का ढंग है, वह जिसने की संसार त्याग दिया। वह अब सुख के साथ चिपकता नहीं, बल्कि इसके विपरीत वह चिपकने लगता है, दुख के साथ, कठोर तपश्चर्या के साथ, पीड़ा के साथ, क्योंकि वह जान गया कि जब कभी

प्रारंभ में सुख होता है तो अंत में दुख मिलता है, उसने तर्क को उल्टा बैठा दिया, अब वह खोजता है दुख को, पीड़ा को और अंत में सुख खोजता है। लेकिन वह व्यक्ति जो अभ्यास करता है दुख का, पीड़ा की अनुभूति को पाने में असमर्थ होता जाता है। वह व्यक्ति जो सुख पाने का अभ्यास करता है, छोटी चीजों से सुख पाने में असमर्थ हो जाता है। तुम नहीं समझ पाते कि एक आदमी जो उपवास कर रहा है एक महीने से, उसके लिए साधारण नमक–रोटी, मक्खन भी बहुत बड़ी दावत के समान है।

एक आदमी जो लेटा है कांटो पर, यदि तुम उसे जमीन पर, साधारण जमीन पर ही लेटने का इंतजाम कर दो, तो कोई सम्राट इतने सुंदर ढंग से नहीं सो सकता, जैसे कि वह सोएगा। लेकिन ये दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों गलत हैं, संन्यासी ने पलट दिया गृहस्थ की प्रक्रिया को, वह खड़ा हुआ है शीर्षासन करके, सिर के बल, लेकिन यह आदमी वही है। दोनों ही आसक्ति में पड़े हैं, गृहस्थ भी और संन्यस्थ भी। एक की आसक्ति है सुख के साथ, दूसरे की आसक्ति है दुख के साथ। अपने जीवन के अनुभवों को जरा टटोलो, सुखों के पीछे कितना दौड़े, अंततः हाथ में क्या आया! और ये कोई हम साधारण मनुष्यों की बात नहीं, बड़े–बड़े सिकंदर और हिटलर भी खाली हाथ जाते हैं। यहां हाथ भरते ही नहीं। सुख की इस भाग–दौड़ में, सुख भोगने की क्षमता ही समाप्त हो जाती है। जो आदमी जितनी ज्यादा उत्तेजनाओं के पीछे दौड़ता है, उसकी चेतना उतनी ही क्षीण होती चली जाती है, उसकी संवेदनशीलता मर जाती है। जो आदमी बहुत मिर्च–मसाले वाले भोजन करने लगा, उसकी जीभ की संवेदनशीलता खत्म हो जाती है। फिर छोटे–मोटे स्वाद तो उसे आते ही नहीं, अब तो बहुत तेज मिर्च–मसाले हों तो ही उसे पता चलता है कि कुछ भोजन है। वह व्यक्ति जो उत्तेजनाओं के पीछे नहीं दौड़ रहा है, वह साधारण से खाने में भी बहुत से सुख ले पाएगा। पानी पीना भी उसके लिए बड़ा तृप्तिदायी होगा।

बुद्ध बैठे हैं बोधिवृक्ष के नीचे, कुछ नहीं कर रहे हैं बस श्वास आ जा रही है, इस श्वास के लेने में भी उन्हें सुख मिल रहा है। क्यों? क्योंकि सुख के प्रति कोई राग नहीं है, सुख के लिए कोई दौड़ नहीं है। तो बड़ी विरोधाभासी लगती है यह बात सुनने में। जो आदमी सुख के पीछे जितना पागल होगा, वह उतने ही गहरे दुख में पहुंच जाएगा। और जो व्यक्ति सुख के प्रति आसक्ति को त्याग देगा, अमूर्च्छा साधकर, जागरूकता साधकर, संवेदनशीलता को बढ़ाकर, वह व्यक्ति उतना ही आनंद और शांति की अवस्था में पहुंच जाएगा। सुख के पीछे दौड़ने से पुनरावृत्ति की आकांक्षा पैदा होती है, लगता है यह बार–बार हो, और ज्यादा हो। एक कामना अगर पूरी हो जाती है तो हम अपनी कामना को और बड़ा विस्तार दे देते हैं। हम सोचते हैं कि और ज्यादा होना चाहिए। दस लाख रुपए चाहिए... अगर सफल हो गए पाने में, तुरंत हमारी कामना बीस लाख की हो जाएगी, फिर हम दुखी होंगे। बीस लाख मिल

जाएं तो हमारी कामना चालीस लाख की हो जाएगी। तो यदि हम सुख को पाने में सफल हुए तब भी हम दुखी होंगे, क्योंकि तब हमारी कामनाएं और बड़ी, और विराट हो जाएंगी। दुख ज्यों का त्यों बना ही रहेगा। तो पुनरावृत्ति की आकांक्षा और पुनरावृत्ति में हमारी संवेदनशीलता नष्ट हो जाएगी।

आप एक महान संगीतज्ञ को सुनने गए, वह बहुत सुंदर गीत वह गा रहा है, अद्भुत सितार बजा रहा है... कितनी देर इसको सह पाएंगे? पांच मिनट, दस मिनट, आधा घंटा, एक घंटा, जो शुरुआत में बहुत सुखद लग रहा था, दो घंटे बाद आप घबराने लगेंगे और सोचेंगे कि कब यह प्रोग्राम समाप्त हो और हम अपने घर जाएं। और अगर कोई पिस्तौल लेकर आपके पीछे खड़ा हो जाए कि बस छः घंटा और चलेगा प्रोग्राम, पूरा सुनना ही पड़ेगा वरना गोली मार देंगे। तब आपको पता चलेगा कि जो घटना शुरू में सुखदायी लग रही थी, वही बड़ी दुखदायी हो गई। एक दिन आप हिल स्टेशन पर घूमने गए, खूबसूरत सूर्योदय देखा, बड़े आनंद विभोर हो गए, यदि आपने सोचा कि कल फिर इसी स्पॉट पर आकर सनराइज देखेंगे, कल इतना सुख न मिलेगा, परसों और कम मिलेगा, चार–पांच दिन के बाद बिल्कुल भी न मिलेगा। उस हिल स्टेशन पर जो लोग रह रहे हैं, उन्हें कोई सुख नहीं मिल रहा है सूर्योदय का। उन्होंने शायद कभी नजर उठाकर देखा भी न हो। यह सुख सूर्योदय का नहीं है और अगर हम इसके पीछे पड़ गए, इसे पकड़ने के पीछे, यह बिल्कुल ही हाथ से खो जाएगा। सारे सुख ऐसे हैं जैसे मुट्ठी को आकाश में बांधने की कोशिश करें। जैसे ही हमने मुट्ठी कसी हाथ से वह हवा भी बाहर निकल गई, वह आकाश भी छूट गया, जो पहले कम से कम आभासित हो रहा था, कम से कम ऐपीयरेंस तो था।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन को एक सुनसान सड़क पर रात के अंधेरे में चार गुंडों ने पकड़ लिया। उन्होंने चाकू निकाल लिया, पिस्तौल निकाल ली, उसकी खोपड़ी पर लगा दिया और कहा कि जेब में जितने भी रुपए–पैसे हों निकाल कर दो वरना तुम्हारे खोपड़ी में गोली मार देंगे। नसरुद्दीन ने कहा भाई एक मिनट सोचने का मौका तो दो। उन गुण्डों ने कोई ऐसा आदमी नहीं देखा था जो सोचने का मौका मांगे, सिर्फ दो ही विकल्प थे या तो सारे पैसे दे दो या खोपड़ी में गोली मार देंगे। नसरुद्दीन ने कहा एक मिनट सोचने दो। नसरुद्दीन ने एक मिनट सोचा और कहा कि तुम गोली मार दो खोपड़ी में। क्योंकि पैसे तो मैंने बुढ़ापे के लिए बचा कर रखे हैं। और खोपड़ी में गोली मार देने से कोई हर्ज नहीं है, बिना दिमाग के मैंने बहुत लोगों को जीते देखा है! बुद्धि कोई उतनी जरूरी भी नहीं, पैसे बहुत जरूरी हैं। वह जो आदमी पैसे को पकड़ रहा है, वह पैसे का कोई सुख न ले पाएगा, वह पैसे का उपयोग भी नहीं कर पाएगा। मैंने देखा है बहुत अमीर लोगों को अतिकृपण रहते हुए, वे पैसे का भी उपयोग नहीं कर पाते। पैसे का सुख भी नहीं ले पाते, पकड़ इतनी ज्यादा है।

सुख लेने के लिए भी खर्च करने की क्षमता तो चाहिए। वह भी वे खो देते हैं। और उत्तेजनाओं का स्वाभाव है, छूटने का भय पैदा हो जाएगा। अगर तुम्हारे पास धन है और धन का लोभ बढ़ जाएगा, वह दुख देगा, और कहीं यह धन छूट न जाए, कोई चोर–डाकू न ले जाएं, इंकम टैक्स वाले न आ जाएं, इंकम टैक्स वाले यानी सरकारी चोर–डाकू, ऑफीशियल ढंग से डाका डालते हैं कुछ खास फर्क नहीं है, डर लगा ही रहेगा... वह डर तुम्हें दुखी करेगा। धन का न होना भी दुखी करेगा और धन आ जाए तो भी दुखी करेगा।

धनी आदमी किसी से प्रेम नहीं कर पाता, उसके नाते–रिश्तेदार उसके पास आते हैं, उसको हमेशा यही लगता है कि कुछ मांगने आए होंगे। जरूर कोई जरूरत होगी, ऐसे तो कोई आता नहीं, अब देखना ये पैसे मांगेगे, कहीं कोई जरूरत आ पड़ी है। धीरे–धीरे धनी आदमी का सारा प्रेम समाप्त हो जाता है, उसका कोई अपना नहीं रह जाता। ये धन, उसने सोचा था कि बहुत सुख देगा, इस धन की वजह से सब अपने भी पराए हो गए। दोस्त भी उसको दुश्मन जैसे जान पड़ते हैं। वह किसी से दोस्ती करना नहीं चाहता, किसी की तरफ प्रेमपूर्ण नजरों से देखना नहीं चाहता क्योंकि जरा किसी की तरफ प्रेमपूर्ण नजरों से देखो, वह हाथ फैलाएगा कि कुछ मदद कीजिए। वह आदमी बिल्कुल पत्थरदिल हो जाता है और फिर ये पाषाण हृदय व्यक्ति कैसे सुखी हो पाएगा! भागा था सुख के पीछे उसे पकड़ने के लिए और इसकी सुखाकांक्षा ही इसके दुख का कारण बन गई।

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के संग–संग रहने की सोचने लगा जिंदगी भर। उसने सोचा कि प्रेम से इतना सुख मिलता है, क्यों न विवाह कर लूं। उसने विवाह के फेरे डलवा लिए, शादी करके पत्नी बनाकर अपने घर में ले आया, बंधन में बांध लिया, घर के पिंजड़े में बंद कर लिया, लेकिन याद रखना अब वह सुख नहीं मिल सकेगा। एक आकाश में उड़ते पक्षी की स्वतंत्रता थी और एक तुमने उसके पर काटकर पिंजरे में बंद कर दिया। यह पक्षी अब वही पक्षी नहीं है, यह पत्नी अब वही स्त्री नहीं है जिसे तुम प्रेम कर रहे थे। सुख पाने की आकांक्षा में हम दुख निर्मित कर लेते हैं। किस प्रकार आसक्ति के द्वारा, राग के द्वारा, पकड़ के द्वारा, हम जोर से पकड़ना चाहते हैं और पकड़ते ही हमारी मुट्ठी बिल्कुल ही खाली हो जाती है। इस बात को जरा गौर से अपने जीवन के अनुभवों में समझना।

धन्यवाद!!

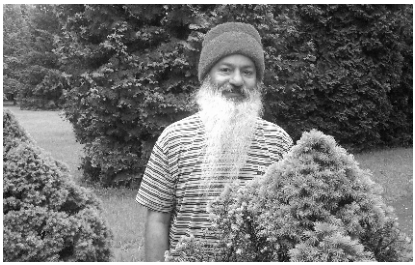

द्वेष : कारण एवं निवारण

साधनपाद : 8

दुःखानुशयी द्वेष

जहाँ जहाँ भी दुख मिलता है, जो भी देता क्लेश;
उन सबसे पैदा हो जाता, मन के भीतर द्वेष।

पतंजलि कहते हैं –

जहां–जहां भी दुख मिलता है, जो भी देता क्लेश,
उन सबसे पैदा हो जाता मन के भीतर द्वेष।

क्रोध उत्पन्न होता है, शत्रुता का भाव उत्पन्न हो जाता है और यह शत्रुता का भाव, यह द्वेष भाव हमें और भी ज्यादा दुखी कर जाता है। क्योंकि दुश्मनी के भाव से हम दूसरे को दुख देते हैं, वह दुख फिर–फिर लौटकर, हम पर कई गुना ज्यादा होकर वापस लौट आता है। यह जिंदगी एक 'इकोप्वाइंट' है। सब चीजें प्रतिध्वनित होकर वापस हम पर लौट आती हैं। जब हमें लगता है कि कोई चीज हमें दुख दे रही है, तो उसे नष्ट करने का भाव उत्पन्न होता है। यह प्रवृत्ति और भी दुख का कारण बनती है।

द्वेष के प्रति जागना, यह क्रोध का बढ़ा हुआ रूप है। क्रोध समझना बीज है, द्वेष उसका फल है। इस फल में से फिर हजारों बीज पैदा होंगे। यदि तुमने एक भी बीज को पनपने दिया, तो फिर हजारों बीज पैदा होंगे और ये राग–द्वेष एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस बात को खूब गहराई से पकड़ना। इसलिए जिनके साथ हमारा प्रेम है, राग है, उन्हीं के प्रति हमारा क्रोध है, उन्हीं से हमें घृणा भी है। जिन लोगों से हमें सुख मिलता है, ठीक उन्हीं लोगों से हमें दुख भी मिलता है। आप जरा गिनती करना किन–किन लोगों ने आपको दुख दिया। आप पाएंगे ये ठीक वही लोग हैं, जिन्हें आप अपना कहते हैं ...परिवार के लोग, प्रियजन, मित्र, परिचित। कोई अजनबी आदमी आपको दुख नहीं देता। जिनसे कभी राग

था, वही राग जब विषाक्त हो जाता है तो द्वेष बन जाता है। जिनसे सुख की कामना थी, उन्हीं से दुख प्राप्त होता है। मैं पढ़ रहा था एक गजल –

होती है तेरे नाम से वहशत कभी–कभी,
बरहम हुई है यूं भी तबियत कभी–कभी,
कुछ अपना होश था ना तुम्हारा ख्याल था,
यूं ही गुजर गई शबे फुरकत कभी–कभी
अश्कों में ढल गई तेरी सूरत कभी–कभी,
गुजरी है मुझ पे ये कयामत कभी–कभी।
ऐ दोस्त हमने तर्के मोहब्बत के बावजूद,
महसूस की है तेरी जरूरत कभी–कभी,
खुशियों के पीछे भागते बस भागते रहे,
जिंदगी में मिल न सकी राहत कभी–कभी,
होने लगी है प्यार से दहशत कभी–कभी,
खुद से ही उकता जाती है तबियत कभी–कभी।

वे जो चीजें आकर्षित कर रहीं थीं, एक दिन वही चीजें डराने लगती हैं। और तब उनके प्रति द्वेष, घृणा का भाव, शत्रुता जन्म लेती है। यह शत्रुता और नए–नए दुखों का आमंत्रण बनती है। उपाय क्या है? न तो गृहस्थ न तो संन्यस्थ, न आसक्ति न विरक्ति, न मोह न मोह छोड़ के भागना, न भोग न त्याग ... इन दोनों के पार, इन दोनों द्वंद्व के पार, तीसरे कोण पर जाना, वहां है शांति और आनंद।

पतंजलि के इस सूत्र को समझाते हुए, अपनी प्रसिद्ध किताब 'योगा– द अल्फा ऐन्ड द ओमेगा' में ओशो कहते हैं– होशपूर्ण आदमी अनासक्त होता है, वह न तो गृहस्थ होता और न ही मुनि होता। वह किसी मठ की ओर नहीं सरकता। और न ही वह पहाड़ों की ओर भागता, वह रहता है वहीं, जहां कि वह होता है। वह तो बस अपने भीतर की ओर मुड़ जाता है, अंतर्यात्रा पर निकल जाता है, बाहर उसके लिए कोई चुनाव नहीं होता। वह न तो सुख से चिपकता और न ही दुख से। वह न तो सुखवादी होता और न स्वयं को पीड़ा पहुंचाने वाला। वह तो बढ़ता है अपनी भीतर की ओर, दुख और सुख का खेल देखते हुए, प्रकाश और छाया का, दिन और रात का, जीवन और मृत्यु का खेल देखते हुए वह इन दोनों के पार, स्वयं के भीतर जाने लगता है। बाहर द्वैत मौजूद है और वह दोनों का अतिक्रमण करता चला जाता है। वह हो जाता है सजग और होशपूर्ण, और उस होश में पहली बार कुछ घटता है जो कि न सुख है, न दुख है, वह शांति में, आनंद में प्रवेश करता है।

याद रखना, आनंद सुख नहीं है, सुख तो सदा मिला–जुला रहता है दुख में। आनंद न तो दुख है और न सुख है, आनंद दोनों के पार है और दोनों के पार तुम हो। जो है तुम्हारा स्वभाव, तुम्हारी शुद्धता, होने की तुम्हारी स्वच्छ पारदर्शी अवस्था। एक

इन्द्रियातीत परमदशा। तब तुम रहते हो संसार में, लेकिन संसार गतिमान नहीं होता तुम्हारे भीतर। तुम अनछुए रह जाते हो। जहां कहीं भी तुम होते हो, तुम एक कमल की तरह रहते हो जो रहता तो है कीचड़ में, किंतु कीचड़ उसे छू भी नहीं पाती। भारत के ऋषियों ने कमल के फूल की उपमा को बड़ा महत्त्व दिया है। कीचड़ में रहता है कमल, फिर भी कीचड़ उसे नहीं छूती। जल में कमलवत हो जाता है, साक्षी में जीने वाला साधक। न वो संसार को पकड़ता है, न संसार को छोड़कर भागता है। न ही सुखों से उसकी आसक्ति होती, न ही दुखों से उसकी विरक्ति होती है।

दो प्रकार के साधक हुए हैं – एक जनक जैसे साधक, जो राजमहल में रहकर सुख के साक्षी बन गए, एक महावीर जैसे साधक जो जंगल में, कठिन परिस्थितियों में, दुखद स्थितियों में साक्षी बन गए। यदि आप मुझसे पूछें कि कौन सा मार्ग सही है, मैं आपसे कहूंगा – न जनक बनना, न महावीर बनना। जीवन में सुख–दुख दोनों अपने आप ही आ–जा रहे हैं। तुम तो बस साक्षी बने रहो। सुख आए तो सुख के साक्षी बन जाओ, दुख आए तो दुख के साक्षी बन जाओ। कहीं भागने की जरूरत नहीं, कुछ पकड़ने की जरूरत नहीं, असली बात है अपने भीतर मुड़ो। सुख और दुख दोनों बाहर हैं, तुम्हारी साक्षी चेतना, तुम्हारे भीतर है। वह द्वंद्व के पार है, तुम द्वंद्व के पार चलो, वरना द्वेष में पड़ोगे ही पड़ोगे। द्वेष से बच नहीं सकते। जो व्यक्ति राग में पड़ गया, प्रेम में पड़ गया, अब वह दुश्मनी से बच न सकेगा। जिसने मित्रता साधी उसने शत्रुता को आमंत्रण दे दिया। तुम याद करो, आज जिनसे तुम्हारा लड़ाई–झगड़ा है, वे लोग कौन हैं? वे वही लोग हैं, जिनसे कभी तुम्हारा गहन लगाव था। तो आगे के लिए सावधान! अगर तुम शत्रुता से बचना चाहते हो तो मित्रता से भी बच जाना। कबीर साहब ने कहा है –

कबिरा खड़ा बजार में, मांगे सब की खैर, न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर।

बैर से बचने का उपाय, दोस्ती से बच जाना। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बाहर संसार में तुम्हारे मित्र नहीं होंगे। होंगे, वे उनकी तरफ से होंगे, शत्रु भी होंगे, वे उनकी तरफ से होंगे, तुम्हारी तरफ से नहीं। तुम 'अनअटैच्ड' रहोगे, जल में कमलवत हो जाओगे। आसक्ति और विरक्ति के पार चले जाओगे। तुम किसी चीज को पकड़ोगे नहीं, या किसी चीज से चिपकोगे नहीं, और न ही किसी चीज से बचने की कोशिश करोगे। द्वेष उत्पन्न होते ही हैं दुख से बचने की कोशिश में। हम उसे हटा देना चाहते हैं, हम उसे मिटा डालना चाहते हैं।

मैंने सुना है, शंकर जी के एक भक्त ने बहुत तपस्या की। शंकर जी प्रसन्न हो गए उससे, कहा कि मांग ले वत्स, क्या वरदान चाहता है? उसने कहा बस प्रभु, मुझे एक ही आशीर्वाद दे दें कि जब भी मैं कुछ मांगू, मेरी मांग तुरंत पूरी हो जाए। शंकर जी ने कहा बिल्कुल ठीक। एक शर्त मेरी भी है इसमें, जितना तुझे मिलेगा, उससे दोगुना तुम्हारे पड़ोसी को मिलेगा। भक्त को उस समय तो समझ में नहीं आई कि इसमें कुछ झंझट की बात है, उसने कहा मुझे क्या लेना–देना है पड़ोसी से। लेकिन थोड़े दिनों बाद बड़ी मुसीबत खड़ी हो

गई। उसने मांगी एक कार और तुरंत उसके घर के सामने एक गैरेज बन गया और एक कार प्रकट हो गई। लेकिन उसने देखा कि उसके पड़ोसी के घर के सामने दो कार खड़ी हैं। भारी ईर्ष्या हुई और द्वेष में पड़ गया। उसने चाहा कि एक बेटा पैदा हो जाए, पड़ोसी के घर जुड़वा बेटे पैदा हो गए।

फिर उसने किसी वकील की सलाह ली। वकीलों का काम ही है लोगों को उलझाना। वकील ने उसे सलाह दी की तू शंकर जी से वरदान मांग कि तेरे घर के सामने दस कुएं खुद जाएं। तो पड़ोसी के घर के आगे बीस कुएं खुद जाएंगे, फिर अगला वरदान मांगना कि मेरी एक आंख फूट जाए, पड़ोसी की दोनों आंखें फूट जाएंगी। फिर समझ लेना उसकी क्या दुर्गति होगी, घर के सामने बीस कुएं और अंधा पड़ोसी। जब आदमी द्वेष पर उतर आता है, दुश्मनी पर उतर आता है तो खुद के नुकसान की कीमत चुकाकर भी दूसरे को हानि पहुंचाना चाहता है। मेरी एक आंख फूट जाए, कोई हर्ज नहीं, एक आंख से काम चल जाएगा, लेकिन पड़ोसी की दोनों ओखें फूट जाएं। तो द्वेष की भावना दुख को और भी बढ़ाती है। और एक बार हम इस दुष्चक्र में फंस गए, फिर इससे निकलना बहुत मुश्किल होता है। दुख से और ज्यादा द्वेष पैदा होगा, और द्वेष से फिर दुख पैदा होगा, फिर उस दुख से और द्वेष उत्पन्न होगा। इस दुष्चक्र से बाहर निकलने का रास्ता क्या है? वह है साक्षीभाव, जागरूकता। दुख से बचने की कोशिश न करो, सुख को पकड़ने की कोशिश न करो। साक्षीभाव से तुम राग और द्वेष दोनों से बच जाओगे। इन दोनों से जो चिपकने की जो प्रवृत्ति है, वह समाप्त होगी और तब तुम मुक्त हो जाओगे, अपने अंतस्थल में स्थित हो जाओगे। उस चिपकने की प्रवृत्ति से बचो।

मैंने सुना है, सरदार विचित्तर सिंह पहली बार हवाईजहाज में यात्रा कर रहे थे। घोषणा हुई कि जब एरोप्लेन उड़ेगा तब वायु का दबाव कम होने से एयरप्रेशर कम होने से, कान में तकलीफ हो सकती है। कृपया उस समय च्युइंगम का उपयोग करें। विचित्तर सिंह ने इस्तेमाल किया। फिर जब उड़ान समाप्त हुई, उतरने लगा, तब उसने जाकर एक एयर होस्टेस से पूछा कि मैडम, एयरप्रेशर वाली तकलीफ से तो बच गए, लेकिन कान में बड़ी तकलीफ हो रही है, उस च्युइंगम को कान से बाहर कैसे निकालें, बुरी तरह चिपक गई है। न सुख से चिपकना, न दुख से बचने की कोशिश करना, साक्षी हो जाना। साक्षी ही सूत्र है शांत होने का, आनंदित होने का।

धन्यवाद!!

मृत्यु : भय से मुक्ति

साधनपाद : 9

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेश

जीवन में पग–पग पर, मृत्यु–भय पीछा करता है;
विद्वानों में भी जीवन का, मोह बना रहता है।

पतंजलि ने दुख के पांच कारण कहे, आज हम पांचवे और अंतिम कारण की चर्चा करेंगे। पतंजलि कहते हैं, जीवन में पग–पग पर मृत्यु–भय पीछा करता है, विद्वानों में भी जीवन का मोह बना रहता है। इस मोह को 'जिजीविषा' या 'जीवेषणा' कहा जाता है, जीने की इच्छा। आश्चर्य की बात, पतंजलि ने इसे दुख का कारण बताया है! जिस व्यक्ति के भीतर जितनी घनी जीवेषणा है, वह व्यक्ति उतना ही दुखी होगा। और बड़ी विरोधाभासी बात है, एक दुष्चक्र निर्मित होगा, आदमी जितना दुखी होगा, उसकी जीने की आकांक्षा उतनी ही प्रबल और घनी होती जाएगी क्योंकि उसे लगता है कि जीवन से अभी कोई सुख तो मिला नहीं, अभी तक की जिंदगी तो व्यर्थ गई, भविष्य में शायद कोई सुख पा लूं। इस आशा में जीने की कामना और सघन होती चली जाती है। तो जितनी ज्यादा जीवेषणा, उतना ज्यादा दुख और जितना ज्यादा दुख, उतनी ही घनी जीवेषणा। इस दुष्चक्र का ठीक विपरीत भी संभव है। जिस व्यक्ति के भीतर जीवेषणा कम है, वह व्यक्ति सुखी हो पाएगा। जिसे मृत्यु का भय नहीं है, वह अभी और यहीं वर्तमान में जीवन को भोग पाएगा, उसके जीवन में आनंद और शांति उतनी ही घनी होगी और कोई व्यक्ति जितना प्रसन्न होगा, प्रफुल्लित होगा, जीवन के प्रति उसकी आसक्ति उतनी ही घटती जाएगी। उसे फिर मौत से भी डर नहीं लगेगा।

संत कबीर साहब ने कहा है –
जिस मरनी से जग डरे मेरो मन आनंद, कब मरिहौं कब भेंटिहौं पूरन परमानंद।

इंतजार करता हूं, प्रतीक्षा करता हूं उस सौभाग्य की घड़ी की, जब मेरी मृत्यु होगी, तब मैं उस पूर्ण परमानंद में विलीन हो जाऊंगा। कौन कह सकता है ऐसा वचन? जिस व्यक्ति का जीवन आनंदपूर्ण हो। सुनने में तो बड़ा उल्टा लगेगा, हमें लगता है कि दुखी लोग शायद मर जाना चाहते हैं। नहीं, दुखी लोग आशा में जीते हैं, भविष्य की कामना से जीते हैं। प्रसन्न व्यक्ति मर जाना नहीं चाहता, लेकिन जीवन को जोर से पकड़ने की उसकी प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है, उसकी जीवेषणा खतम हो जाती है और इसलिए मृत्यु का उसे अब कोई भय नहीं रह जाता है। अभय को केवल वही व्यक्ति उपलब्ध हो सकता है, जो प्रसन्न है, पुलकित है, जो क्षण–क्षण में आनंदित है। अब उसे मौत का भी डर नहीं, क्योंकि मौत उससे कुछ छीन नहीं सकती।

उपनिषद् में ययाति की कहानी आपने सुनी होगी, हजार साल तक वह जिंदा रहा। अंततः यमराज जब उसे जबरदस्ती ले जाने लगे, उसने कहा कि अभी तो मेरे कोई काम ही पूरे नहीं हुए, अभी तो सारे काम पेंडिंग पड़े हुए हैं। यमराज ने कहा कि तुम पागल हो, जो काम हजार साल में पूरा नहीं हो पाया, वह दो हजार साल में भी पूरा नहीं होगा। जिंदगी में काम कभी पूरे होते ही नहीं, आदमी पूरे हो जाते हैं, काम पूरे नहीं होते। कितना भी लंबा जीवन मिल जाए, दुखी व्यक्ति जीवन को जोर से पकड़ता है। और इस पकड़ने की कोशिश में जीवन उसके हाथ से खिसक जाता है।

जीवन तो प्रतिपल खिसक ही रहा है, क्षण–क्षण हम मरते जा रहे हैं। हमारा प्रत्येक जन्मदिन वास्तव में मृत्यु दिन के रूप में मनाया जाना चाहिए। मैं पचास साल का हो गया, इसका अर्थ है कि मेरी जिंदगी के पचास साल घट गए। समझो मेरी उम्र साठ साल होने को है तो अब सिर्फ दस साल और बचे। मेरा मृत्यु दिन अब नजदीक आता जा रहा है। एक साल बाद, सिर्फ नौ साल बचेंगे, दो साल बाद सिर्फ आठ साल और बचेंगे। जिंदगी रोज–रोज हाथ से खिसकती जा रही है। सुनो इस सूत्र को ओशो कैसे समझाते हैं–

यह भय मृत्यु का भय नहीं जो कभी भविष्य में आने वाली है और तुम्हें नष्ट करने वाली है, वह तो हर क्षण आ रही है। जीवन सरकता जा रहा है तुम्हारे हाथ से और तुम बिल्कुल ही अक्षम हो। तुम पहले ही मर रहे हो, जिस दिन तुम पैदा हुए, तुमने मरना शुरू कर दिया। जीवन की प्रत्येक घड़ी, मृत्यु की भी घड़ी है। भय किसी अज्ञात मृत्यु का नहीं जो कभी भविष्य में प्रतीक्षा कर रही है, भय तो बिल्कुल अभी ही है। जीवन हाथ से निकला जा रहा है और तुम असमर्थ हो, तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

मृत्यु का भय मौलिक रूप से भय है जीवन का, जो कि तुम्हारे हाथों से खिसकता जा रहा है। तब भयभीत होकर तुम जीवन से चिपकते हो, लेकिन चिपकना कभी उत्सव नहीं बन सकता, चिपकना हिंसक है। जितना ज्यादा तुम जीवन को पकड़ते हो, उतने ही ज्यादा तुम अपनी असमर्थता को महसूस करते हो। उदाहरण के लिए यदि तुम किसी स्त्री से प्रेम करते हो और तुम उसके पीछे पड़ जाते हो तो जितने ज्यादा तुम उससे चिपकते हो, उतना ही तुम

उसे बाध्य करते हो कि वह स्त्री तुमसे दूर हटती जाए। क्योंकि तुम्हारा पीछे–पीछे लगे रहना उस पर बोझिल होता जाएगा। जितना ज्यादा तुम उस पर कब्जा जमाने की कोशिश करोगे, उतना ही वह सोचेगी कि कैसे मुक्त हो, कैसे तुमसे दूर हो। मैं कहता हूं तुमसे कि जिंदगी भी एक स्त्री के समान है, उससे चिपकना मत। वह उनके पीछे आती है जो उसके पीछे नहीं जाते। वह उन्हें बहुत ज्यादा मिलती है जो उसे जोर से पकड़ते नहीं। यदि तुम चिपकते हो तो वह चिपकाव ही जीवन को स्थगित कर देता है। तुम्हारा भिखमंगापन ही जीवन पर रोक लगा देता है। सम्राट बनो, मालिक होओ, जीवन को उसकी संपूर्णता में जिओ, लेकिन उससे चिपको मत। किसी चीज को पकड़ो मत, चिपकाव तुम्हें क्रूर और हिंसक बना देता है, चिपकाव तुम्हें भिखमंगा बना देता है और जीवन उनके लिए है जो सम्राट हैं, उनके लिए नहीं जो कि भिखारी हैं। यदि तुम भीख मांगते हो तो तुम कुछ भी न पा सकोगे।

जीवन उन्हें बहुत ज्यादा देता है जो कभी मांगते ही नहीं। जीवन उनके लिए एक आशीष बन जाता है जो उसे पकड़ते नहीं। जियो जीवन को आनंदित होकर, उत्सव मनाओ, लेकिन कंजूसी कभी मत करना, आग्रहपूर्वक कभी उससे चिपकना मत। जीवन के प्रति यह चिपकाव ही तुम्हें मृत्यु का भय देता है, क्योंकि जितना ज्यादा तुम चिपकते हो उतना ही ज्यादा तुम समझ नहीं पाते कि जीवन वहां नहीं है, वह जा रहा है, वह खिसक रहा है और तब मृत्यु का भय आ खड़ा होता है। पतंजलि कहते हैं जीवन में से गुजरते हुए मृत्युभय है, जीवन से चिपकाव है और यह बात सभी में प्रबल रूप से देखी जाती है, यहां तक कि विद्वानों में भी क्योंकि तुम्हारे विद्वान बिल्कुल तुम्हारे जैसे ही मूढ़ हैं। जिन्हें तुम पंडित कहते हो उन्होंने भी जीवन के सत्य को जाना नहीं, बस उन्होंने चीजें स्मरण कर ली हैं, किताबें रट ली हैं, बड़े विद्वान हो गए, पंडित बन गए, वे जीवन को जानते ही नहीं, वे जीवन से अपरिचित हैं।

पतंजलि बड़ी विचित्र बात कहते हैं कि यह जीवन से चिपकाव और मृत्यु से भय बड़े विद्वानों में भी पाया जाता है, मूर्ख और विद्वानों में कोई फर्क नहीं है। डिग्रियां उनके पास बड़ी–बड़ी होंगी, सिद्धांत और विचार बड़े उच्चकोटि के होंगे, लेकिन जहां तक मृत्यु का भय है वह दोनों में एक सा है, बराबर है। कागज पर कलम चलाने से कोई विद्वान हो जाता है, शास्त्र पढ़ने से, ग्रंथ अध्ययन करने से कोई विद्वान हो जाता है, लेकिन इससे उसकी जीवेषणा नष्ट नहीं हो जाती। मैं पढ़ रहा था एक गजल –

गिरा है कटकर परिंदे का अंग कागज पर,
जमा हुआ है बहुत सुर्ख रंग कागज पर
गिरा हुआ है कटकर परिंदे का अंग कागज पर,
वो मेरे सामने खुलकर कभी नहीं आए,
हमेशा होती रही अपनी जंग कागज पर,
विद्वान कलम की लड़ाई लड़ रहा है, तर्कों की तलवार चला रहा है।

वो मेरे सामने खुलकर कभी नहीं आए,
हमेशा होती रही मेरी जंग कागज पर।
कलम की नोंक चुभी क्या हमारी अंगुली में,
मचल उठी है लहू की तरंग कागज पर।
गजल में ढल न सकी लाख मैंने कोशिश की,
तड़प के रह गई मेरी उमंग कागज पर।
मैं एक राज की सूरत था सब की नजरों में,
लिखा गया है मुझे तेरे संग कागज पर।
जल्द ही इस दरिया के पार पहुंच जाऊंगा,
बना रहा हूं मैं अंधी सुरंग कागज पर।

वे जो ज्ञानी लोग हैं, वे केवल सोचते हैं कि वे दरिया पार कर जाएंगे, नीचे से सुरंग बना रहे हैं, लेकिन ये कागजी सुरंग है। उस पार कभी पहुंच नहीं पाएंगे। ये कागज की नाव है, तुम्हारे कागज के ग्रंथ और तुम्हारे शास्त्र, ये कागज की नाव भवसागर को पार नहीं करा सकती। भवसागर तो सिर्फ एक ही चीज पार करा सकती है और वह है साक्षी भाव। दृश्य के साथ तादात्म्य को तोड़ो, द्रष्टा के साथ जोड़ो।

नई वैज्ञानिक खोजों से पता चला है कि जन्म के साथ बच्चा अपने मस्तिष्क में और स्पाइनल कॉर्ड में जितने न्यूरॉन्स लेकर आता है, जितनी नर्व सेल्स लेकर आता है, उसमें कभी एक भी नई सेल जुड़ती नहीं। और पुरानी सेल्स जन्म के साथ ही, पहले दिन से ही पांच हजार नर्व सेल्स प्रतिदिन मरने लगती हैं। तुम यह नहीं सोचना कि मौत एक घटना है जो 70 साल बाद या 80 साल बाद कभी जाकर घटेगी, मौत प्रतिक्षण घट रही है। यहां मेरा प्रवचन पूरा हो पाएगा तब तक तुम्हारे भीतर से पांच-सात सौ नर्व सेल्स मर चुकी होंगी।

प्रतिदिन पांच हजार नर्व सेल्स नष्ट होती हैं और एक भी कभी रिप्लेस नहीं होती। शरीर के अन्य अंगों में तो दूसरी सेल्स बन जाती हैं, तुम्हारी चमड़ी कट जाती है, घाव हो जाता है फिर भर जाती है, नई चमड़ी बन जाती। किसी बीमारी में लीवर खराब हो जाता है, बहुत सी सेल्स मर जाती हैं, फिर नई लीवर सेल्स बन जाती हैं। हड्डी टूट जाती है, हड्डी फिर जुड़ जाती है। लेकिन जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कोशिकाएं हमारे शरीर में हैं, मस्तिष्क की, वे कभी भी नहीं बनतीं। और रोज पांच हजार कोशिकाएं मर रही हैं! एक दिन ऐसा आएगा कि हमारा मस्तिष्क इस शरीर को चलाने में असमर्थ हो जाएगा, उस दिन पूर्ण मृत्यु हो जाएगी। वह मृत्यु की पूर्णता है, मृत्यु एक प्रोसेस है जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण घट रही थी। वह कोई इवेन्ट नहीं है जो अंत में जाकर घटित होगा, एक लंबी प्रक्रिया है, जन्म के साथ ही शुरू हो गई। और इसलिए जीवन और मृत्यु को अलग-अलग मत समझना। जन्म और मौत एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जन्म के साथ ही मौत की तैयारी शुरू हो गई। फिर हम क्या करें, यह हाथ से

खिसकता हुआ जीवन, इसके प्रति जैसे ही होश आता है, हम जीवन को और जोर से पकड़ने की कोशिश करते हैं। उस जीवेषणा की वजह से हम जीने में और भी अक्षम हो जाते हैं। वह मृत्युभय इतना सताता है कि हम वर्तमान का भी सुख नहीं ले पाते और जब हम सुख नहीं ले पाते, आनंदित नहीं हो पाते तब हम कामना से ग्रसित हो जाते हैं कि कम से कम भविष्य में कभी तो आनंद मिले, थोड़ी तो शांति की झलक मिले। अभी तो कुछ हुआ ही नहीं है, अभी तो मैंने जीवन जिया ही नहीं है। जीवेषणा और प्रबल हो जाती है। इस दुष्चक्र के प्रति जागरूक होना। दुख और जीवेषणा एक–दूसरे को बढ़ाते हैं। और ऐसा मत सोच लेना कि जो लोग आत्महत्या कर लेते हैं उनकी जीवेषणा खत्म हो गई। उनकी जीवेषणा भी बड़ी प्रबल है, बड़ी कंडिशनल लाइफ, एक सशर्त जिंदगी वे जीना चाहते थे। जिंदगी में उनकी शर्तें पूरी नहीं हुईं, इसलिए वे मर जाना चाहते हैं, इसलिए वे सुसाइड कर लेते हैं। ये नहीं सोचना कि उनकी जीवेषणा समाप्त हो गई है। किसी शायर ने लिखा है –

एक बार ही जीने की सजा क्यों नहीं देते,
गर हर्फ गलत हूं तो मिटा क्यों नहीं देते,
इस दर्द शबे हिज्र की लज्जत है पुरानी,
देना है तो फिर दर्द नया क्यों नहीं देते,
साया हूं तो फिर साथ न रखने का सबब क्या,
पत्थर हूं तो रास्ते से हटा क्यों नहीं देते।

वे जो सुसाइड कर लेते हैं, उनकी भी जीवेषणा बड़ी प्रबल है। उनकी कुछ शर्तें हैं, कि इन शर्तों के साथ ही जीना पसंद करूंगा वरना मर जाना पसंद करूंगा। वे मुक्त नहीं हुए इस जीवन से, वे मुक्त नहीं हुए इस जीवेषणा से। मुक्त कौन है, वह जो जीवन मृत्यु के इस खेल में साक्षी हो गया। तो जीवेषणा का दुख अत्यंत सूक्ष्म है, इसलिए पतंजलि ने पांच दुख के कारणों में उसे अंतिम रखा है।

जरा गौर से देखना तुम्हारी जीने की चाहत ही तुम्हें ठीक से जीने नहीं दे रही है। इस जीवेषणा से मुक्त हो जाओ, जागरूकता के माध्यम से, तब पल–पल तुम्हारा जीवन एक उत्सव हो जाएगा। और जिस व्यक्ति का जीवन उत्सव हो गया, वह मृत्यु को भी उत्सवपूर्वक स्वीकार लेता है। ओशो ने हमें जिंदगी का उत्सव मनाना ही नहीं सिखाया, मृत्यु का महोत्सव भी मनाना सिखाया। साक्षीभाव उसकी कुंजी है, जागरूकता उसकी विधि है।

धन्यवाद!!

प्रतिप्रसव : क्लेश-मुक्ति का उपाय

साधनपाद : 10

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः

मुक्ति चाहिए क्लेशों से, तो उनका उद्गम जान;
चित्त स्रोत है क्लेशों का, आत्मा में कर अवसान।

आज हम पतंजलि सूत्र के साधनपाद के दसवें सूत्र को लेंगे। पतंजलि कहते हैं–

मुक्ति चाहिए क्लेशों से तो उनका उद्गम जान, चित्त स्रोत है क्लेशों का आत्मा में कर अवसान। जैसे सागर की सतह पर लहरें होतीं हैं, पानी उठता–गिरता है, आंधी और तूफ़ान आते–जाते हैं और एक सागर की गहराई है जहां पर आंधी और तूफ़ान कभी नहीं पहुंचते। ये जो लहरों का उठना–गिरना है, इसका नाम है चित्त। चित्त यानी चेतना की सतह। और जिसे हम आत्मा कह रहे हैं, चेतना कह रहे हैं, वह है इसकी गहराई। वहां कोई लहरें नहीं होतीं, वहां कोई तरंगे नहीं उठतीं। सतह से गहराई की ओर जाना है, चित्त की गहराई चेतना है, चेतना की सतह चित्त है। मूल उद्गम की ओर वापसी... जापान के झेन फकीर कहते हैं, रिटर्निंग टू द सोर्स, स्रोत पर वापस। महावीर इसी को कहते हैं प्रतिक्रमण।

आपने एक शब्द सुना होगा, अतिक्रमण। शहर में लोग सड़क पर कब्जा कर लेते हैं, मकान आगे बढ़ा लेते हैं, उसे कहते हैं, अतिक्रमण। प्रतिक्रमण का अर्थ है इसके ठीक विपरीत, फिर अपनी जगह पहुंचना, अपनी सीमा में वापस आना। मध्ययुग के संतों ने एक प्रतीक का प्रयोग किया है, नदी की धार में उल्टा बहना, मीनमार्ग उसे कहा है। सामान्यतः गंगा बह रही है गंगोत्री से और जा रही है सागर की तरफ, यदि गंगा उल्टी बहने लगे, वापस गंगोत्री की तरफ...।

पतंजलि कहते हैं, यदि हमारे जीवन की धारा पलटकर राधा बन जाए, उल्टी दिशा में गमन करने लगे, तब सारे क्लेश, सारे दुख समाप्त हो जाएंगे। वे उसके मूल पर जाकर ही समाप्त हो सकते हैं, मूल का अर्थ होता है जड़। जैसे एक वृक्ष की शाखाएं... तने में से बहुत सी शाखाएं निकलीं, शाखाओं में से और अनेक–अनेक शाखाएं निकलीं, हजारों–लाखों पत्ते निकले, इन पत्तों को काटने से वृक्ष की और कलम हो जाएगी, वृक्ष और घना हो जाएगा। यह उपाय नहीं है,

यदि इस वृक्ष से मुक्त होना है तो इस वृक्ष की जड़ें खोदनी होंगी। पतझड़ का मौसम आता है, सारे पत्ते झड़ जाते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि पेड़ समाप्त हो गया। फिर आएगी ऋतु बसंत की, फिर नई कोपलें फूट आएंगी, फिर नई शाखाएं निकल आएंगी, फिर फल और फूल आ जाएंगे, फिर हजारों बीज बन जाएंगे, वृक्ष और फैल जाएगा, विराट हो जाएगा, उसकी और संतति उत्पन्न हो जाएगी। ठीक इसी प्रकार हैं ये पांच क्लेश के स्रोत जो पतंजलि ने बताए– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अविनिवेष।

अविनिवेष यानी जीवेषणा, जीने की प्रबल इच्छा। इन पांचों का मूल स्रोत क्या है, इनकी जड़ क्या है, उस जड़ तक हमें जाना होगा। वह जड़ अविद्या ही है, अविद्या यानी जागरूकता की कमी, मूर्च्छा का होना, बेहोशी का होना। आध्यात्मिक रूप से हम मूर्छित हैं, उसका इलाज क्या होगा? उसका इलाज है, ज्यादा से ज्यादा जागरूक होना, और–और होशपूर्ण होना। यही एकमात्र उपाय है, चाहे तुम उसे ध्यान कहो, चाहे योग कहो, चाहे कोई और नाम दो। विधि बस एक ही है– होश की मात्रा में बढ़ोत्तरी। सामान्यतः जागरण की अवस्था में, जब हम अपने ही प्रति जागे हुए जीते हैं तब दुख के इन पांचों कारणों की मूल जड़ कट जाती है। और एक बार जड़ कट गई तो दुख का यह वृक्ष समाप्त हो जाता है। ओशो इस सूत्र को समझाते हुए कहते हैं– पांच क्लेशों के मूल कारण मिटाए जा सकते हैं, उन्हें पीछे की ओर उनके उद्‌गम तक विसर्जित कर देने से। पतंजलि इसे कहते हैं, प्रतिप्रसव। यह एक बहुत–बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है– प्रतिप्रसव की प्रक्रिया। यह प्रक्रिया है कारण में फिर से समाविष्ट होने की, कार्य को कारण तक लौटाने की, प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया। तुमने सुना होगा, पश्चिम के मनोवैज्ञानिक जैनेव का नाम, वह आदमी जिसने प्राइमल थेरेपी का फिर से आविष्कार किया। प्राइमल चिकित्सा प्रतिप्रसव का ही एक रूप है। यह पतंजलि की प्राचीनतम विधियों में से एक है। प्राइमल चिकित्सा में, जैनेव लोगों को सिखाता है, उनके बचपन तक लौट जाने की प्रक्रिया। यदि जीवन में कोई कठिनाई आती है तो फिर तुम लौटो अपने मूल उद्‌गम तक, जहां से वह कठिनाई शुरू हुई थी क्योंकि तुम समस्या को सुलझाने की कोशिश कर सकते हो ऊपरी सतह पर, लेकिन जब तक तुम जड़ पर ही न पहुंच जाओ, वह सुलझेगी कभी नहीं। परिणाम नहीं सुलझाए जा सकते, उन्हें कारणों तक लौटाना होगा। यह ऐसा होता है जैसे कि एक वृक्ष है और तुम नहीं चाहते उस वृक्ष का होना। लेकिन तुम केवल उसकी टहनियां काटते हो, पत्तों को तोड़ते हो तो फिर और टहनियां फूट आती हैं, नई कोपलें निकल आती हैं। तुम एक पत्ता काटते हो तो तीन पत्ते ऊग आते हैं। तुम्हें जाना पड़ेगा जड़ों तक। प्रतिप्रसव बहुत सुंदर सत्य है।

प्रसव का अर्थ हुआ जन्म, जब बच्चा जन्म लेता है तो प्रसव। प्रतिप्रसव का अर्थ है, तुम फिर से स्मृति में उत्पन्न हुए, तुम जन्म तक लौट गए। उस प्रघात में जब तक कि तुम उत्पन्न हुए थे, तुम उसे फिर से जीने लगे। याद रहे तुम केवल उसे स्मरण नहीं कर रहे हो, तुम उस घटना को फिर से पूरा का पूरा जी रहे हो। पुनः उसे जीना ही प्रतिप्रसव है। मूल पर जाना होगा।

दुखों को सीधा–सीधा उनके लक्षणों से लड़कर नहीं मिटाया जा सकता। किसी आदमी को लक्षण है सिर दर्द हो रहा है, कंपकपी लग रही है, तेज बुखार चढ़ रहा है, खून की कमी होती

जा रही है, भूख नहीं लग रही है, इन एक–एक लक्षणों से नहीं लड़ा जा सकता। यह पता लगाना होगा कि ये लक्षण किस बीमारी की वजह से हैं? हो सकता है कि मलेरिया का कीटाणु मौजूद हो। उस मलेरिया के कीटाणु को मारना होगा। फिर ये कंपकपी दूर हो जाएगी, बुखार समाप्त हो जाएगा, फिर खून की मात्रा बढ़ने लगेगी, सिरदर्द और बदनदर्द समाप्त हो जाएगा। यदि हम एक–एक लक्षण से लड़े तो हम किसी से न जीत पाएंगे, इसे हमेशा याद रखना। कारण को खोजना और अध्यात्म के जगत में सारी आध्यात्मिक बीमारियों का, सारे क्लेशों का कारण सदा एक ही है और वह है आध्यात्मिक मूर्छा।

किसी शायर ने लिखा है –

अंजामे सफर देख के रो देता हूं, टूटे हुए पर देख के रो देता हूं,

रोता हूं कि आहों में असर हो लेकिन आहें बेअसर देख के रो देता हूं।

प्रार्थनाएं करने से कुछ न होगा, आहें भरने से कुछ न होगा। कहीं कोई ईश्वर आकाश में बैठा तुम्हें दुख नहीं दे रहा है, कि उससे प्रार्थना करो कि हे प्रभु! हमें दुख मत दो। कोई दुख देने वाला ईश्वर कहीं नहीं बैठा है, हमारी ही भूलचूक, हमारी ही मूर्छावश हम दुख पा रहे हैं। इसलिए न तो आहें भरने से कुछ होगा, न तो घुटने टेक के प्रार्थना करने से कुछ होगा, अपने दुख का कारण समझना होगा। और जो दुख का कारण है, मजे की बात है, हम उसी को सुख का कारण समझ रहे हैं, हम उसी को छाती से चिपकाए बैठे हैं। हमने खुद कांटे चुभा के रखे हैं, यद्यपि हमने उनको फूल मान के चुभाया था, हमने उनको कांटे की तरह देखा नहीं था। एक कवि का गीत मैं पढ़ता था। लिखा है उसने, अपनी प्रेयसी के लिए –

आज वेदना सुख पाती है,

तेरी याद अचानक आकर मुझे रुला जाती जो क्षण भर इसका अर्थ यही है,

प्रेयसी याद तुझे मेरी आती है,

आज वेदना सुख पाती है।

मेरे गीतों में सज–सजकर जाती जो तेरी छवि सुंदर,

इसका अर्थ यही है मुझमें, तू निजगीत स्वयं गाती है,

आज वेदना सुख पाती है।

दूर कहां जाएगी निष्ठुर, मेरा हृदय प्यार ठुकराकर,

मेरा प्यार प्राप्त कर ही तो प्रेयसी, प्रेयसी कहलाती है,

आज वेदना सुख पाती है।

यदि हम वेदना को सुख समझ रहे हैं तब तो बड़ी मुश्किल है, हम बीमारी को स्वास्थ्य समझने लगे तब बड़ी मुश्किल है, मूल स्रोत तक जाना होगा। कोई नसरुद्दीन से पूछ रहा था कि दुनिया में दांपत्य के इतने लड़ाई झगड़े, हर जगह पति–पत्नी के बीच कलह है, इसका मुख्य इलाज क्या है? नसरुद्दीन ने कहा, मूल रोग एक ही है वह है विवाह और इलाज भी उसका एक ही है, तलाक!

मैंने सुनी है एक और घटना, नसरुद्दीन बैठा था बगीचे में अपनी पत्नी के साथ। शाम का समय है, धुंधलके में कोई प्रेमी–प्रेमिका आपस में प्रेम की बातचीत कर रहे हैं। बातचीत

बढ़ते–बढ़ते विवाह की तरफ जाने लगी। नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान ने कोहनी मार कर नसरुद्दीन से कहा कि अरे कुछ खांसो–खखारो, बीच में रोको, बात आगे बढ़ रही है, ये लोग तो शादी करने की योजना बना रहे हैं, भागने की योजना बना रहे हैं। नसरुद्दीन बिल्कुल चुपचाप बैठा रहा। पत्नी ने फिर दुबारा धक्का मारा कि उन लोगों को पता नहीं कि हम यहां बैठे हैं, जरा खांसो–खखारो कुछ बोलो, शायद वे चुप हो जाएं, बात आगे न बढ़े। नसरुद्दीन ने कहा कि बार–बार मुझे कोहनी न मार, मेरे समय कौन खांसा–खखारा था। जब मैं तुझसे प्रेम की बातें कर रहा था और शादी की योजना बना रहा था तो कौन बीच में आया था? भुगतने दो, अपने–अपने अनुभव से ही सब सीखते हैं।

एक और घटना याद आती है– सेठ चंदूलाल ने पहली बार कार खरीदी, उनके खानदान में पहले कभी कार नहीं थी। उन्होंने सबसे पहले कहा कि जाकर ताजमहल देखकर आता हूं। नई–नई ड्राइविंग सीखी थी, मोटर ड्राइविंग स्कूल से। उनके शिक्षक ने कहा कि अभी तुम्हें ठीक से गाड़ी चलाना नहीं आता, थोड़ा और रुक जाओ। उन्होंने कहा कि नहीं–नहीं, बड़े दिनों से तमन्ना थी आगरा का ताजमहल देखने की, अब तो ड्राइव कर सकता हूं, जाकर आता हूं। चले गए नहीं माने। उनके घर के लोगों ने, माता–पिता ने, पत्नी ने कहा कि बीच–बीच में फोन करते रहना कि कहां तक पहुंचे, ठीक–ठाक हो कि नहीं। चंदूलाल बराबर फोन करते रहे, दिल्ली से आगरा जाने में उनको कोई चार घंटे लगे। उन्होंने बताया कि ताजमहल देख लिया, भोजन कर लिया, लंच ले लिया, फिर उन्होंने कहा कि बस वापस आ रहा हूं लेकिन मेरे मोबाइल की बैट्री खतम हो गई है शायद आज मैं फोन न कर पाऊं। घर के लोगों ने कहा कि कोई बात नहीं, जब चले गए तो वापस आ ही जाओगे सही सलामत। लेकिन बड़ी मुश्किल हो गई। चार घंटे बीत गए, पांच घंटे बीत गए, रात हो गई, चंदूलाल का कुछ पता नहीं, न कोई खबर, न कोई फोन। दूसरा दिन बीत गया, दूसरी रात बीत गई, तीसरा दिन, तीसरी रात, घर के लोग चिंतित, परेशान, इंतजार करते–करते थक गए। चौथे दिन चंदूलाल बिल्कुल थके मांदे पहुंचे। लोगों ने कहा हद हो गई, आप चार घंटे में गए थे, चार दिन में वापस लौटे? चंदूलाल ने कहा इसमें मेरी भूल नहीं है, ये कार बनाने वालों ने कुछ भूल–चूक की है, मैन्यूफैक्चरिंग डिफेक्ट। जब मैं फर्स्ट, सेकेण्ड, थर्ड, फोर्थ गियर में गाड़ी चला रहा था तो गाड़ी बड़ी तेजी से भागी, लेकिन जब वापस आने के लिए रिवर्स गियर में गाड़ी चलाई तो बिल्कुल धीमे–धीमे! मैं क्या करूं? और गर्दन पीछे मोड़ के देखते–देखते–देखते थक गया हूं।

लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, अध्यात्म कुछ और नहीं, रिवर्स गियर में गाड़ी चलाना है। अपने दुखों के मूल उद्गम को पकड़ना होगा। यदि थोड़ी सी कला आ जाए तो रिवर्स गियर में गाड़ी चलाने की जरूरत नहीं, गाड़ी पूरी की पूरी मोड़ लो और अपने घर वापस पहुंच जाओ। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा घर है, आत्मा में कर अवसान। मन और चित्त से वियोग कर लो, अपनी आत्मा से जुड़ जाओ। बात कुल इतनी सी है! यदि चंदूलाल की तरह चले तो बहुत मुश्किल है। चार दिन लगेंगे कि चार जन्म, कुछ कहा नहीं जा सकता, थोड़ी समझदारी करो। जिस प्रकार मूल स्रोत से बाहर परिधि की ओर गए थे, ठीक उसी प्रकार परिधि से केन्द्र की ओर लौट आओ, यही प्रतिप्रसव है, यही दुखों को मिटाने का उपाय है। धन्यवाद!!

लाख दुखों की एक दवा है ध्यान

साधनपाद : 11

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः

साक्षी होकर कम कर सकते हैं क्लेशों का ताप;
ध्यान शून्य में ले जाता है, मिट जाता संताप।

मैंने सुना है कि एक दिन एक आदमी मंदिर में बड़ी अनूठी प्रार्थना कर रहा था। वह कह रहा था, 'हे भगवान! मुझे कष्ट दे, मुझे दुख–दर्द दे, मुझे पीड़ा दे, मुझे संताप ही संताप दे, मुसीबतों का पहाड़ मेरे सिर पे पटक दे। हे मालिक! मेरी जिंदगी में कठिनाइयां ही कठिनाइयां आएं, मुसीबतों के रोड़े मेरी हर राह में बिछा दे। हे प्रभु! जितनी मुसीबतें हो सकें मुझे दे–दे। पग–पग पर मुझे कांटे चुभा, मुझे लहू–लुहान कर दे, मेरे पीछे एक आतंकवादी लगा दे, हे प्रभु! मुझे बरबाद कर दे। मेरी सारी धन–संपत्ति खर्च हो जाए, ऐसा कुछ कर।' उसकी विचित्र प्रार्थना सुनकर, मंदिर में आकाशवाणी गूंजी, भगवान की आवाज आई, कहा– अरे बकवासी भक्त, इतनी सारी प्रार्थनाएं क्यों कर रहा है? सिर्फ एक बात कह कि मेरी शादी कर दे!

चित्त के साथ हमारा विवाह हो गया है और उसके साथ क्लेशों की पांचों जड़ें मौजूद हो गई हैं। योग का अर्थ है, प्रतिक्रमण, प्रतिप्रसव, वापस लौट जाना। ये जो चित्त के साथ हमारा विवाह हो गया है, इसके साथ फिर तलाक हो जाए और आत्मा से जो हम बिछुड़ गए हैं, उससे पुनः मिलन हो जाए। बहुत सारी बातें नहीं करनी है, सिर्फ जागरूकता को साधना है, साक्षीभाव को साधना है।

साधनपाद के 11वें सूत्र में आज महर्षि पतंजलि कहते हैं– साक्षी होकर कम कर सकते हैं क्लेशों का ताप, ध्यान शून्य में ले जाता है, मिट जाता संताप। एक ध्यान साधना है बस। संत कहते हैं, एकै साधे सब सधे, सब साधे सब साय। जिसने बहुत सारी चीजें साधने की कोशिश की वह कुछ भी न साध पाएगा। कई लोग हैं जो एक–एक चीज को साधने की कोशिश करते हैं। सोचते हैं क्रोध को कम कर लें, एक बार क्रोध मिट जाएगा फिर घृणा को भी मिटा लेंगे, क्रोध और

घृणा समाप्त हो जाएं, फिर चित्त की चंचलता से निपट लेंगे, वह मिट जाएगी, फिर राग-द्वेष से निपट लेंगे, फिर अहंकार को मिटा डालेंगे... ऐसे नहीं होगा। एक-एक करके, एक-एक करके नहीं होगा। साधु-संन्यासी अक्सर इस भूल में पड़ जाते हैं कि एक चित्तवृत्ति को दूसरी चित्तवृत्ति से लड़ा दें, वे आपस में लड़कर मिट जाएंगी। वे समझाते हैं कि अगर घृणा और करुणा दो वृत्तियों को आपस में भिड़ा दें तो उनकी शक्ति नष्ट हो जाएगी। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि घृणा और करुणा लड़कर नष्ट नहीं होंगी, घृणा ही जीतेगी, क्योंकि यह भी एक प्रकार की स्वयं के चित्त से घृणा ही है। चाहिए उपेक्षा का भाव, चाहिए साक्षी का भाव।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की मृत्यु हो रही थी, आखिरी क्षण था। उसने अपने बेटे को पास बुलाया और कहा कि बेटा सुन, कुछ हिदायतें तुझे देना चाहता हूं, कुछ मशविरे। यद्यपि मैं जानता हूं, मेरे बाप ने भी मुझे बहुत हिदायतें दी थीं, बहुत शिक्षाएं दी थीं, मैंने एक न मानी। तू भी मेरी मानने वाला नहीं, फिर भी...। मेरे बाप ने मुझसे कहा था इसलिए मैं भी मरते-मरते तुझसे कहे जा रहा हूं कि पहली बात सिगरेट न पीना, यद्यपि मैं भली-भांति जानता हूं कि तू जरूर पिएगा, दूसरी बात कहता हूं शराब को हाथ न लगाना, यद्यपि मुझे मालूम है कि तू बिना शराब पिए न रह सकेगा, फिर भी एक औपचारिकता तो निभानी होगी मरने की! हर पिता को मरते समय अपने पुत्र को शिक्षा देनी चाहिए तो तुझसे कहता हूं कि अपने ऊपर राजनीति का पागलपन मत सवार होने देना... लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि तू भी मेरी बात नहीं सुनेगा क्योंकि मैंने अपने बाप की नहीं सुनी थी। अगर मैं कहूं कि स्त्रियों के पीछे मत दौड़ना, ये भी तू नहीं सुनने वाला; मेरा ही खून तो तू है, तू क्यों सुनेगा! लेकिन एक बात कह देता हूं, वह मान लेना बस, बाकी सब छोड़। सिगरेट भी पी, शराब भी पी, राजनीति में भी जा, स्त्रियों के पीछे भी भाग, एक छोटी सी सलाह मान ले, दो स्त्रियों के पीछे एक साथ मत पड़ना। स्त्रियों के पीछे तो तू भागेगा ठीक है, एक बार में एक, दो में बड़ा नर्क पैदा हो जाएगा, मैं खुद अपने अनुभव से बताता हूं। मेरे बाप ने भी मना किया लेकिन मैं बड़ी झंझट में पड़ा, तीन-तीन, चार-चार शादियां कीं। कई-कई स्त्रियों के साथ एक साथ भागा, बड़ा नर्क निर्मित हो गया, तू कम से कम इतनी होशियारी बरतना। बेटे ने कहा पिताजी आपने तो बड़े पते की बात कही, ये बात तो मुझे कभी सूझी ही नहीं थी। आपने नया ख्याल मुझे पकड़ा दिया, एक साथ दो-दो प्रेमिकाएं, तीन-तीन, चार-चार प्रेमिकाएं! नसरुद्दीन ने कहा देख अभी से तेरा मन फिसलने लगा। अब मरते हुए बाप को वचन दे, मेरी बात मानेगा? बेटे ने कहा बड़ी मुश्किल हो गई, वचन देना तो कठिन लग रहा है। आपने तो और आकर्षण पैदा कर दिया, जो चीज मुझे पहले नहीं पता थी, मुझे बता दिया आपने। क्या ऐसा हो सकता है कि एक साथ दो स्त्रियों के पीछे भागें? नसरुद्दीन ने अपनी अंतिम सांस छोड़ दी, उसने कहा की चल इस बात को छोड़, भाग, दो नहीं, तीन-तीन, चार-चार स्त्रियों के पीछे भाग।

बेटा थोड़ा हैरान हुआ, उसने कहा कि क्षण भर पहले आप कह रहे थे कि दो स्त्रियों के पीछे मत भागना, अब कहते हैं, भाग, जितनी ज्यादा से ज्यादा हो सकें उतनों के पीछे भाग, आप अचानक बदल क्यों गए? नसरुद्दीन ने कहा, तीन-चार स्त्रियों के पीछे भाग कर ऐसा नर्क निर्मित होगा और ऐसी कलह पैदा होगी कि उसी से शायद तू जाग पाए। वे आपस में इतनी लड़ मरेंगी, उनकी घनी ईर्ष्या, शायद वही तुझे जगाने वाली सिद्ध हो। एक-एक करके नर्क भी बड़ा कमजोर,

क्षीण सा होगा उतना दुखदायी न होगा, चित्त की सारी वृत्तियों के पीछे भाग ले। वे वृत्तियां आपस में लड़ मरेंगी, तू जल्दी मुक्त हो जाएगा। वह जो सामान्य महात्मा समझा रहा है लोगों को कि घृणा और करुणा को लड़वा दो, राग और वैराग को लड़वा दो, क्रोध और प्रेम की वृत्ति को आपस में भिड़ा दो, अशांति और शांति की वृत्ति को भिड़ा दो, वह कामयाब नहीं होने वाला, यह जीतने का उपाय नहीं है। ये नसरुद्दीन वाला ही तर्क हो गया। महानर्क निर्मित हो जाएगा। इसलिए कभी–कभी ऐसा होता है कि साधारण संसारी जितना अशांत नहीं होता, उससे भी ज्यादा अशांत तथाकथित संन्यासी हो जाते हैं। बड़े अंतर्द्वंद्व में और अंतर्युद्ध में वे उतर जाते हैं। नहीं! एक ही उपाय करने जैसा है, वह है सजगता की साधना, ध्यान की साधना। इस सूत्र को समझाते हुए सुनो ओशो के अमृत वचन –

पतंजलि साधारण नैतिकता नहीं सिखा रहे हैं, वे बता रहे हैं सभी धर्मों के सच्चे मूल को, धर्मों के असली विज्ञान को। वे कहते हैं प्रत्येक कार्य को कारण तक वापस ले जाओ और कारण सदा होता है मूर्च्छा में, अविद्या में, अजागरूकता में। सजग हो जाओ और सारी समस्याएं तिरोहित हो जाएंगी। पतंजलि कहते हैं पांच दुखों की बाह्य अभिव्यक्तियां, तिरोहित हो जाती हैं ध्यान के द्वारा। तुम्हें उनकी अलग–अलग चिंता करने की जरूरत नहीं, तुम तो बस ध्यान करो, ज्यादा से ज्यादा सजग होते जाओ। पहले बाहरी अभिव्यक्तियां, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, राग आदि मिट जाएंगी। बाहरी अभिव्यक्तियां मिटेंगी, लेकिन उनके बीज बचे रहेंगे। तब व्यक्ति को बहुत ज्यादा गहरे में जाना होता है।

तुम सोचते हो कि तुम क्रोधित होते हो, केवल तभी तुम्हें क्रोध आता है, यह बात सच नहीं है। क्रोध की एक अंतर्धारा निरंतर तुम्हारे भीतर चल रही है अन्यथा तुम क्रोधित नहीं हो पाते। अन्यथा यथासमय कहां से पाओगे क्रोध को? कोई तुम्हारा अपमान कर देता है, अचानक तुम्हें गुस्सा आ जाता है। क्षण भर पहले तुम प्रसन्न थे, मुस्करा रहे थे और फिर तुम्हारा चेहरा बदल जाता है। क्षण भर में तुम खूनी बनने पर उतारू हो जाते हो, कहां से आया यह क्रोध? जरूर मौजूद रहा होगा। गुस्से की एक अंतर्धारा सदा मौजूद रहती है, जब कभी आवश्यकता पड़ती है, अवसर बनते हैं तब वह क्रोध भभक उठता है। पहले ध्यान तुम्हारी मदद करेगा, बाहरी अभिव्यक्तियों को तिरोहित करने में, लेकिन उसी से संतुष्ट मत हो जाना, क्योंकि मूल रूप से यदि अंतर्धारा बनी रहती है तो किसी भी समय उसके लिए संभावना होती है, कभी भी उपद्रव फिर से भभक सकता है, किसी निश्चित स्थिति में अभिव्यक्ति फिर से प्रकट हो सकती है। कभी संतुष्ट मत हो जाना सिर्फ बाहरी अभिव्यक्ति के विलीन हो जाने से, बीज को जलाना होता है।

ध्यान का पहला भाग तुम्हारी मदद करता है, बाहरी अभिव्यक्ति को मूलाधार तक लाने में। बाहरी तल पर तुम शांत हो जाते हो, किन्तु भीतर चीजें चलती रहती हैं। तब ध्यान को और भी ज्यादा गहरे में उतरना होता है, यह है पतंजलि का फर्क समाधि और ध्यान के बीच। ध्यान प्रथम अवस्था है, ध्यान वह अवस्था है, जिसके द्वारा बाह्य अभिव्यक्तियां तिरोहित होती हैं और समाधि अंतिम अवस्था है, वह परमध्यान की अवस्था, जहां भीतर के बीज भी जल जाते हैं। ऐसा समझें आप कुएं में बाल्टी डालते हैं, रस्सी से खींचते हैं, पानी बाहर आ जाता है। यदि कुएं में पानी है ही नहीं तो कितनी ही रस्सी और बाल्टी खड़खड़ाओ, पानी बाहर नहीं आएगा। कोई आपका

अपमान करता है और आपके भीतर से क्रोध की अंतर्धारा बाहर बहने लगती है। उसने गाली की बाल्टी डाली, अपमान की रस्सी से खींचा, आपके भीतर से क्रोध बाहर बहने लगा। लेकिन यह तभी संभव है, जब कुएं में पानी हो। तो ध्यान की पहली अवस्था है, व्यक्ति ऊपर से शांत दिखने लगता है, लेकिन भीतर अभी भी क्रोध के, अशांति के, राग और द्वेष के, अहंकार के बीज मौजूद हैं। कभी भी पनप सकते हैं बीज। फिर समाधि ध्यान की और गहरी अवस्था है जब बीज भी दग्ध हो गए। तो साधना की, साक्षीभाव की पहली सीढ़ी है ध्यान, दूसरी सीढ़ी है समाधि। पहली में शांति उपलब्ध होती है, दूसरी में आनंद उत्पन्न होता है। जब तक वह परमानंद की दशा उपलब्ध न हो जाए, इस शांति से तृप्त मत हो जाना कि ऊपर-ऊपर से शांत दिखना, ये काम न आएगा, कभी भी अशांति फिर भड़क सकती है। ध्यान की अवस्था में हम अहंकार से तो रिक्त हो गए, 'मैं' से खाली हो गए, लेकिन अभी परमात्मा से भरे नहीं। समाधि में अहं गया, ब्रह्म का अवतरण हुआ। उसके आने की आवाज सुनाई पड़ने लगी –

तेरे आने की महफिल में जो कुछ आहट सी पाई है,
हर एक ने साफ देखा शम्मा की लौ लड़खड़ाई है।
तपाक और मुस्कराहट में भी आंसू थरथराते हैं,
निशाते-दीद भी चमका हुआ दर्द जुदाई है।
बहुत चंचल हैं अरबाबे हवश अंगुलियां लेकिन,
उरू से जिंदगी की भी नकाबे रुत उठाई है।
इन मौजों के थपेड़े ये उभरना बहरे हस्ती में,
उबाबे जिंदगी ये क्या हवा सर में समाई है।
सुकूते-बहारों बरकी खलबतों में खो गया हूं जब,
उन्हीं मौकों पे कानों में आवाज तेरी आई है।

एक आवाज आनी शुरू होती है भीतर से, उसे संतों ने ओंकार का नाद कहा है। जब सारी चित्तवृत्तियां क्षीण होने लगती हैं, सजगता साधते-साधते शून्यता हो जाती है, उस शून्यता में पूर्णता का, प्रभु का अवतरण होता है, ओंकार के रूप में। फिर डर नहीं है, एक बार परमात्मा भीतर उतर आए, अहंकार से सिंहासन खाली हो और उस पर परमात्मा विराजमान हो जाए, फिर जो शांति आई वह स्थाई शांति होगी। उसके पहले जो शांति आई है ध्यान में, शुरुआत की शांति, उस पर बहुत ज्यादा भरोसा न करना। जब तक समाधि न घटने लगे तब तक तुम्हारा ध्यान विश्वसनीय नहीं है, कहीं से भी फिसल सकते हो, कहीं से भी गिर सकते हो। पतंजलि के साथ हम एक-एक कदम उठाते चलें। आगे और लंबी है यात्रा, लेकिन याद रखना मूल सूत्र सजगता ही है।

धन्यवाद!!

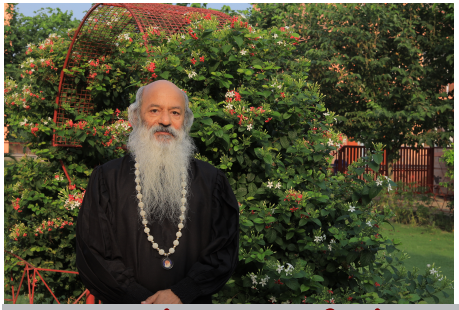

कर्म-बंधन का विज्ञान

साधनपाद : 12

क्लेशमूलः कर्मशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः

क्लेशों से प्रेरित होकर हम, जो भी करते कर्म;
बंधन निर्मित होता जाता, यही कर्म का मर्म।

मैंने सुना है एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन चर्च गया। कोई बहुत बड़ा पादरी दूर देश से आया था। मुल्ला का एक मित्र ईसाई था, उसने बहुत जिद की कि पादरी का प्रवचन सुनने चलो, मुल्ला गया और सामने की पंक्ति में बैठ गया। पादरी की भी नजर उसपर पड़ी कि एक मुसलमान चर्च में आया हुआ है। बड़े प्रभावशाली ढंग से वह टेन कमांडमेंट्स, दस आज्ञाएं समझा रहा था। जब उसने समझाया कि झूठ मत बोलो, नसरुद्दीन बड़ा प्रसन्न था। जब पादरी समझाने लगा की चोरी मत करो तब अचानक नसरुद्दीन बड़ा बेचैन, हैरान, यहां–वहां देखे, पीछे मुड़–मुड़कर ऑडियंस में देखे, सब तरफ नजर दौड़ाए, उस पर पादरी की भी नजर पड़ गई कि बहुत परेशान हो रहा है, पता नहीं अचानक उसको क्या हो गया। बड़ा व्यथित, आकुल–व्याकुल, फिर अचानक जब पादरी समझाने लगा कि परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिए तब नसरुद्दीन फिर अचानक रिलैक्स्ड हो गया, बड़ा प्रसन्न, चेहरे पे मुस्कान आ गई। पादरी को कुछ समझ में नहीं आया कि इसको हुआ क्या?

जब प्रवचन समाप्त हुआ, सरमन के बाद जब सब चले गए तो उसने मुल्ला को भीतर बुलाया और पूछा कि मैं समझ नहीं पाया, तुम बीच में बहुत परेशान हो गए थे, फिर अचानक एकदम शांत और प्रफुल्लित नजर आने लगे। नसरुद्दीन ने कहा सच्ची बात आप से कहूं, जब आप ने कहा कि चोरी मत करो तब मुझे ख्याल आया कि मेरा छाता कहां है, मैने यहां–वहां देखा छाता गायब, कहीं नजर नहीं आ रहा। मैंने कहा हद हो गई, सारे चोर–उचक्के यहां चर्च में इकट्ठे हुए हैं। और यहां समझा रहे हैं चोरी मत करो। मुझे छाता दिख

ही नहीं रहा था कि कहां है। मैं बहुत परेशान हुआ कि छाता गया कहां, लेकिन जैसे ही आपने कहा परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिए, मुझे अचानक याद आ गया कि छाता मैं कहां छोड़ आया हूं। फिर एकदम से प्रसन्न हो गया, याद आ गया। छाता चर्च में लाया ही नहीं था मैं। हम अपना छाता कहां छोड़ आए, हमें याद भी नहीं। वह छाता जिससे शीतलता मिले, वह शांति का छाता, आनंद का, शीतलता का, प्रफुल्लता का, प्रसन्नता का छाता, वह कहां छूट गया। लोगों से पूछो कि कभी तुम आनंदित थे, वे कहते हैं हां, बचपन में आनंदित थे। फिर क्या हुआ, कहां गया वह आनंद, कहां छोड़ आए? कहते हैं कुछ याद नहीं कहां छोड़ आए, लेकिन एक बात तो पक्की है, छूट गया।

पतंजलि कहते हैं, वह जो बहिर्गामी चित्त है, बहिर्मुखी चित्त, एक्सट्रोवर्ट कॉन्शसनेस, वही व्यभिचारी चेतना है। भीतर है आनंद और हम उसे वहां छोड़कर बाहर आ गए हैं और हम बहिर्गामी हो गए हैं। बाहर के संसार में हम रस लेने लगे हैं। फिर बाहर की आदतें, बाहर के संस्कार, बाहर हमारे कर्मबंध निर्मित होने लगे। वह जो मूर्च्छा की अवस्था थी, उसी से पांच क्लेशों का जन्म हुआ– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और जीविषणा। और फिर इन पांच क्लेशों के द्वारा उत्पन्न जो कर्म हैं, इनसे प्रेरित होकर जो काम हम करते हैं, वे और भी ज्यादा प्रतिकर्म, प्रतिक्रिया पैदा करने वाले होते हैं। फिर हम इस जाल में फंसते ही चले जाते हैं। एक बार यह शृंखला निर्मित हुई कि एक चेन रिऐक्शन शुरू हो जाता है, फिर बाहर निकलना बहुत मुश्किल है। आज के साधनपाद के बारहवें सूत्र में, पतंजलि कहते हैं –

क्लेशों से प्रेरित होकर हम जो भी करते कर्म,
बंधन निर्मित हो जाता, यही कर्म का मर्म।

मूर्च्छा से प्रेरित होकर हमने जो भी कर्म किए, वे सब बंधन पैदा करते हैं, यही संक्षिप्त में कर्मबंध का सिद्धांत है। इसका अर्थ हुआ कि कर्मों को बदलने की कोशिश नहीं करनी है, पापों को रिप्लेस नहीं करना है– पुण्यों से। अशुभ और अनैतिकता को, शुभ और नैतिकता से विस्थापित नहीं करना है। मुख्य बात है जागरण की साधना, होश को बढ़ाना है क्योंकि बेहोशी में अगर हमने दान भी दिया, तो वह भी अहंकार का ही एक खेल होगा।

असली बात है, होश आना चाहिए। तो क्लेशों से प्रेरित होकर हम जो भी कर्म करें, चाहे अच्छे, चाहे बुरे, चाहे पुण्य, चाहे पाप, वे सब बंधन के निर्माता हैं। और इस बंधन को अगर काटना है तो उसे होश की तलवार से काटना होगा। कर्मों को बदलने से वे नहीं कटेंगे। इस बात को खूब अच्छे से समझना, लोग अपने कर्म को, अपने आचरण को, अपने व्यवहार को, चरित्र को बदलने की कोशिश में लगे रहते हैं। असाधु से साधु बन जाते हैं, किन्तु मूर्च्छा ज्यों की त्यों रहती है। वही अहंकार जो घोषणा कर रहा था कि मैं सबसे अमीर आदमी हूं, वही अहंकार एक दिन घोषणा करता है कि मुझसे बड़ा त्यागी कोई भी नहीं। अहंकार तो वही का वही रहा, पहले धन संग्रह में रस ले रहा था, अब उसने धन का त्याग कर दिया। पहले वह कह रहा था कि 'मेरी' पत्नी, 'मेरे' बच्चे, 'मेरा' मकान, अब उसने संसार छोड़ दिया, अब

वह कहता है कि मुझसे बड़ा त्यागी कोई नहीं। अब वह कहता है 'मेरा' धर्म, 'मेरा' मंदिर, 'मेरा' संप्रदाय, 'मेरी' साधना पद्धति सबसे महान् है। इसका मेरापन अभी नहीं छूटा है, अब वह पत्नी और बेटा को मेरा नहीं कह रहा है, अब वह शिष्य और शिष्याओं को मेरा कह रहा है। अब वह मकान को मेरा नहीं कहता, अब वह मंदिर को मेरा कह रहा है। वास्तव में उस आदमी में बदलाव आया नहीं। असली बात थी कि भीतर होश का उदय होता, तब उसे समझ में आता कि यहां न मेरा कुछ है, न मेरा कुछ हो सकता है, तब कर्मबंध क्षीण होते।

इस सूत्र को समझाते हुए ओशो कहते हैं, 'पतंजलि कहते हैं, चाहे वर्तमान में पूरे हों अथवा भविष्य में, कर्मगत अनुभवों की जड़ें होती हैं पांच क्लेशों में।' पीछे हमने बात की पांच क्लेशों की, पांच दुखों की, पांच कारणों की, जो कि दुख निर्मित करते हैं। सारे कर्म, चाहे वे वर्तमान में पूरे हों कि भविष्य में, उनकी जड़ें होती हैं उन पांच दुखों में।

पहला क्लेश है अविद्या यानी जागरूकता का अभाव और शेष चार उसी के परिणाम हैं। अंतिम है अभिनिवेश, अर्थात् जीवन से आसक्ति। वे सारे कर्म जिन्हें तुम करते हो, मूलतः उत्पन्न होते हैं जागरूकता के अभाव से। इसका क्या अर्थ हुआ और उसे क्या कहा जाएगा? जब बुद्ध चलते हैं, खाते हैं, सोते हैं, पीते हैं, क्या वे सारी बातें कर्म नहीं हैं? नहीं, वे कर्म नहीं हैं। वे कर्म नहीं हैं क्योंकि वे जागरूकता से उत्पन्न होती हैं। बुद्ध भविष्य के लिए कोई बीज साथ लेकर नहीं चल रहे, यदि बुद्ध चलते हैं तो वह चलना वर्तमान में है, उसका अतीत से कोई संबंध नहीं, अगर वे भोजन करते हैं यह बात अतीत से नहीं जुड़ी है, यह वर्तमान की आवश्यकता है, यह वर्तमान की जरूरत है। बिल्कुल अभी की और यहीं की। यह सहज और स्वाभाविक है। यदि बुद्ध प्यास अनुभव करते हैं, तो वह पानी पीते हैं, लेकिन यह बात स्वतः प्रवाहित होती है, यहीं और अभी। इस भेद को समझ लेना।

पूरब के अध्यात्म विज्ञान की गहन समस्याओं में से एक समस्या यह रही है। बुद्ध चालीस वर्ष तक जीवित रहे, बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात्, उन सारे कर्मों का क्या होगा जिन्हें उन्होंने उन चालीस वर्षों के दौरान किया? यदि वे भी बीज बन गए तब तो उन्हें फिर से जन्म लेना पड़ेगा या कि कोई भेद पड़ेगा। नहीं, मैं तुमसे कहता हूं बुद्ध के कर्म बीज नहीं बनते। वे नहीं बनते बीज क्योंकि बुद्ध के सारे कर्म जागरूकता से उत्पन्न होते हैं। एक जागरूक व्यक्ति के कर्म–बंधन निर्मित नहीं होते। वह भी खाता है, पीता है, चलता है, बोलता है। कुछ लोग उससे मित्रता करते हैं, कुछ उससे शत्रुता करते हैं। बाहर से देखने में लगेगा कि उसके कर्म भी तो अन्य व्यक्तियों जैसे ही कर्म हैं, किन्तु फर्क अंदर है, भीतर है, बाहर नहीं। वह जागरूक है, उसके सारे कृत्य सहज हैं, स्पॉन्टेनियस हैं, जागरूकता से उत्पन्न हो रहे हैं। और इसलिए कर्मबंध का वे कारण नहीं बनते हैं। एक बार वह बेहोशी, वह अहंकार नष्ट हो जाए, फिर कर्मबंध निर्मित नहीं होते। किसी शायर ने लिखा है –

मुझको मारा है हर एक दर्दो दवा से पहले, दी सजा इश्क ने हर जुर्मो खता से पहले।
आतिशे इश्क फड़कती है हवा से पहले, ओंठ जलते हैं मोहब्बत में दुआ से पहले।

अब कमीं क्या है तेरे बेसरो–सामानों को,
कुछ न था तेरी कसम दर को फना से पहले।
खुद ब खुद चाक हुए पैरहन तालाओ गुल, चल गई गौन हवा वादे सबा से पहले।
मौत के नाम से डरते थे हम ए शौके हयात, तूने तो मार ही डाला था कजा से पहले।
गफलते ये हस्ती ये फानी की बता देंगी तुझे, जो मेरा हाल था एहसासे फना के पहले।

सूफी फकीर इस शब्द का बड़ा प्रयोग करते हैं, फना हो जाना, मिट जाना। वो अहंकार का मिट जाना, बड़े से बड़ी हिम्मत और साहस का कार्य है। वो भीतर की मूर्च्छा को मिटा डालना, फना हो जाना है। बुद्ध उसे कहते थे निर्वाण, दीपक का बुझ जाना। वो अहंकार का दिया बुझ जाए, तब तुम पाते हो फिर कोई कर्मबंध निर्मित नहीं होते। मौत के नाम से डरते थे हम ऐ शौके हयात, यही तो है जीवेषणा। पतंजलि जिसे कहते हैं अभिनिवेश, लस्ट फॉर लाइफ। जब तक हमारे भीतर जीवेषणा है, गहन मूर्च्छा है और हम जो भी कर्म करेंगे, उसका बंधन निर्मित होता चला जाएगा।

मैंने सुना है चंदूलाल की पत्नी मर गई, छाती पीट–पीटकर रो रहे थे। मोहल्ले के लोग अर्थी बांध रह थे, बहुत समझाने–बुझाने की कोशिश कर रहे थे कि चंदूलाल तुम फिक्र न करो, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है, अभी तो पचास के भी नहीं हुए। थोड़ा इंतजार करो, चार–छः महीने, फिर दूसरा विवाह हो जाएगा। लेकिन चंदूलाल और भी बेतहाशा, छाती पीट–पीटकर रोने लगा। लोगों ने कहा थोड़ा सब्र रखो, थोड़ा धीरज, चार–छः महीने की बात है, घाव भर जाएगा। फिर किसी से प्रेम होगा, फिर विवाह कर लेना। चंदूलाल ने कहा चार–छः महीने! आज की रात क्या होगा, सवाल ये है। हर चीज एक आदत बन जाती है। प्रेम भी एक आदत बन जाती है, सेक्स भी एक आदत बन जाती है, दोस्ती भी एक आदत बन जाती है, दुश्मनी भी आदत बन जाती है।

याद रखना, पाप भी एक आदत बन जाती है, और पुण्य भी एक आदत बन जाती है। दुष्कर्म भी आदत बन जाते हैं, सत्कर्म भी आदत बन जाते हैं। ऐसा हो सकता है कि एक आदमी रोज मंदिर जाए और यह भी उसकी एक यांत्रिक आदत हो, एक मेकैनिकल हैबिट हो, तब यह भी एक कर्मबंध है। मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि मंदिर मत जाना, मैं आपसे कह रहा हूं जागरूक होकर जाना। कहां जा रहे हो, यह सवाल नहीं है। तुम अपने घर में ही जागरूक होकर रहने लगो, तुम्हारा घर ही मंदिर हो जाए, किसी और मंदिर जाने की जरूरत नहीं। असली मंदिर तुम्हारे भीतर है। जागरूकता को साधो, तब कर्मबंध समाप्त होने लगते हैं। पुराने कर्मबंध मिटते हैं और भविष्य के नए कर्मबंध निर्मित नहीं होते। इन बंधनों से मुक्त हो जाना ही, आवागमन से मुक्ति बन जाता है। फिर इस जीवन में फिर–फिर आना नहीं होता। जब तक बंधन है तब तक आवागमन जारी रहेगा। बंधन को काटने का उपाय है– जागरूकता, साक्षीभाव, ध्यान, समाधि, जो भी तुम नाम देना चाहो दे दो।

धन्यवाद!!

कर्मबंध : एक शृंखला

साधनपाद : 13

सति मूले ताद्विपाको जात्यायुर्भोगाः

अगले जीवन में क्या होगी, योनि, आयु, भोग?
इस जीवन से ही निर्धारित होगा यह संयोग।

साधनपाद के तेरहवें सूत्र में पतंजलि समझाते हैं– आगे का जीवन इसी जीवन से तय होता है। इस जन्म में हम जो कर्म कर रहे हैं, यह जो शृंखला बनी है, वही शृंखला और आगे बढ़ती जाएगी। जो कर्मबंधन हमने मूर्च्छा में बना लिए, वे कर्मबंधन ही आगे की जाति, योनि इत्यादि निर्धारित करेंगे। एक गरीब आदमी है, कंजूसी से रहता है, धन खर्च नहीं कर पाता है, यह व्यक्ति, हो सकता है अगले जन्म में, अमीर घर में पैदा हो जाए। लेकिन तब भी यह खर्च नहीं करेगा। जीवन गरीब की भांति ही जिएगा, क्योंकि उसका कृपणता का कर्म–बंधन निर्मित हो चुका है। कभी–कभी यह भी संभव है, अपवादस्वरूप, कि कोई व्यक्ति पशु योनि में प्रवेश कर जाए यदि उसकी वृत्तियां वैसी हैं, उसका चित्त वैसा है। अगर उसे लगता है कि अरे! मनुष्य होकर कहां बंधन में बंध गए, स्कूल, कॉलेज, पढ़ाई–लिखाई, घर–गृहस्थी की जिम्मेवारी, उत्तरदायित्व, बड़ी मुसीबत है। जानवर ज्यादा मजा कर रहे हैं। हो सकता है यह आदमी अगले जन्म में जानवर बन जाए। तो जिस प्रकार का हमारा मन होगा, वैसी ही हमारे अगले जन्म की शुरुआत होगी और वह एक शृंखला का हिस्सा होगा। जो हम करते आ रहे हैं, जो हमारी आदतें बनती जा रही हैं, जो हम कर्मबंध निर्मित करते जा रहे हैं, वे ही आगे चल कर हमारे कर्म को निर्धारित करेंगे। पतंजलि कहते हैं–

अगले जीवन में क्या होगी, योनि, आयु या भोग,
इस जीवन से ही निर्धारित होगा यह संयोग।

कर्म की शृंखला चल पड़ी, स्टार्ट हो गई एक बार, ये कहां स्टॉप होगी पता नहीं। बड़ा मुश्किल है स्टॉप होना। उसी–उसी दिशा में आगे बढ़ती चली जाएगी।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल ने एक नया ड्राइवर रखा। ड्राइवर ने कहा कि एक महीने की तनख्वाह एडवांस लूंगा। चंदूलाल ने कहा ठीक, क्योंकि वह बहुत कम तनख्वाह में तैयार हो गया था। उस जमाने में सामान्यतः ड्राइवर एक हजार रुपए प्रतिमाह तनख्वाह मांग रहे थे, यह आदमी सिर्फ दो सौ रुपए में ही तैयार हो गया। चंदूलाल बड़े खुश हुए। पहले ही दिन जब ड्राइवर गाड़ी चला रहा है, चंदूलाल ऑफिस जा रहे हैं, पीछे की सीट पर बैठे। ड्राइविंग की कला देखकर बड़े प्रसन्न हुए कि दो सौ रुपए में इतना सस्ता ड्राइवर, कुशल ड्राइवर मिल गया, इतनी अच्छी गाड़ी चला रहा है। तय हुआ था कि स्टार्टिंग सैलरी दो सौ रुपए होगी। जब चंदूलाल का ऑफिस आया तब भी वह ड्राइवर गाड़ी को चलाता ही गया, उसने गाड़ी रोकी ही नहीं। चंदूलाल ने कहा अरे! क्या कर रहे हो? गाड़ी रोको मेरा ऑफिस पीछे छूट गया, ब्रेक लगाओ, रिवर्स करो। ड्राइवर ने कहा क्षमा करें सेठजी, स्टार्टिंग सैलरी दो सौ रुपए थी, स्टॉपिंग सैलरी आठ सौ रुपए है और रिवर्स ले जाने के पांच सौ रुपए अलग से लगेंगे, एडवांस निकालिए पहले।

ठीक यही स्थिति हमारी है। एक बार मूर्च्छा में हमने कोई कर्म शुरू कर दिया, स्टार्ट हो गई गाड़ी, फिर बड़ी मुश्किल है। जीवेषणा का जो ड्राइवर है, वह राग और द्वेष की शराब पीकर बैठा हुआ है। मूर्च्छा का, अविद्या का पेट्रोल है और अहंकार का इंजन है इस गाड़ी में। और जिस कर्म की सड़क पर यह गाड़ी चल पड़ी, सो चल पड़ी। स्टार्टिंग सैलरी तो हमने ड्राइवर को दे दी है, ब्रेक लगाना और रिवर्स गियर में डालना, इसकी तनख्वाह हमने नहीं दी है। वह उसी-उसी दिशा में लेता चला जाएगा। तो ध्यान का ब्रेक लगाना सीखना होगा, प्रतिक्रमण का रिवर्स गियर लगाना सीखना होगा, यही अध्यात्म की साधना है और इसके लिए कोई अगले या पिछले जन्म के प्रमाण जुटाने की जरूरत नहीं है। तुम इसी जन्म में देख लो, कैसे कर्मबंधन तुम्हें मजबूर करते हैं, कुछ करने के लिए।

एक आदमी है जो रोज क्रोधित होता है, छोटी-छोटी बात में नाराज हो जाता है, इसकी एक आदत पड़ती जा रही है क्रोधित होने की। कल पूरी संभावना है कि कल भी यह क्रोधित होगा, पिछले पचास साल से यह रोज क्रोधित हो रहा है। एक दूसरा व्यक्ति है, वह शांत रहता है, प्रसन्न रहता है, उसने नई एक आदत डाली है। कल का दिन जब आएगा, नया सूर्योदय होगा, इन दोनों व्यक्तियों के लिए एक-सा नहीं होगा। दोनों ने जीवन की अलग-अलग दिशा पकड़ ली है। कल संभावना है क्रोधी आदमी के क्रोधी होने की, शांत आदमी के शांत होने की... निन्यानवे प्रतिशत, सौ प्रतिशत नहीं कह रहा हूं, एक प्रतिशत संभावना जागने की है। वह क्रोधी आदमी भी चाहे तो जागरण का ब्रेक लगाकर रिवर्स गियर में अपनी गाड़ी ले जा सकता है। कल कोई उसका अपमान करे, गाली दे, जरूरी नहीं कि वह गाली का उत्तर गाली से दे, यद्यपि 50 साल से देता आ रहा है। एक कर्मबंध निर्मित हो गया है, लेकिन अगर वह जाग जाए तो कोई जरूरी नहीं है कि गाली का उत्तर गाली से हो। तो एक प्रतिशत संभावना है जागने की। ध्यान की साधना, योग की साधना, जागरण

की साधना है, तब कर्मबंध ढीले पड़ने लगते हैं। तो जो इस जन्म में हम देख रहे हैं, वही भावी जन्म में भी होगा।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी फातिमा में एक समझौता था कि जिसकी भी पहले मृत्यु हो जाएगी, वह कोशिश करेगा बताने की कि हिन्दुओं की यह मान्यता कि पुनर्जन्म होता है कि नहीं, वास्तव में सही है कि नहीं, ये स्वर्ग–नर्क वास्तव में होते हैं कि नहीं। तो फातिमा ने कहा कि अगर मैं मर जाऊंगी तो मैं पूरी कोशिश करूंगी, आकर तुम्हें बताऊंगी और अगर तुम मुझसे पहले मर जाओ तो पूरा प्रयास करना।

संयोग की बात नसरुद्दीन की मृत्यु पहले हो गई। कोई छः महीने बीत गए, विधवा फातिमा को कोई खबर न आई, वह इंतजार करती रही, करती रही कि नसरुद्दीन अपना वादा निभाएगा। फिर छः महीने बाद एक दिन अचानक आवाज आई, फातिमा! फातिमा उस समय अपने चौके में चाय बना रही थी, दूध उबाल रही थी। उसे लगा कि बिल्कुल नसरुद्दीन की आवाज! जैसे नसरुद्दीन ऑफिस से आता था और चाय मांगते हुए कहता था फातिमा, ठीक वैसी ही आवाज। वह चौंकी, उसने कहा अरे! तुम आ गए, नसरुद्दीन ने कहा हां, मैं आ गया। तुम्हें यही बताने आया हूं कि वो जो हिन्दुओं की धारणा है पुनर्जन्म की, वो बिल्कुल ठीक है। मेरा जन्म हो गया है। पत्नी बहुत खुश हुई, उसने कहा कि बताओ स्वर्ग–नर्क इत्यादि के बारे में। नसरुद्दीन ने कहा वो देखो खिड़की में से एक गाय दिख रही है, खेत में घास चर रही है। फातिमा ने सोचा ये अचानक गाय की बात कहां से आ गई! उसने सोचा शायद मैं दूध उबाल रही हूं, चाय बना रही हूं, इसलिए। उसने कहा छोड़ो भी गाय की बातें, स्वर्ग–नर्क के बारे में भी कुछ बताओ। नसरुद्दीन ने कहा– सुनो फातिमा, ये गाय कितनी सुंदर है। एक तो उसकी सफेद चमड़ी, बहुत कोमल और नाजुक, उसके सींग भी देखो कैसे घुमावदार हैं और सफेद चमड़ी पर कहीं–कहीं काले चकते हैं, कितनी खूबसूरत लग रही है ये गाय और जब ये पूंछ हिलाती है कैसी मनमोहक लगती है! फातिमा ने कहा छोड़ो भी गाय को, ये कहां की बकवास तुमने लगा रखी है! नसरुद्दीन ने कहा– शायद मैं तुम्हें बताना भूल गया, 'आई ऐम ए बुल इन पंजाब', मैं एक सांड़ की भांति पंजाब में पैदा हुआ हूं। पुनर्जन्म की थ्योरी बिल्कुल सही है। निश्चित रूप से बैल को गाय में ही रुचि होगी। जिस प्रकार की हमारी रुचि है, जिस प्रकार के हमारे कर्मबंधन हैं, उसी–उसी दिशा में हम आगे बढ़ते जाते हैं। अगर तुम बदलना चाहो तो जागरण के द्वारा, प्रतिक्रमण के द्वारा इससे मुक्त हो सकते हो। और जो व्यक्ति पूर्णतः जाग गया उसका फिर कोई अगला जन्म नहीं होता क्योंकि उसकी कोई कामना ही शेष न बची।

जो भी तुम्हारी कामना है, जो भी तुम्हारे कर्म की प्रेरणा है, वही तुम्हारे अगले जन्म को निर्धारित करने वाली बात बनती है। अगर तुम बदलना चाहो उसे तो अभी, आज बदल सकते हो। ओशो इस सूत्र को समझाते हुए कहते हैं, 'पतंजलि कहते हैं– जब तक जड़ें बनी रहती हैं, पुनर्जन्म से कर्म की पूर्ति होती है, गुणवत्ता, जीवन के विस्तार और अनुभव के ढंग

द्वारा। यदि तुम बनाए रखते हो कर्मों के बीजों को तो इन बीजों की पूर्ति होती रहेगी। फिर–फिर लाखों प्रकार से, तुम फिर पा लोगे परिस्थितियों को और अवसरों को जहां तुम्हारे कर्मों की पूर्ति हो सकेगी, विभिन्न जन्मों में।

उदाहरण के लिए तुम्हारे पास शायद बहुत धन–संपत्ति हो, शायद तुम बड़े अमीर व्यक्ति हो, तुम धनवान हो सकते हो, लेकिन हो सकता है तुम कंजूस होओ और जियो एक दरिद्र व्यक्ति का जीवन। तुम्हारे पिछले जन्मों के कर्मों के बीजों की वजह से। पिछले जन्म में तुम दरिद्र थे, एक गरीब की भांति जीवन जिया। आज तुम्हारे पास धन–दौलत है, लेकिन तुम उसका उपयोग नहीं कर सकते। तुम ढूंढ़ लोगे तर्कपूर्ण उत्तर, तुम सोचोगे कि सारा संसार गरीब है, मैं कैसे जीवन का सुख भोग सकता हूं। लेकिन तुम गरीब को दान नहीं दे रहे अपनी दौलत, तुम जिओगे गरीब का जीवन और धन पड़ा रहेगा बैंक में या तुम सोच सकते हो कि गरीबों की जिंदगी में कुछ धार्मिकता होती है, इसलिए मुझे गरीबी में रहना चाहिए, सादा जीवन जीना चाहिए... यह कर्म है दरिद्रता का, एक बीज तुम्हारे भीतर है। तुम्हारे पास शायद धन–दौलत है, लेकिन तुम उसका उपभोग नहीं कर पा रहे क्योंकि गरीबी का बीज पिछले जन्मों का बना हुआ है। इसका उल्टा भी हो सकता है, हो सकता है तुम भिखारी हो और तुम जिओ एक समृद्ध जीवन। भिखारी हो, भिखमंगे हो और कई बार भिखारी धनवान व्यक्तियों से ज्यादा धनवान बन जाते हैं। वे स्वतंत्रतापूर्वक जीते हैं। वे इसकी चिंता नहीं करते कि कल क्या घटने वाला है। खोने को उनके पास कुछ होता नहीं, इसलिए जो कुछ भी उनके पास होता है, वे उसमें प्रसन्न रहते हैं। जितना है उसका पूरा–पूरा भोग करते हैं। उसका आनंद मनाते हैं। एक गरीब आदमी समृद्ध जीवन जी सकता है, यदि वह समृद्ध जीवन के कर्मबीज अपने साथ लेकर आया है। और वे बीज सदा ढूंढ़ लेंगे संभावनाओं को, पूरा करने के अवसरों को। जहां कहीं तुम हो उससे कोई फर्क न पड़ेगा, तुम्हें जीना होगा तुम्हारे अतीत के द्वारा, तुम्हारे पिछले जन्मों के कर्मबीजों के द्वारा।

इस बात पर बहुत गौर करना, आज हम जो भी हैं, अपने पिछले जन्मों के कर्मों की वजह से हैं। भविष्य में जो होंगे वह भी हमारे इस जन्म के कर्मों का परिणाम होगा। लेकिन हम बंधे हुए नहीं हैं, स्वतंत्रता की एक छोटी सी संभावना है। यदि हम जाग जाएं, इन कर्मबंधों को तोड़ दें तो हम अपने आगे की दिशा परिवर्तित कर सकते हैं। कोई आदमी पचास साल से क्रोध करता आ रहा है, किन्तु यह जरूरी नहीं है कि वह आज भी क्रोध करे। आज वह जाग सकता है और क्रोध की परिस्थिति में भी शांत रह सकता है। सारी संभावनाओं के द्वार खुले हुए हैं। बंधन हैं, लेकिन इतने अधिक नहीं कि कोई स्वतंत्रता ही न हो। हमेशा स्वतंत्रता का एक द्वार खुला हुआ रहता है। यह हम पर निर्भर है कि हम उसका उपयोग कर पाएंगे कि नहीं कर पाएंगे। योगी उसका उपयोग कर पाते हैं और साधारण आदमी उन्हीं को रिपीट करते हैं, उन्हीं की पुनरावृत्ति, बस वही–वही दोहराते रहते हैं। सब हम पर निर्भर है कि हम जागकर जिएं अथवा मूर्च्छा में। धन्यवाद!!

जैसी करनी वैसी भरनी

साधनपाद : 14

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्

जैसा करता है कर्म मनुज, वैसा ही फल पाता है;
सुख का कारण पुण्य और हर पाप दुःख लाता है।

पतंजलि कहते हैं– सुख मिलता है पुण्य से और दुख मिलता है अपुण्य से, पाप से। सत्कर्मों का परिणाम सुखद होगा, दुष्कर्मों का परिणाम दुखद होगा... ये जिंदगी के सीधे–सीधे नियम हैं। बीच में ईश्वर को नहीं लाते।

भारत में जो धर्म पैदा हुए, वे कर्म के नियम की बात करते हैं, एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से। जैन धर्म, बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म– ये तीनों बड़े वैज्ञानिक ढंग से सोचते हैं। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुए, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म– इन तीनों धर्मों में अच्छे और बुरे कर्मों के परिणाम के लिए, ईश्वर की धारणा को बीच में लाना पड़ता है और उससे चीजें बड़ी कठिन हो जाती हैं। कहीं परलोक में कोई ईश्वर बैठा है, सात आसमानों के पार, जो एक–एक आदमी का हिसाब–किताब रख रहा है। छः अरब आदमी हैं, जरा सोचो, छः अरब आदमियों का हिसाब रखना कोई हंसी खेल नहीं होगा! फिर आदमी ही क्यों? करोड़ों–करोड़ों अन्य जीव–जंतु हैं, पेड़–पौधे हैं और बैक्टीरिया, वायरस की तो तुम सोच ही लो! यहां जिस मंदिर में हम बैठे हैं, इस मंदिर में ही छः अरब से ज्यादा बैक्टीरिया होंगे। उनका हिसाब–किताब भी तो रखना पड़ेगा। भगवान पागल हो जाएगा अगर इतने लोगों का हिसाब रखेगा और एक–एक को दण्ड या पुरस्कार देगा।

नहीं, पतंजलि की धारणा बड़ी वैज्ञानिक है, वे नहीं कह रहे कि यह काम कहीं कोई ईश्वर कर रहा है। सीधे–सीधे नियम की बात है, तुम आग में हाथ डालोगे, तुम्हारा हाथ जल जाएगा। कहीं कोई ईश्वर देख नहीं रहा है कि अरे! यह आदमी गलत काम कर रहा है, आग

में हाथ डाल रहा है, इसको जलाओ, इसको कष्ट दो। आग में हाथ डालने से कष्ट तुम्हें मिल जाएगा। कर्म के साथ ही उसका फल भी उसमें सन्निहित है। तुम नीम का बीज बोओगे, निश्चित रूप से उसमें कड़वी निबौलियां आएंगी। तुम आम के बीज बोओगे, निश्चित रूप से आम के मीठे फल आएंगे। कहीं कोई ईश्वर बैठकर यह हिसाब नहीं रख रहा है कि तुमने कौन से बीज बोए। कर्म स्वयं ही परिणामदायी होता है। इतना ही नहीं, कर्म के पीछे तुम्हारा इरादा क्या है, वह भी परिणाम लाएगा।

कभी–कभी ऐसा होता है कि ऊपर से देखने में लगता है कि एक आदमी अच्छे कर्म कर रहा है, किन्तु भीतर उसके इरादे ठीक नहीं होते। वे जो बुरे इरादे हैं उसका भी परिणाम आएगा। और कभी–कभी ऐसा लगता है कि एक आदमी ऊपर से खराब कर्म कर रहा है, किंतु उसके इरादे नेक होते हैं। उसका इरादा अच्छा है, वह भले इरादे से कर्म कर रहा है। तो कृत्य पूरा होने से उसका परिणाम अच्छा आएगा, क्योंकि उसका इरादा अच्छा था। हम अस्तित्व को धोखा न दे सकेंगे, केवल कर्मों का ही हिसाब नहीं हो रहा है, हमारे विचार और भावनाओं का भी हिसाब–किताब हो रहा है। और हिसाब–किताब एक नियमानुसार हो रहा है। कहीं कोई व्यक्ति नहीं बैठा है न्यायाधीश बनकर, वरना ईश्वर के बारे में लोगों की धारणा तो एक उच्चपदस्थ पुरुष या अधिकारी की, न्यायाधीश की है। नहीं, ऐसा कोई ईश्वर कहीं नहीं बैठा है।

इस सूत्र को समझाते हुए ओशो कहते हैं, 'पतंजलि कहते हैं– पुण्य लाता है सुख और अपुण्य लाता है दुख। यदि तुमने पुण्य किए हैं, अच्छे कार्य किए हैं तो तुम्हारे आस–पास ज्यादा सुख होगा। तुम्हारे पास कुछ भी न हो, फिर भी जीवन का एक सुखद दृष्टिकोण तो होगा ही, एक प्रीतिकर संभावना। तुम अंधेरे बादल में छिपी रजत रेखा को देख पाओगे। तुम साधारण चीजों से भी आनंदित हो जाओगे। छोटी–छोटी चीजें, लेकिन तुम उनसे इतने ज्यादा प्रसन्न हो जाओगे कि वे चीजें बहुमूल्य हो जाएंगी, मूल्यवान से भी ज्यादा मूल्यवान। भिखारी का चोला पहने तुम चल सकते हो किसी सम्राट की भांति। यदि तुमने पुण्य कर्म किए हैं तो सुख उसके पीछे–पीछे चला आता है। यदि तुमने पाप कर्म किए हैं, हिंसात्मक, अपुण्यात्मक, दूसरों को नुकसान पहुंचाने वाले काम किए हैं तो उनके पीछे–पीछे पीड़ाएं स्वतः चली आएंगी। ध्यान रहे, यह तो उनका एक फल है, एक स्वाभाविक परिणाम।

ईसाई, यहूदी, मुसलमान सोचते हैं कि ईश्वर तुम्हें सजा देता है जब तुम कुछ बुरा करते हो, जब तुम अच्छा करते हो तो ईश्वर तुम्हें उपहार देता है, खुशनुमा चीजों की भेंट। हिन्दू ज्यादा कुशल हैं, वे ईश्वर को बीच में नहीं लाते। वे तो बस कहते हैं कि ऐसा जगत का नियम है, जैसे कि गुरुत्वाकर्षण का नियम है। यदि तुम संतुलित होकर, संभलकर चलते हो तो तुम गिरते नहीं, तुम आनंदित अपनी मंजिल तक पहुंच जाते हो। लेकिन अगर तुम किसी शराबी की भांति डांवाडोल होकर चलते हो तो तुम गिर पड़ते हो गड्ढे में और तुम्हारी हड्डियां टूट जाती हैं। ऐसा नहीं है कि ईश्वर पटककर तुम्हें सजा दे रहा है क्योंकि तुमने कुछ गलत

किया, कि तुमने शराब पी। यह तो एक साफ नियम है, गुरुत्वाकर्षण का। अगर तुम अच्छा भोजन करते हो, स्वास्थ्यदायी चीजें खाते हो तो तुम स्वस्थ बनोगे। अगर तुम गलत चीजें खाते हो, उल्टा–सीधा आहार लेते हो तो बीमारियां चली आएंगी। ऐसा नहीं कि कोई जान–बूझकर तुम्हें स्वास्थ्य या बीमारी भेज रहा है, वहां कोई बैठा नहीं है... तुम्हें सजा देने को या पुरस्कार देने को। बस प्रकृति के नियम हैं। उसी को कहते हैं धर्म, ताओ, ऋतु। कर्म का नियम सीधा साफ है। यदि तुम ईश्वर की बात करने लगते हो तो चीजें फिर बहुत जटिल हो जाती हैं, फिर उन्हें सुलझाना संभव नहीं। ईश्वर की धारणा से कोई भी फिलॉसफिकल समस्या हल नहीं होती, बल्कि और कठिन हो जाती है।

मैं पढ़ रहा था एक चुटकुला– जानते हो भगवान कब नाराज होता है? भगवान तब नाराज होता है जब किसी कुंवारी कन्या के गर्भवती हो जाने पर उसकी मां मंदिर में जाकर कहती है, हे भगवान! तूने यह क्या कर डाला। जो भी किया है तुम्हीं ने किया है, भगवान ने कुछ भी नहीं किया, तुम्हीं अपने कर्मों का परिणाम भोग रहे हो।

मैंने सुना है नर्क में एक चेला पहुंचा। उसने देखा कि उसके वृद्ध गुरुजी उर्वशी के साथ डांस कर रहे हैं, चेला उनके कदमों में गिर पड़ा। उसने कहा,' हे महाराज! हे गुरुदेव! आपके पुण्य प्रताप से आपको उर्वशी जैसी सुंदर अप्सरा मिल गई, मेरा क्या होगा? इसके पहले कि महात्मा कुछ बोलते उर्वशी बहुत आगबबूला होकर चिल्लाई– बकवास बंद कर नालायक, इस बुड्ढे के पुण्यों के कारण मैं इसे नहीं मिली हूं, बल्कि मैंने कुछ पाप किए थे उसके दण्डस्वरूप मुझे ये सज्जन मिले हैं। कहीं कोई ईश्वर नहीं बैठा है, पुण्य–पाप का हिसाब–किताब करने। हम जो कर रहे हैं, उसके परिणाम हमें मिलेंगे। एक और घटना मैंने सुनी है– नसरुद्दीन मरा। पहुंचा ऊपर, वहां के द्वारपाल ने पूछा कि तुमने कुछ पुण्य पाप किए... बहुत लंबे समय तक पृथ्वी पर रहे। नसरुद्दीन ने कहा पाप, मैंने कभी सुना ही नहीं पाप होता क्या है? द्वारपाल ने सोचा बूढ़ा आदमी है, शायद स्मृति भी इसकी ठीक नहीं, सठिया गया है। पाप एक जेनरलाइज्ड शब्द है। उसने एक–एक करके पूछना शुरू किया। उसने पूछा कि कभी चोरी की है? मुल्ला ने कहा बिल्कुल नहीं। द्वारपाल ने कहा झूठ बोले? मुल्ला ने कहा क्या बात करते हो, मैं और झूठ बोलूंगा? द्वारपाल ने कहा अच्छा, शराब पीते थे, सिगरेट पीते थे? नसरुद्दीन ने कहा तौबा–तौबा, कैसी बात करते हैं आप। शराब और सिगरेट कोई पीने की चीज है। द्वारपाल ने कहा अच्छा, लड़कियों के दीवाने रहे? नसरुद्दीन ने कहा नहीं, लड़कियों की तरफ तो मैं देखता ही नहीं था, आंख बंद कर लेता था। द्वारपाल ने कहा अच्छा भारत में जन्मे थे, घूसखोरी तो की होगी? नसरुद्दीन ने कहा घूस! घूस कभी नहीं खाई, घास–पात ही खाते रहे। द्वारपाल भी हैरान हुआ! कहा अच्छा नसरुद्दीन एक बात बताओ, फिर सौ साल तक तुम करते क्या रहे? अब नसरुद्दीन फंसा, बुरी तरह से फंसा। नसरुद्दीन ने कहा कि तुमने ठीक सवाल पूछा कि फिर सौ साल करते क्या रहे। लेकिन एक सवाल मैं तुमसे पूछता हूं द्वारपाल। मैं तो सौ साल धरती पर रहा, तुम तो अनंतकाल से

यहां पर हो, तुम बताओ अनंतकाल से तुम क्या कर रहे हो? हमें लगता है जैसे पाप के बिना जीवन ही नहीं। किन्तु जिंदगी में करेंगे क्या, अगर यही सब न कर पाए तो? पाप ही हमें जीवन जैसा लगता है, पुण्य तो हमें लगता ही नहीं कि इसमें कोई जीवन है।

एक बार जैन संप्रदाय को मानने वाले कुछ लोग ओशो के पास आए। यह सन् 1972 की बात है। वे कहने लगे कि महावीर की 2500वीं वर्षगांठ आने वाली है, आप बताएं कि हम क्या करें कि महावीर की देशना जगत में फैल जाए? ओशो ने कहा, 'ऐसा करो महावीर के ऊपर एक फिल्म बनाओ। उनकी कथा लोगों को पता चले, उनकी शिक्षा लोगों को पता चले।' वे लोग हंसने लगे, उन्होंने कहा कि महावीर के ऊपर कैसी फिल्म बनेगी, उसे देखने कौन आएगा? महावीर खड़े हैं पेड़ के नीचे, चुपचाप। कोई उपद्रव नहीं, कोई लड़ाई–झगड़ा नहीं, दो स्त्रियों के बीच की कोई खींचा–तानी नहीं, कोई विलेन नहीं, कितनी देर तक दिखाएंगे कि महावीर शांत खड़े हैं! कोई फिल्म बन नहीं सकती। अच्छे आदमी की कोई कहानी नहीं होती। सारी कहानियां बुरे आदमियों की होती हैं। याद रखना, तुम जिसे राम की कहानी कहते हो, वह राम की कहानी कम, रावण की कहानी ज्यादा है। अगर उसमें से खलनायक को निकाल लो, उसमें रावण न हो, कैकेयी न हो, फिर राम करेंगे क्या? बैठे हैं चुपचाप तीर–धनुष लिए, सीता माता के बगल में। कुछ करने को ही नहीं है, कोई बुरा आदमी ही नहीं है। बुरे आदमी की कहानी हमें कहानी लगती है, उसमें हमें जिंदगी लगती है। इसका अर्थ है कि हमारे चित्त में भी आकर्षण तो बुराई का ही है, पाप का ही है।

हम बुद्ध की और महावीर की पूजा अवश्य करते हैं, लेकिन वास्तव में हम शिष्य हैं सिकंदर, हिटलर और माओत्सु के! बुद्ध और महावीर की पूजा एक प्रकार की धोखाधड़ी है। हम दूसरों को और खुद को भी धोखा देना चाहते हैं क्योंकि हमारे सारे कर्म सिकंदर जैसे हैं, हिटलर जैसे हैं। न सही बड़े आतंक, छोटे–मोटे आतंक तो हम फैला ही रहे हैं! पति के रूप में आप पत्नी पर हावी हो रहे हैं, पिता के रूप में आप अपने बच्चों के ऊपर हावी हो रहे हैं, डॉमिनेट कर रहे हैं, बॉस के रूप में अपने ऑफिस के लोगों पर चढ़े बैठे हैं, छोटे–मोटे आतंकवादी तो आप हैं ही! भले ही बुद्ध की पूजा करते हों, लेकिन बुद्ध जैसे कर्म जीवन में हैं नहीं। महावीर की पूजा करते हैं, कहते हैं– 'अहिंसा परमोधर्मः', लेकिन आपके जीवन में हिंसा ही हिंसा है... तब इसके परिणाम दुखद होंगे। बुद्ध की पूजा करने से सत्परिणाम नहीं आएंगे, सत्कर्म करने से सत्परिणाम आएंगे। तो याद रखना, कर्म स्वतः ही निर्णायक है, कोई और निर्णायक नहीं है। और जगत में छिपी जो 'दिव्य–बुद्धिमत्ता' है, जिसे हम कहें 'कॉस्मिक इंटेलीजेंस', वह बुद्धिमत्ता इतनी विवेकपूर्ण है कि वह अकेले कर्म को ही नहीं देखती, उसके पीछे के विचार और भावनाओं को भी पढ़ लेती है और उनके ही सुखद या दुखद परिणाम आते हैं। तो कर्मों को केवल स्थूल रूप से न लेना, तुम्हारे इरादे और तुम्हारे इंटेंशंस, वे भी अत्यंत सूक्ष्म कर्म हैं और उनके भी परिणाम आएंगे।

धन्यवाद!!

वर्तमान में जीने की कला

साधनपाद : 16

हेयं दुःखमनागतम्

जो बीत गई सो बात गई, अब वर्तमान में जागो तुम;
आगे हो दुख मुक्त जिन्दगी, ऐसी समझ जगाओ तुम।

पूर्व सूत्र में पतंजलि ने कहा– दुख तो दुख है ही, सुख के भी परिणाम दुखी करते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इतने दुखों में लोग कैसे जिए चले जा रहे हैं? आशा की किरण।... लोग कहते हैं आशा से आकाश थमा है। हम सोचते हैं कि कल शायद सुनहरा हो, आज तो बड़ा कठिन है, किसी प्रकार गुजार लें, जल्दी ही सब ठीक हो जाएगा। जो भी हमारी परिस्थिति है, उसी में हम दुखी हैं।

मैंने सुना है नसरुद्दीन के घर में आठ बच्चे थे। एक दिन वह ऑफिस से घर वापस लौटा। कुल तीन ही बच्चे नजर आ रहे थे। नसरुद्दीन ने अपनी पत्नी से पूछा फातिमा, बाकी के पांच उपद्रवी शैतान कहां गए? फातिमा ने कहा कि उनको पड़ोस में खेलने के लिए भेज दिया गया है क्योंकि हम सरकार के परिवार नियोजन का पालन कर रहे हैं... दो या तीन बच्चे ही होते हैं घर में अच्छे। शेष सब पड़ोसियों के यहां! इतने भारी उपद्रव में कैसे लोग जी रहे हैं, आश्चर्य! और कुछ लोग आकर रोते हैं कि हमारे बच्चे नहीं हैं इसलिए हम दुखी हैं। जिनके बच्चे हैं वे बच्चों के होने से दुखी हैं, जिनके बच्चे नहीं हैं वे नहीं होने से दुखी हैं।

एक बार संयोग की बात है, इस प्रकार के दो लोग इकट्ठे मेरे पास आ गए। मैंने उनसे कहा कि भैया ऐसा करो तुम आपस में घर बदल लो। वह जो एक कह रहा था कि घर बिल्कुल सुनसान है, किसी बच्चे की किलकारी नहीं है, सन्नाटा छाया रहता है, कोई हंसी–खुशी नहीं है, मैंने उससे कहा कि जहां आठ बच्चे हैं तुम वहां चले जाओ और उस आठ बच्चे वाले से कहा कि तुम इनके सुनसान घर में आ जाओ। तुम कह रहे हो कि घर में शांति ही नहीं है, उपद्रव ही उपद्रव है, शैतानों से। पता नहीं किस आदमी ने कहा है कि भगवान के अवतार होते हैं बच्चे! जिस कवि ने कहा है जरूर उसके बच्चे नहीं रहे होंगे, वे तो **पक्के शैतान के अवतार होते हैं।**...

तो वास्तविकता यह है कि हमारी जो भी स्थिति होगी, उसी में हम दुखी होंगे। किसी कवयित्री ने गीत लिखा है, उसके बच्चे नहीं थे, बांझ रह गई, देखो उसके गीत में कितनी पीड़ा है–

कितने ही साल सितारों की तरह टूट गए, मेरी गोदी में कोई चांद जन्म ले न सका।
टकटकी बांध के अफलाग में रोऊं–बरसूं आज तक वापस कोई मेरा गम ले न सका।
वह जमीं जो कोई पौधा न उगल सकती हो, कायदा है कि उसे छोड़ दिया जाता है।
घर में हर रोज यही फिक्र, यही शोर सुना, शाख सूखे तो उसे तोड़ दिया जाता है।
मुझे बाहों में उठा ले मुझे मायूस न कर, अपने हाथों की लकीरों में सजा ले मुझको।
अब एहसान के सिले मेरा यौवन ले ले, कर दिया सबने मुकद्दर के हवाले मुझको।
एक–दो–तीन कहां तक कोई गिनता जाए, अनगिनत सांस महकते हैं मेरे सीने पर,
मेरे लब पर कोई नगमा, कोई फरियाद नहीं, लोग नाराज से लगते हैं मेरे जीने पर।
कितने हाथों ने टटोला है मेरी तनहाई को,
कोई जुगनू, कोई मोती, कोई तारा न मिला।
कितने झूलों ने झुलाया है मेरे अरमानों को,
दिल में सोई हुई ममता को कोई सहारा न मिला।
कल भी खामोश थी मैं, आज भी खामोश हूं मैं,
मेरे माहौल में तूफान न आया कोई।
कितने अरमान मिटे एक तमन्ना के लिए,
घर लुटाने को भी मेहमान न आया कोई।
कितने ही साल सितारों की तरह टूट गए,
मेरी गोदी में कोई चांद जन्म ले न सका।

दुख हैं, सबके अपने–अपने दुख हैं। किसी के घर में चांद ने जन्म नहीं लिया तो किसी के घर में बच्चों की फौज है! जो शिक्षित आदमी है, उसे अपनी शिक्षा से सिरदर्द हो रहा है, जो अनपढ़ रह गया वह रो रहा है कि हम पढ़ाई–लिखाई नहीं कर पाए। हर व्यक्ति दुखी है। इस दुख से हम कैसे मुक्त हों? आज का सोलहवां सूत्र पतंजलि कहते हैं–

जो बीत गई सो बात गई, अब वर्तमान में जागो तुम,
आगे हो दुखमुक्त जिंदगी, ऐसी समझ जगाओ तुम।

तुम्हारे भीतर वह आनंद का चांद जन्म ले सके, तुम्हारे भीतर, याद रखना, बाहर की परिस्थिति में नहीं। तुम्हारी आत्मस्थिति में वह चांद जन्मेगा और शीतलता की चांदनी फैलेगी। परिवर्तन अपने भीतर करना है, बाहर नहीं। बाहर तो केवल दुख ही होते हैं। जब तक यह बात समझ में न आ जाए, जब तक पतंजलि का पंद्रहवां सूत्र समझ में न आ जाए कि बाहर केवल दुख ही संभव है और जो सुख जैसा लग रहा है वह केवल दुख की भूमिका है, उसके आने की पदचाप है, धोखे में मत आना... तभी यह सोलहवां सूत्र समझ में आएगा कि जो हुआ सो हुआ, अब आगे के लिए हेयम् दुखम् अनादितम्। आने वाले समय के लिए इंतजाम करो और वह इंतजाम क्या होगा? वह आत्मरूपांतरण होगा, वह जागरण होगा। अब परिस्थितियों से तुम्हारा मोहभंग हो जाएगा। अब सवाल यह नहीं है कि बाहर कुछ हेर–फेर कर लिया, सवाल यह है कि मुझमें ही कुछ परिवर्तन हो।

इस सूत्र को समझाते हुए सुनो ओशो के अमृत वचन– वे कहते हैं दुख की घटना को समझने की कोशिश करना, क्यों होते हो तुम इतने दुखी, कौन सी चीज निर्मित करती है इतना दुख? मैं ध्यान से देखता हूं तुम्हारे भीतर, दुख के ऊपर दुख की परतें हैं, पर्त–दर–पर्त। यह तो सचमुच एक चमत्कार है कि कैसे तुम जिए चले जा रहे हो। जरूर यही बात होगी कि आशा अनुभव से ज्यादा मजबूत है। स्वप्न ज्यादा शक्तिशाली है, वास्तविकता से। अन्यथा कैसे जिओगे तुम? तुम्हारे पास जीने को कुछ नहीं है सिवाय आशा के, सिवाय कल के स्वप्न के कि किसी तरह आज काट लो, आने वाला कल एक चमत्कार है और यही बात तुम जन्मों–जन्मों से सोच रहे हो। लाखों 'कल' आए लेकिन वे 'आज' बनकर आए... लेकिन आशा बची रहती है, आशा जिए चली जाती है। तुम इसलिए नहीं जीते कि तुम्हारे पास जीवन है बल्कि तुम इसलिए जीते हो कि तुम्हारे पास आशा है।

उमर खय्याम कहता है कि उसने बड़े–बड़े विद्वानों, धर्मज्ञों, पंडितों पुरोहितों, दार्शनिकों से पूछा कि आदमी क्यों जिए चला जाता है? कोई ठीक–ठीक जवाब न दे सका, सबने कंधे बिचका दिए, टाल गए बात को और उमर खय्याम ने लिखा है कि मैं बहुतों के पास गया जो अपने ज्ञान के लिए विख्यात थे, लेकिन मुझे द्वार से वापस ही लौटना पड़ा। तब निराश होकर, न जानते हुए कि किससे पूछूं, मैं एक रात आकाश को देख–देखकर खूब रोया। मैंने पूछा आकाश से, मैंने कहा आकाश से कि तुम तो यहां सदा–सदा से मौजूद हो, तुमने देखी हैं वे पीड़ाएं जिनका अस्तित्व रहा है अतीत में, लाखों–लाखों दुखी लोग यहां रहे हैं, तुम तो जरूर जानते होगे आकाश कि लोग क्यों जिए चले जाते हैं? उमर खय्याम कहता है कि आकाशवाणी हुई– आशा के कारण।

आशा है तुम्हारा एकमात्र जीवन। आशा के धागे के सहारे तुम सारे दुखों को सह सकते हो। स्वर्ग के एक सपने से ही तुम भूल जाते हो अपने चारों तरफ के नरक को। तुम जीते हो स्वप्न में, स्वप्न जीवित रखते हैं तुम्हें, यथार्थ कुरूप है, तुम्हारा सपना सुंदर है। पतंजलि कहते हैं कि इसी कारण लोग दुख में पड़े हैं। फिर क्या करना होगा? कैसे बदल सकते हो तुम इन कारणों को?... वे तो होते ही नहीं, उन्हें बदला नहीं जा सकता, केवल तुम्हें बदला जा सकता है। पतंजलि कहते हैं कि अगर भविष्य के दुख को नष्ट करना है तो अतीत के बारे में मत सोचना, अतीत तो खत्म हुआ और तुम उसे 'अन–किया' नहीं कर सकते। लेकिन भविष्य के दुख से बचा जा सकता है, उससे बचना ही होता है। कैसे बचना होगा यह समझो... आने वाले सूत्र में पतंजलि इसकी चर्चा करेंगे, उस विधि का वर्णन करेंगे कि भविष्य के दुखों से हम बच सकें।

अतीत में हमारे जीने का ढंग गलत रहा, किंतु इसे बदला जा सकता है। लेकिन सावधान! साधु, महात्मा, गुरु जगह–जगह बैठे हैं जो समझा रहे हैं लेकिन उनकी विधियां काम न आएंगी। कोई कह रहा है मंदिर जाओ, मूर्तिपूजा करो, कोई कह रहा है व्रत उपवास रख लो, कोई कह रहा है ब्राह्मणों को दान कर दो, कोई कह रहा है गंगा स्नान कर आओ, सब पाप धुल जाएंगे। नहीं, तुम्हारे गंगा स्नान करने से तुम पवित्र न होओगे, गंगा भले ही मैली हो जाए! निश्चित रूप से हो ही गई होगी, अरबों–खरबों पापी वहां स्नान कर चुके हैं और तो कोई वहां जाता नहीं। गंगा में पाप ही पाप के कीटाणु तैर रहे होंगे। डर यह है कि दूसरे कीटाणु तुम्हें न लग जाएं! अपने घर का हैण्डपंप ही अच्छा है, कम से कम अपने ही कीटाणु हैं! गंगा में तो पता नहीं कितने पापी नहा चुके हैं, सबका पाप उसमें बह रहा है।

पंडित–पुरोहित तुम्हें समझाएंगे, सत्यनारायण की कथा करवा लो, शास्त्र अध्ययन कर लो, मंत्र कर लो, जप कर लो, अखण्ड रामायण जाप करवा लो, त्याग, उपवास, संन्यास ले लो, घर को छोड़ कर भाग जाओ, गृहस्थी में दुख है, असली दुख की जड़ संसार है। मगर मुश्किल है भाग कर जाओगे कहां? जिस जंगल में, जिस पहाड़ पर तुम जाओगे वह भी तो संसार का हिस्सा है, वह कोई संसार के बाहर है क्या? जहां भी रहोगे संसार में ही रहोगे। कोई कहेगा यज्ञ हवन कर लो, कोई कहेगा फलां–फलां पत्थर की, कीमती पत्थर की अंगूठी बनवा लो... उस सज्जन को अपनी अंगूठी बेचनी है, पत्थर बेचना है। उनकी दुकान, उनका किसी अंगूठी वाले से कमीशन होगा कि पन्ना पहन लो कि हीरा पहन लो कि नीलम पहन लो, ज्योतिषी कुंडली देखकर बता रहे हैं। ज्यादा है तो धर्म परिवर्तन कर लो। आदमी एक धर्म से थक जाता है, थक गए हिन्दू धर्म से चलो क्रिश्चियन बन जाओ, लेकिन सब परिवर्तन बाहर के हैं, इनसे दुखमुक्ति नहीं होगी।

मैंने सुना है नसरुद्दीन लंगड़ा–लंगड़ा कर चल रहा था, एक सज्जन मिल गए। सज्जनों की कोई कमी है! उन्होंने कहा अरे! मुझे भी यही तकलीफ थी, दांत उखड़वाने से ठीक हो गई। वो अकलदाढ़ निकलवा दो, वही सारे प्रॉब्लम की जड़ है। नसरुद्दीन ने सोचा अकलदाढ़ वैसे भी तो कोई काम आती नहीं, निकलवा दी। मगर तकलीफ कम न हुई। एक दूसरे सलाहकार मिल गए, सलाहकार बिना ढूंढ़े मिल जाते हैं। उन्होंने कहा अरे! यही तकलीफ मुझे थी, टौंसिल कटवाने से ठीक हो गयी। नसरुद्दीन ने सोचा चलो टौंसिल भी कटवा देते हैं, न अकलदाढ़ किसी मतलब की थी, न टौंसिल अपने किसी मतलब का है। टौंसिल कटवा दी मगर कुछ हुआ नहीं, तकलीफ जारी रही। एक तीसरे सज्जन ने कहा कि ये अपेंडिक्स निकलवाने से ठीक होगा। नसरुद्दीन ने कहा कि चलो अपेंडिक्स का भी ऑपरेशन करवा लो मगर ठीक न हुए। फिर अचानक लोगों ने देखा कि नसरुद्दीन अकड़ कर चला जा रहा है बाजार में, एकदम ठीक भला–चंगा। लंगड़ाना बंद हो गया, पैर की तकलीफ दूर हो गई। लोगों ने पूछा नसरुद्दीन क्या हुआ? टौंसिल से ठीक हुए कि अपेंडिक्स से कि दांत उखड़वाने से? नसरुद्दीन ने कहा तीनों बातें बिल्कुल बेकार थीं। अरे मेरे जूते में एक कील थी, वह कील निकलवाने से मुझे मुक्ति मिली!

ये जो पंडित–पुरोहित, साधु–महात्मा समझा रहे हैं कि गंगा स्नान कर लो, कि मूर्ति पूजा, कि अखंड रामायण, कि सत्यनारायण कथा, मैं तुमसे कहता हूं कि इससे कील न निकलेगी। जब तक तुम्हारे जूते में कील है, तुम्हें सतायी ही रहेगी। तो पतंजलि के अगले सूत्र में हम उस कील की चर्चा करेंगे। दुख, पीड़ा और संताप दूर होते हैं। और याद रखना, यह किसी बाह्य परिस्थिति की बात नहीं है, यह तुम्हारे आंतरिक जागरण की बात है। मूर्छा की कील गड़ी हुई है। जागना होगा, चेतना होगा और तब सारे दुख–दर्द समाप्त हो जाएंगे। हेयम् दुखम् अनादितम्।

धन्यवाद!!

चित्त से वियोग : आत्मा से योग

साधनपाद : 17

द्रष्टादृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः

साक्षीरूपी आत्मा खुद को, चित्त समझ लेती है;
यहीं बात आगे चलकर, दुख का कारण बनती है।

गौतम बुद्ध ने चार आर्य सत्यों की घोषणा की है। पहला आर्य सत्य है– जीवन दुख है। पश्चिम के दार्शनिकों ने जब पहली बार बुद्ध के शास्त्रों के अनुवाद किए तो वे गलत निष्कर्ष पर पहुंचे। पश्चिम के मनीषी सोचने लगे कि बुद्ध दुखवादी हैं। नहीं, बुद्ध दुखवादी नहीं हैं। बुद्ध केवल एक तथ्य की घोषणा कर रहे हैं। 'जीवन दुख है'– यह पहला आर्यसत्य है। आगे की बात सुनो– दूसरा आर्यसत्य है – 'दुख का कारण है' और तीसरा आर्यसत्य है – 'दुख निवारण का उपाय है' और चौथा आर्यसत्य है – 'दुख मुक्ति की अवस्था है, परमानंद की अवस्था है'। तो जब बुद्ध या पतंजलि कहते हैं कि जीवन दुख है तो उनका अभिप्राय यह है कि जो सुख जैसा भास रहा है वह भी दुख की भूमिका है।

इसलिए ऐसा नहीं समझना कि वे निराशावादी हैं। नहीं, वे परम आनंद की तरफ इशारा करने वाले हैं। वे दुखवादी नहीं हैं, महासुख की तरफ ले जाने का उपाय कर रहे हैं। लेकिन जिस व्यक्ति को दुख ही सुख जैसा जान पड़ रहा है, वह भ्रांति में खोया है, वह कैसे इस परमानंद की तरफ जा सकेगा? अभी जो हमारी जिंदगी है, निश्चित ही यह एक दुख की कथा है। किसी शायर की पंक्तियां मैं पढ़ रहा था, अपने दोस्त से वह कह रहा है –

दोस्त मायूस न हो, सिलसिले बनते–बिगड़ते ही रहे हैं अकसर,
दोस्त मायूस न हो।
तेरे पलकों पर सर अश्कों के सितारे कैसे,
तुझको गम है तेरी महबूब तुझको मिल न सकी।
और जो जीश्त तरासी थी तेरे ख्वाबों में,

आज वो ठोस हकाइक में कहीं टूट गई,
तुझको मालूम है मैंने भी मोहब्बत की थी,
और अंजामे मोहब्बत भी मालूम है तुझे।
अनगिनत लोग जमाने में रहे हैं नाकाम,
तेरी नाकामी नई बात नहीं है दोस्त मेरे।
किसने पाई है भला जीत से तल्खी नजात,
चार और नाचार ये जहराब सभी पीते हैं,
जह सुपारी के फंसा बंदा फसानो पे न जा,
कौन मरता है मोहब्बत में सभी जीते हैं।
वक्त हर जख्म को हर गम को मिटा देता है,
वक्त के साथ ये सम्मां भी गुजर जाएगा
और ये जो बातें दोहराई है मैंने इस वक्त,
तू भी एक रोज इन्हीं बातों को दोहराएगा।
दोस्त मायूस न हो, सिलसिले बनते–बिगड़ते ही रहे हैं अकसर,
दोस्त मायूस न हो।

गौतम बुद्ध और पतंजलि तुम्हें सांत्वना नहीं देंगे, वे नहीं कहेंगे कि समय घावों को भर देगा। झूठी सांत्वना और तसल्ली वे तुम्हें न देंगे। वे कहेंगे– नहीं, अगर तुम इसी प्रकार से जिए तो भविष्य में और–और घाव लगेंगे। अपने आप को रूपांतरित करो। यह सवाल नहीं है कि अभी किसी घटना से तुम मायूस हो गए, कल का कोई सुंदर स्वप्न बुद्ध नहीं दिखाएंगे। पतंजलि ठोस सत्य कहेंगे कि तुम्हारी जीवन जीने की शैली गलत है। और अगर इसी भांति जिए तो आगे भी और–और गड्ढों में गिरोगे। इसको तुम उनकी कठोरता मत समझना, यह उनकी करुणा है। वे परमानंद की दिशा में तुम्हें ले जाना चाहते हैं। साधनपाद के 17वें सूत्र में पतंजलि कहते हैं, साक्षी रूपी आत्मा खुद को चित्त समझ लेती है, यही बात आगे चलकर दुख का कारण बनती है। दृश्य का द्रष्टा के साथ जो संयोग हो गया, चैतन्य ने स्वयं को संसार समझ लिया, आत्मा ने खुद को मन मान लिया, शरीर मान लिया, यह बात दुख का कारण है और जब तक यह संयोग न टूटे तब तक योग घटित नहीं हो सकता। चित्त से वियोग हो तभी आत्मा से योग संभव है। इस सूत्र को समझाते हुए ओशो कहते हैं–

पतंजलि कहते हैं कि द्रष्टा और दृश्य का संबंध जो कि दुख बनाता है, उसे नष्ट करना है। तुम्हें साक्षी होना होगा, तुम्हारे गुणों का, तुम्हारी प्रकृति का, मन की वृत्तियों का, मन की होशियारियों का, चालबाजियों का, मन के फंदों का, आदतों का, संस्कारों का, अतीत का, बदलती हुई स्थितियों का, मन की अपेक्षाओं का, तुम्हें सजग रहना होगा इन सब चीजों के प्रति। तुम्हें केवल एक बात याद रखनी है – 'द्रष्टा' दृश्य नहीं है। जो कुछ तुम देख सकते हो वह तुम नहीं हो। यदि तुम देख सकते हो, तुम्हारे आलस्य की आदत, अपने तमस को तो एक बात तो तय हो गई, तुम आलस्य की आदत नहीं हो। यदि तुम देख सकते हो निरंतर कुछ न कुछ

किए जाने की आदत, रजस को, तो तुम रजस भी नहीं हो। यदि तुम देख सकते हो अपनी पिछली संस्कारबद्धताएं तो वे बद्धताएं भी तुम नहीं हो। द्रष्टा कभी भी दृश्य नहीं हो सकता है। तुम तो जागरूकता हो और जागरूकता उन सबसे परे होती है, जिसे वह देख रही है। द्रष्टा सदा ही पार होता है दृश्य के। तुम इंद्रियातीत चेतना हो, यह होता है विवेक, यह होती है सजगता। यही तो है जिसे बुद्ध उपलब्ध करते हैं और जिसमें वे निरंतर रमते हैं।

इसे निरंतर उपलब्ध करना तुम्हारे लिए संभव न होगा, लेकिन अगर कुछ पलों के लिए भी तुम द्रष्टा तक उठ सको और दृश्य के पार जा सको तो अचानक ही दुख तिरोहित हो जाएंगे। अचानक बादल न रहेंगे आकाश में और तुम पा सकोगे थोड़ी सी झलक, नीले आकाश की। वह मुक्ति पा सकते हो जिसे वह देता है और पा सकते हो वह आनंद जो कि उसके द्वारा आता है। शुरू में केवल कुछ क्षणों के लिए यह संभव होगा, लेकिन धीरे-धीरे क्रमशः जैसे तुम इसमें विकसित होने लगोगे, तुम इसे और ज्यादा अनुभव करने लगोगे। तुम इसकी आत्मा को ही आत्मसात कर लोगे। यह बात और ज्यादा घने रूप में मौजूद हो जाएगी। एक दिन ऐसा भी आएगा जब अचानक लगेगा कि और कोई बादल नहीं बचा, सारे दृश्य विदा हो गए, केवल द्रष्टा ही बचा। इसी तरह बचा जा सकता है भविष्य के दुख से। अतीत में तुमने दुख भोगा, भविष्य में कोई आवश्यकता नहीं है दुख भोगने की।

यदि तुम दुख भोगते हो तो तुम ही जिम्मेवार हो। और यही है कुंजी, कुंजियों की कुंजी, सदा याद रखना कि तुम सब से परे हो। जो भी तुम देख सकते हो, तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, वह दोनों ही तुम नहीं हो। यदि तुम आंखें बंद करो और तुम देखो अपने विचार, अपने भाव... तुम विचार नहीं, तुम भाव नहीं, तुम तो बस द्रष्टा हो। विचार और भाव दृश्य हैं और द्रष्टा सदा दृश्य के पार होता है। द्रष्टा है सर्वथा परे, सदा ही अतिक्रमण करने वाला तत्व, तुम द्रष्टा हो। सदा स्मरण रखो, तुम साक्षी चैतन्य मात्र हो। जो भी दिखाई पड़ रहा है, चाहे मन के विचार हों, चाहे शरीर के कर्म हों और चाहे हृदय की भावनाएं हों, चाहे बाहर संसार के दृश्य हों, तुम उनमें से कुछ भी नहीं, तुम उन सबके पार हो। मैं आपको नसरुद्दीन का एक चुटकुला सुना रहा था न, उसने टौंसिल, अपेंडिक्स और दांत उखड़वा दिए और कष्ट था जूते में कील की वजह से!

आज के सूत्र में पतंजलि उस कील की तरफ इशारा कर रहे हैं। वह कील है जो हमें लगी है? वह है द्रष्टा का दृश्य के साथ तादात्म्य। चेतना अपने आप को चित्त समझने लगी और इसका कारण है कि चेतना एक दर्पण की भांति है। जो भी उसके निकट होता है वह उसमें प्रतिबिंबित होता है, और ऐसा लगने लगता है कि वह उसके भीतर है। यहीं भ्रम पैदा हो जाता है। चेतना अपने आप को चित्त समझने लगी, भाव समझने लगी, संसार की घटनाएं समझने लगी। हां, तुम्हारा मन सुखी होता है, मन दुखी होता है, तुम्हारा हृदय आह्लादित होता है, तुम्हारा हृदय विषाद से भरता है। सदा जानो तुम इसके साक्षी हो।

तुम वह आकाश हो जिसमें सुख के सफेद बादल आते हैं और दुख की काली बदलियां आती हैं। आती हैं और जाती हैं। लेकिन आकाश न तो सफेद हो जाता है न काला हो जाता है। आकाश अछूता का अछूता, अस्पर्शित बना रहता है। तो अपने क्लेश के कारणों को हमने

समझा और अब हमने समझा कि कैसे वे दूर होंगे। ये जो पांच क्लेश थे, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, अभिनिवेश यानी जीवेषणा, ये पांचों कारण दूर हो सकते हैं सिर्फ एक प्रक्रिया से, वह प्रक्रिया है साक्षीत्व की। दृश्य के साथ अपने तादात्म्य को तोड़ो। उपनिषद् के ऋषि कहते हैं नेति–नेति। न मैं यह हूं, न मैं वह हूं, 'नाइदर दिस नॉर दैट', फिर मैं क्या हूं? मैं सबको जानने वाला हूं। जानने वाले पर आओ, ज्ञेय से ज्ञाता पर पहुंचो, दृश्य से द्रष्टा पर पहुंचो।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन बहुत तेजी से अपनी कार ड्राइव कर रहा था। उसके साथ में एक और मित्र बैठा हुआ था। पीछे से पुलिस वाले ने सीटी बजाई। नसरुद्दीन ने नहीं सुना तो पुलिस वाले ने मोटरसाइकिल से भागते हुए पीछा किया। पन्द्रह मिनट बाद नसरुद्दीन की कार को वह रोक पाया। बहुत गुस्से में पुलिस ऑफीसर ने डांटा। उसने कहा कि तुम बीच बाजार में इतनी रफ्तार से गाड़ी चला रहे हो। जहां बोर्ड लगा है चालीस के ऊपर नहीं चलाना है, वहां तुम सौ किलोमीटर की रफ्तार से चला रहे हो, तुम्हारा चालान करूंगा, तुम्हारा लाइसेंस कैंसिल करवा दूंगा। दूसरा कारण कि चौराहे पर तुमने रेड लाइट क्रॉस कर दी... अंधे हो, दिखाई नहीं देता? तीसरा कारण कि जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो वहां वन–वे ट्रैफिक है, तुम्हें वहां जाना ही नहीं चाहिए था। और चौथा कारण कि मैं दस मिनट से सायरन बजा रहा हूं, तुम सुन नहीं रहे हो। तुम्हारा चालान करूंगा, तुम्हारा ड्राइविंग लाइसेंस कैंसिल करवा दूंगा।

नसरुद्दीन के बगल में जो मित्र बैठा था उसने खिड़की खोलकर कहा कि सर, इतने नाराज मत होइए, इस पर दया कीजिए, बेचारा बुरी तरह से पिए हुए है, उसे आपके सायरन की आवाज सुनाई ही नहीं दी। ये सज्जन लाइसेंस कैंसिल करने का पांचवा कारण और बता रहे हैं! इसको क्षमा करें... बेचारे को कुछ होश–हवास नहीं है।

ये पांच कारण हैं, लेकिन इसमें जो मुख्य कारण है, वह मूर्छित होना है, हम शराब पिए हुए हैं और जीवन की यह गाड़ी चला रहे हैं। तो बाकी के चार कारण गौण हैं, जिन्हें हम कहें अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। संक्षेप में आ जाएं, वह जो पहला कारण पतंजलि ने कहा है, अविद्या अर्थात् मूर्च्छा अथवा बेहोशी, वही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण है, शेष चार उसी के परिणाम हैं। अगर नसरुद्दीन ने शराब न पी होती तो बाकी के चार कारण भी नहीं हो सकते थे। ये बाई–प्रोडक्ट हैं, सिर्फ एक मुख्य बात को पकड़ो।

अगर तुमने बहुत सारी चीजों को साधने की कोशिश की तो कुछ भी नहीं सधेगा। तुमने राग छोड़ने की कोशिश की वैरागी बनने की कोशिश की... वह वैराग राग का ही शीर्षासन होगा। तुमने द्वेष छोड़कर मित्रता भाव साधने की कोशिश की, वह अभिनय होगा, नाटक होगा। तुमने अहंकार छोड़कर विनम्रता साधने की कोशिश की, वह अहंकार का ही एक नया खेल होगा।

बहुत चीजों को साधने की जरूरत नहीं है, संतो का वचन याद रखना– एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाए। उस एक का नाम ही साक्षी भाव है, ध्यान है, यही सहज योग है।

धन्यवाद!!

त्रिगुण तत्व का अतिक्रमण

साधनपाद : 18

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

दृश्य, इन्द्रियाँ और तीन गुण भोगों में उलझाते;
द्रष्टा हम हो जाएं, तो मुक्तिपंथ बन जाते।

दृश्य, इंद्रियां और तीन गुण हमें भोगों में उलझाते हैं। यदि हम जाग सकें, द्रष्टामात्र हो सकें तो हमें मुक्ति का पथ मिल जाता है। जैसे कोई चिड़िया कभी खिड़की से भीतर घुस आती है और फिर यहां-वहां कांच से टकराती है, वहां से निकलने की कोशिश करती है जहां से निकल नहीं सकती। वह उसी द्वार से वापस निकलने की कोशिश नहीं करती, जहां से वह आई थी। यह संसार जिसमें हम उलझ गए हैं, इससे बाहर निकलने का मार्ग भी वही है जिससे हम भीतर आए थे।

पतंजलि का यह सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह हमेशा से दार्शनिक चिंतन का विषय रहा है कि परमात्मा ने यह जगत बनाया ही क्यों, इस रोग-भोग में हमें उलझाया ही क्यों, ये इतने दुख-दर्द, इतनी पीड़ाएं, इतने संताप इन सबकी जरूरत क्या थी? ये सब बहुत जरूरी हैं ताकि हम परमानंद की अवस्था को जान सकें। काली बदलियों के कंट्रास्ट में ही, उस बैकग्राउंड में ही श्वेत बिजली चमकती है। स्कूल में टीचर ब्लैकबोर्ड पर सफेद चॉक से लिखते हैं तो दिखाई देता है। यदि सफेद दीवार पर सफेद चॉक से लिखेंगे तो दिखाई ही न देगा।

आनंद का ज्ञान हो सके, इसलिए दुख और वेदना से गुजरना बहुत जरूरी है। संताप और पीड़ा से गुजरे बिना, नरक से गुजरे बिना, स्वर्ग का अनुभव नहीं हो सकता। इस सूत्र को समझाते हुए ओशो कहते हैं कि दृश्य जो कि प्राकृतिक तत्वों से और इंद्रियों से संगठित होता है उसका स्वभाव होता है प्रकाश यानी थिरता, सक्रियता और निष्क्रियता और द्रष्टा

को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु वह होता है। पहली बात जो समझने जैसी है वह यह कि यह संसार इसलिए है ताकि तुम्हें मुक्ति फलित हो सके। तुम्हारे मन में बहुत बार यह प्रश्न उठा होगा कि यह संसार क्यों है, इतनी ज्यादा पीड़ा क्यों है, यह सब किसलिए, इसका प्रयोजन क्या है?

बहुत से लोग मेरे पास आते हैं और वे कहते हैं कि यह मूलभूत प्रश्न है कि हम आखिर हैं ही क्यों और अगर जीवन इतनी पीड़ा से भरा है तो इसका प्रयोजन क्या है? यदि परमात्मा है तो वह इस सारी की सारी अराजकता को मिटा क्यों नहीं देता, क्यों नहीं वह जीवन के सारे दुख समाप्त कर देता, इस नरक को मिटा क्यों नहीं देता, वह क्यों लोगों को विवश किए चला जाता है इस जीवन को जीने के लिए? योग के पास इस प्रश्न का उत्तर है।

पतंजलि कहते हैं– द्रष्टा को अनुभव उपलब्ध हो तथा अंततः मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह संसार है, यह एक प्रशिक्षण है। पीड़ा एक प्रशिक्षण है, क्योंकि बिना पीड़ा के परिपक्व होने की कोई संभावना नहीं है। यह आग है, सोने को शुद्ध करने के लिए, इसमें से गुजरना ही होगा। यदि सोना कहे कि आग से गुजरना क्यों?... तो सोना अशुद्ध और अमूल्यहीन ही बना रह जाएगा। केवल आग से गुजरने पर ही वह सब जल जाता है जो कि सोना नहीं है और शुद्धतम स्वर्ण बचा रहता है।

मुक्ति का कुल मतलब इतना ही है– एक परिपक्वता, इतना चरम विकास कि केवल शुद्धता, केवल निर्दोषता ही बचे और वह सब जो व्यर्थ है जल जाए। इसे जानने का कोई और उपाय नहीं है, कोई और उपाय हो भी नहीं सकता! यदि तुम जानना चाहते हो कि तृप्ति क्या है, तुम्हें भूख को जानना ही होगा। यदि तुम बचना चाहते हो भूख से तो फिर तृप्ति से भी बच जाओगे। यदि तुम जानना चाहते हो कि गहन तृप्ति क्या होती है तो तुम्हें जानना होगा गहन प्यास को। यदि तुम कहते हो कि मैं नहीं जानना चाहता कि मुझे प्यास लगी, तो तुम प्यास के बुझने की तृप्ति की घड़ी से भी चूक जाओगे। अगर तुम जानना चाहते हो कि प्रकाश क्या है तो तुम्हें अंधेरी रात से गुजरना ही पड़ेगा। अंधेरी रात तुम्हें तैयार करती है कि सुबह क्या है।

यदि तुम जानना चाहते हो कि जीवन क्या है तो तुम्हें मृत्यु से गुजरना होगा। मृत्यु तुम्हारे अंदर जीवन को जानने की संवेदनशीलता निर्मित करती है। जीवन और मृत्यु विपरीत नहीं हैं, वे परिपूरक हैं। यह जगत हमारे विकास के लिए है। यह अज्ञान में पड़ना, परमात्मा से वियोग हो जाना, यह इसलिए ताकि हम सजगतापूर्वक योग की अवस्था को प्राप्त कर सकें, पुनः द्रष्टा भाव में आ सकें, इसलिए दृश्य में उलझ जाना भी जरूरी है।

मैंने सुना है कि सेठ चंदूलाल सुबह–सुबह अपना विवाह प्रमाणपत्र, मैरेज सर्टिफिकेट कोई आधे घंटे से पढ़ रहे थे, उलट–पुलटकर उसे आगे–पीछे से देख रहे थे, यहां से, वहां से, चश्मा लगाकर, लेंस से देख रहे थे। आखिर उनकी पत्नी झल्लाकर बोली कि तुम कर क्या रहे हो, और साथ–साथ गाना भी गा रहे हो, दुनिया बनाने वाले काहे को दुनिया

बनाई, क्या तेरे मन में समाई। क्या कर रहे हो आधे घंटे से, मैरेज सर्टिफिकेट क्यों पढ़ रहे हो? सेठ चंदूलाल ने कहा– लगता है कि सरकारी ऑफिस है, कुछ छापना भूल गए हैं, इसमें कहीं एक्सपायरी डेट ही नहीं है!

विवाह के दुख में उलझना भी जरूरी है। एक्सपायरी डेट है, कहीं न कहीं छुपी हुई है, निकलेगी, तुम जरा और गौर से ढूंढ़ो। इस जगत के साथ हमारा बंधन हो गया है, इसके साथ हमारा विवाह हो गया है, दृश्य के साथ हम उलझ गए हैं। जब हम जाग जाएंगे, वही एक्सपायरी डेट हो जाएगी, वही उत्सव का क्षण हो जाएगा।

तो दृश्य और द्रष्टा का तादात्म्य हो जाना, ऐसा नहीं सोचना कि कोई दुर्भाग्य की घटना है, इसी में सौभाग्य की संभावना भी छिपी है। नरक से गुजर कर ही स्वर्ग का अनुभव हो सकता है, उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। चंदूलाल से किसी ने पूछा कि लोग शादी क्यों करते हैं? चंदूलाल ने कहा कि आखिर जिंदगी में रोमांस, गाना, हंसना–हंसाना, मजे से ही जीवन गुजारना सबकुछ नहीं है बड़े मियां! दुख, चिंता, निराशा आदि की भी अहम भूमिका होती है, इसलिए आदमी शादी करता है।

जगत में कुछ भी विरोधाभासी नहीं है। अगर दुख, चिंता और परेशानी न हो तो रिलैक्सेशन और शिथिलता क्या है, उसे हम कभी भी नहीं जान सकेंगे। निश्चिंतता का सुख, चिंताओं से गुजरने के बाद ही मिलता है। अगर मृत्यु न होती तो याद रखना, जीवन भी न होता। वे दोनों एक साथ ही हो सकते हैं। इसलिए पूरे संसार को एक अखंड दृष्टि से देखना शुरू करो, खंड–खंड में बांटकर नहीं। वह अखंडता तुम्हें आत्मोन्मुख बनाएगी।

तीन प्रकार के ज्ञान दुनिया में घटित होते हैं। एक पुराने ढंग का वैज्ञानिक ज्ञान था जो दृश्य का सिर्फ ऑब्जर्वर बनता था। स्वयं उससे बिल्कुल दूर रहता था, अनअटैच्ड, उसमें उसका कोई 'इन्वॉल्वमेन्ट' नहीं होता था। एक दूसरा ज्ञान है कवि का, कलाकार का, संगीतकार का... वह अपने दृश्य के साथ आंशिक रूप से सहभागिता, पार्टिसिपेशन में जाता है।

तीसरे प्रकार का ज्ञान है संत का, ऋषि का... वह जिस विषय को जानता है, उसमें उसकी पूर्ण सहभागिता हो जाती है, उसके साथ वह एक ही हो जाता है। और इसलिए ब्रह्म को जानने वाला स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। परमात्मा को जानकर तुम परमात्मा से भिन्न नहीं रह जाओगे, उसके साथ एक ही हो जाओगे। तो विज्ञान का ज्ञान, कला का ज्ञान और धर्म का ज्ञान– इन तीनों के भेद को स्मरण रखना।

अब नए–नए वैज्ञानिक, खासकर पिछले 20–25 सालों में, वे भी इस बात को समझने लगे हैं कि जब हम किसी दृश्य को देखते हैं तो वह दृश्य भी हमें रूपांतरित करता है। और हमारा ऑब्जर्वेशन, हमारा निरीक्षण, उस दृश्य को रूपांतरित करता है। जब से सब–ऐटॉमिक पार्टिकल्स की खोज हुई है, परमाणु के भी छोटे अंश पता चले हैं तब से यह भी ज्ञात हुआ है कि उनका निरीक्षण करने मात्र से उनका व्यवहार बदल जाता है। वे ठीक

वैसा व्यवहार नहीं करते जैसा वे पहले कर रहे थे। कवि तो हमेशा से ही यह बात करते रहे हैं। जब कोई कवि एक फूल को देखता है तो वह कवि वही नहीं रह जाता है जो फूल को देखने के पहले था, उसके हृदय में कुछ उमंग उठी, कुछ प्रेम उमड़ा, कोई गीत फूटा, कविता की कुछ पंक्तियां उतरीं, वह कवि परिवर्तित हुआ। तुम्हें दूसरा हिस्सा मालूम नहीं! कवि के इस प्रेमपूर्ण नजरिए से देखने के कारण फूल में भी कुछ हुआ। वह फूल अब वही फूल नहीं है जो कवि की दृष्टि पड़ने के पहले था। शायद अभी हम वैज्ञानिक उपकरणों से इसे पकड़ न पाएं, लेकिन किसी न किसी दिन यह बात भी पकड़ में आ जाएगी।

दृश्य और द्रष्टा में अंतर एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। जब ध्यान में, समाधि में परमात्मा का ज्ञान होता है तब दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। योग का अर्थ है मिलन, परम विवाह, परमात्मा से शादी। उसमें फिर दो नहीं रह जाते, कोई द्वंद्व नहीं रह जाता, कोई अद्वैत नहीं रह जाता। धीरे–धीरे विज्ञान भी स्वीकारने लगा है इस बात को। यह बात अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण है... अंधकार से गुजर कर ही प्रकाश का अनुभव होता है, संसार को जानकर ही ब्रह्म को जाना जाता है। कोई और उपाय ही नहीं हैं।

दृश्य के ये जो तीन गुण हैं, रजस, तमस और सत्व, ये भी प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अपनी भूमिका निभाते हैं। रजस का अर्थ है– कर्मठता, ऊर्जा, उत्साह, शक्ति। अगर यह विक्षिप्त हो जाए, रजस ही रजस हो जाए, तो आदमी हिटलर और सिकंदर जैसा हो जाएगा तब यह शक्ति खतरनाक हो जाती है। यह कर्मठता पागलपन हो जाती है। यदि तमस की बात रह जाए, आदमी आलसी हो जाता है, कुछ करता ही नहीं, तब भी वह दुख में पड़ता है। तो तमस और रजस दोनों में एक संतुलन साधना होगा, दोनों जरूरी हैं। पतंजलि इन्हें कह रहे हैं– सक्रियता, निष्क्रियता के गुण। इन दोनों में एक संतुलन आए तब सत्व पैदा होता है।

चीन के संत लाओत्सु बैठे हैं वृक्ष के नीचे, एक ऊर्जाकुंड, शक्ति से भरे हुए, लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है, वह कहीं प्रगट नहीं हो रही है, यह सत्व की परमदशा है। यह आलस्य नहीं है, तमस नहीं है, शक्ति से ओत–प्रोत है, किंतु कर्म करने का कोई पागलपन नहीं है। जितना जरूरी है, जो जरूरी है बस उतना ही करते हैं।

जब हमारे भीतर भी सत्व, रजस और तमस इन तीनों का महासंतुलन घटता है, तब हम गुणातीत हो जाते हैं, तब हमारी चेतना स्वयं पर वापस आ जाती है, तब आत्मा परमात्मा के साथ एक हो जाती है, अखंडता का अनुभव होता है, परमयोग घटित होता है।

याद रहे कि संसार इसीलिए है ताकि हम स्वयं पर वापस आ सकें। कोई और उपाय नहीं है, दर्पण में देखकर ही हम स्वयं को पहचान सकते हैं, दर्पण उपयोगी है और संसार एक दर्पण है।

दुख भी जरूरी है ताकि हम आनंद को जान सकें। वियोग भी जरूरी है ताकि योग हो सके। विरह भी अनिवार्य है ताकि परम मिलन हो सके। इसी का नाम सहज योग है।

धन्यवाद!!

त्रिगुण तत्व की चार दिशाएं

साधनपाद : 19

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि।

त्रिगुण तत्व की चार दशाएं, होती हैं अभिव्यक्त;
निश्चित और अनिश्चित एवं सांकेतिक, अव्यक्त।

किसी कवि ने लिखा है –
चलते–चलते पैर थक गए, फिर भी चलता जाता हूं,
पीते–पीते नैन मुंद गए, फिर भी पीता जाता हूं।
झुलसाया जग ने यह जीवन, इतना कि राख भी जलती है,
रह गई केवल सांस है एक सिर्फ, वह भी तो आज मचलती है।
क्या ऐसा भी जलना देखा,
नहीं चाहता जलना लेकिन, फिर भी जलता जाता हूं,
चलते–चलते पैर थक गए फिर भी चलता जाता हूं।
सीने से लिपटा है दीवानों का सुंदर संसार,
खुद की समाधि पर दीपक बन, जलता प्राणों का मधुर प्यार,
कैसे बसे संसार मेरा,
हूंकर से बना रहा लेकिन पग से ढाता जाता हूं,
पीते–पीते नैन मुंद गए, फिर भी पीता जाता हूं।
मानव का गायन वही अमर, नभ से जाकर टकराए जो,
मानव का स्वर वही है, आह में तूफान उठाए जो,
पर मेरा स्वर गायन भी क्या, जल रहा हृदय रो रहे प्राण, फिर भी गाता जाता हूं,
चलते–चलते पैर थक गए, फिर भी चलता जाता हूं,
हम जीवन में परवश कितने, अपनी कितनी लाचारी है,

हम जीत जिसे सब कहते हैं, वह जीत हार की बारी है,
मेरी भी हार जरा देखो, आंखो में आंसू हैं किन्तु, अधरों पर मुस्काता हूं,
पीते–पीते नैन मुंद गए, फिर भी पीता जाता हूं।
जीते–जीते प्राण बुझ गए फिर भी जीता जाता हूं।

जीने के तीन ढंग हैं। एक आलस्य, तमस, ऊर्जाहीनता का ढंग। प्राण बुझे–बुझे हैं, सब चुक गया है, कोई ऊर्जा नहीं, फिर भी जी रहे हैं, किसी प्रकार अपने आप को घसीट रहे हैं। ये तामसियों का ढंग है। इसके ठीक विपरीत राजसियों का ढंग है। बड़े ऊर्जा, उमंग और उत्साह से भरे, विश्वविजेता होने के लिए तत्पर, सारी दुनिया पर अधिकार जमाने को आतुर, बड़ी कर्मठता का पागलपन, दो क्षण चैन से बैठ नहीं सकते। उनके जीवन में कर्मठता के कारण दुख उत्पन्न होता है।

तमस वाला व्यक्ति भी दुख में जाता है, रजस वाला व्यक्ति भी दुख में जाता है। इन दोनों की एक संतुलन की अवस्था होनी चाहिए। कर्म का पागलपन न हो और भीतर ऊर्जा भरी–पूरी हो। निश्चित रूप से ऐसे व्यक्ति से भी कर्म होंगे, लेकिन वही जो जरूरी हैं, जो आवश्यक हैं। वह व्यर्थ के कर्मों में नहीं उलझेगा, उसकी जीवन ऊर्जा अपने आप में एक शांत कुंड बनी रहेगी। जब जरूरत होगी तभी वह ऊर्जा बाहर आएगी। ऐसा व्यक्ति सत्व में स्थित हो जाता है। ये तीन गुण हैं। आज का सूत्र इन तीन गुणों की चार अवस्थाओं की तरफ इशारा करता है।

कहते हैं महर्षि पतंजलि,
त्रिगुण तत्व की चार दशाएं होती हैं,
अभिव्यक्त, निश्चित और अनिश्चित एवं सांकेतिक और अव्यक्त।

ये चार स्थितियां हैं, एक तो सुनिश्चित स्थिति। जैसे हमारा शरीर एक निश्चित रूप और आकार वाला है। दूसरा अनिश्चित, जैसे हमारा मन है, अनिश्चित है। पानी के समान तरल है, प्रवाहमान है, ठोस बर्फ की तरह सुनिश्चित आकार वाला नहीं है। फिर तीसरी अवस्था है सांकेतिक, जिसकी तरफ सिर्फ इशारा किया जा सकता है, वह आत्मा की अवस्था है। सिर्फ संकेत, सिर्फ इंडीकेशन हो सकता है। और चौथी, उसकी तरफ संकेत और इशारा भी नहीं हो सकता, वह परमात्मा की दशा है– यानि आत्मा की परम शुद्ध अवस्था!

याद रखना परमात्मा से तात्पर्य कहीं स्वर्ग में सिंहासन पर बैठे हुए ईश्वर से नहीं है। परमात्मा यानी आत्मा का परम रूप, शब्द से स्पष्ट आत्मा। इस सूत्र को समझाते हुए ओशो कहते हैं, 'समता मुख्य तत्व होना चाहिए। जो कुछ भी करो तुम, सदा संतुलित रहना। रस्सी पर चलते हुए आदमी की भांति निरंतर संतुलन बनाए रखना। यही है सम्यकत्व, संतुलन का तत्व।'

वह व्यक्ति जो परम मिलन को, परमयोग को उपलब्ध होना चाहता है, उसे गहन संतुलन में रहना सीखना पड़ेगा। संतुलन में तुम तीनों गुणों के पार चले जाते हो और गुणातीत हो जाते हो। तुम इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर जाते हो। तुम अब संसार के हिस्से नहीं रहते, संसार के पार उठ जाते हो।

पतंजलि कहते हैं– ये तीन गुण, प्रकाश, सक्रियता और निष्क्रियता, इनकी चार अवस्थाएं हैं– निश्चित, अनिश्चित, सांकेतिक और अव्यक्त। इन तीनों गुणों की चार अवस्थाओं को समझो। पहली अवस्था को पतंजलि कहते हैं, निश्चित। तुम इसे पदार्थ कह सकते हो, यह तुम्हारे आसपास की सर्वाधिक सुनिश्चित वस्तु है। फिर है अनिश्चित, तुम इसे मन कह सकते हो। वह भी यहां मौजूद है, तुम्हारे भीतर, तुम्हें निरंतर अनुभूति होती है, फिर भी वह एक अनिश्चित तत्व है। तुम उसे सुनिश्चित नहीं कह सकते कि मन क्या है? यद्यपि तुम जानते हो, तुम निरंतर जीते हो उसमें, किन्तु फिर भी उसे परिभाषित नहीं कर सकते। पदार्थ को परिभाषित किया जा सकता है, लेकिन मन को नहीं। और उसके आगे है, सांकेतिक।

अनिश्चित से भी ज्यादा सूक्ष्म है सांकेतिक, यह है तुम्हारी आत्मा। तुम केवल संकेत दे सकते हो उसका, तुम यह भी नहीं कह सकते कि वह अपरिभाषित है, यह भी सूक्ष्म ढंग से उसे परिभाषित करना ही हुआ, क्योंकि यह बात भी एक परिभाषा बन जाती है यह कहना कि कोई चीज अपरिभाष्य है, तुमने परोक्ष रूप से उसे परिभाषित कर ही दिया, तुमने उसके बारे में कुछ कह ही दिया कि वह अकथनीय है। तो यही है अस्तित्व की सूक्ष्म पर्त जो आत्मा है, जो सांकेतिक है और फिर इसके पार है, सूक्ष्मतम, वह है अव्यक्त, असांकेतिक जो अनात्मा है। तो पदार्थ, मन, आत्मा और अनात्मा, ये चार अवस्थाएं हैं इन तीन गुणों की।

जीवन में हम इन तीन गुणों से गुजरते हैं। इन तीनों गुणों का अपना–अपना महत्त्व है, इन तीनों के भीतर एक महासंतुलन की अवस्था उपलब्ध हो। विज्ञान जिसकी खोज करता है, वह सुनिश्चित पदार्थ है। वहां से उसने खोज की शुरुआत की थी, लेकिन जैसे–जैसे पदार्थ की गहराई में गए, परमाणु और उससे भी सूक्ष्म कणों का ज्ञान हासिल हुआ, तब पता चला कि चीजें वहां भी अनिश्चित हैं। सच पूछो तो पदार्थ का भी मन है। वैज्ञानिक धीरे–धीरे इलेक्ट्रॉन–प्रोटॉन की खोज करते–करते पदार्थ के मन पर पहुंच गए हैं। वहां चीजें फिर अचानक अनिश्चित हो गई हैं। जो लोग क्वांटम फिजिक्स का ज्ञान रखते हैं, उन्हें पता होगा कि पिछले बीस सालों में वैज्ञानिकों ने एक सिद्धांत को खोजा है, जिसे कहते हैं 'अनिश्चितता का सिद्धांत'। यह तो बड़ी विरोधाभासी बात हो गई। नियम का मतलब ही होता है कि चीजें सुनिश्चित हों, पक्का, स्पष्ट रूप से कहा जा सके। अनिश्चितता का नियम– विज्ञान की खोज गहरी होते–होते पदार्थ की देह से पदार्थ के मन तक पहुंच गई। संभव है और गहराई आने पर, पदार्थ के भीतर वह जो चैतन्यता है, उसका एहसास होने लगे।

ये जो चार अवस्थाओं का पतंजलि वर्णन कर रहे हैं, वे केवल हमारे ही शरीर, मन, आत्मा और परमात्मा की नहीं हैं, पदार्थ की खोज में भी वही चार अवस्थाएं मिलेंगी। अभी विज्ञान को और थोड़ा परिपक्व होने दो। एक दिन जरूर आएगा जब विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि पदार्थ के भीतर भी चेतना है, पदार्थ के भीतर भी कॉन्शसनेस है। वह अचेतन जैसा दिखाई पड़ता है, बहुत अधिक मात्रा में होने की वजह से। एक उदाहरण से समझें– अगर हम सोचें कि कल दिल्ली में ऐक्सीडेंट से कितने लोग मर जाएंगे या हार्टअटैक से कितने लोग मरेंगे तो पिछले दस साल का रिकॉर्ड देखकर एक अंदाज लगाया जा सकता है और करीब–करीब

वह जो फिगर होगा, उसके निकट ही घटना घटेगी, हार्टअटैक की भी और ऐक्सीडेंट की भी। लेकिन अगर दिल्ली के बजाय हम पूरे भारत देश का हिसाब लगाएं तब हमारा अनुमान और भी ज्यादा सटीक होगा। अगर हम भारत के बजाय पूरे पृथ्वी ग्रह का हिसाब लगाएं तब हमारा अनुमान और भी ज्यादा सटीक होगा। हमें लगेगा कि चीजें बिल्कुल सुनिश्चित हैं, प्रतिदिन इतने लोग हार्टअटैक से, इतने लोग ऐक्सीडेंट से, इतने लोग कैंसर से मरते हैं।

लेकिन हमारा यह अनुमान गलत है कि चीजें सुनिश्चित हैं। एक-एक व्यक्ति के बारे में हम कुछ भी नहीं जानते। एक आदमी है, वह अगले क्षण जिंदा रहेगा कि मर जाएगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसका मतलब यह हुआ कि जहां चीजें हमें सुनिश्चित दिखाई पड़ रही हैं वहां बड़ी भीड़ के कारण हमें ऐसा एहसास हो रहा है, वह एक भ्रांति है।

वह परमाणु जिन सब-एटॉमिक पार्टिकल्स से, जिस ऊर्जा से निर्मित है, उसके बहुत ज्यादा सघन होने की वजह से हमें लगता है कि चीजें सुनिश्चित हैं। लेकिन जैसे-जैसे गहराई में जाएंगे, अनिश्चितता का एहसास होने लगेगा। इसका मतलब हुआ कि पदार्थ का भी अपना मूड है, अपनी भावदशा है, वह कैसा व्यवहार करेगा वह उस पर निर्भर है।

मैंने सुना है नसरुद्दीन के बारे में, एक नए शहर में गया था। एक हलवाई की दुकान से उसने मिठाई खरीदी, हलवाई के पास चिल्लर पैसे नहीं थे वापस करने को, तीन रुपए। सौ रुपए का नोट नसरुद्दीन ने दिया था। हलवाई ने कहा कि आप फिर कभी यहां से गुजरेंगे तो लेते जाइएगा, नसरुद्दीन ने कहा ठीक है। लेकिन नया शहर, उसने सोचा जरा पहचान लगा लूं कौन सी दुकान है हलवाई की। उसने देखा सामने एक भैंस बैठी हुई है। उसने कहा ठीक भैंस के सामने वाली दुकान। तीन दिन बाद नसरुद्दीन वहां से गुजरा। उसने देखा भैंस कहां बैठी है? वह एक नाई की दुकान के सामने बैठी थी। नसरुद्दीन गया और कहा कि भाई मेरे तीन रुपए वापस करो। नाई ने कहा कि कहां के तीन रुपए? नसरुद्दीन ने कहा हद कर दी, तीन रुपए के पीछे तुमने अपनी जात बदल ली, अपनी दुकान बदल ली, अरे! शकल-सूरत भी बदल ली, धंधा बदल लिया! नसरुद्दीन पर हमें हंसी आएगी क्योंकि भैंस कल कहां बैठेगी कहा नहीं जा सकता! भैंस में जीवंतता है, उसका मूड है, हो सकता वहीं बैठ जाए, हो सकता है कि न बैठे।

जैसे-जैसे वैज्ञानिकों ने पदार्थ की खोज की, वहां भी अनिश्चितता को पाया। सब-एटॉमिक पार्टिकल्स का व्यवहार सुनिश्चित नहीं है। और गहराई में जाने पर पदार्थ के भीतर चैतन्यता का एहसास होने लगा। यद्यपि वैज्ञानिक इस शब्द का उपयोग नहीं कर रहे हैं, लेकिन परोक्ष रूप से उन्होंने चैतन्यता को स्वीकार लिया है। एक दिन आएगा जब ऋषियों की घोषणा उन्हें करनी पड़ेगी, असांकेतिक को जानकर, कण-कण में भगवान। तब उस अखण्ड बह्म का हर जगह ज्ञान हो सकेगा।

ऋषि इसे जानते हैं, किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में नहीं, स्वयं के भीतर डूबकर। विज्ञान प्रयोग करता है, धर्म योग पर जाता है। योग धर्म की विधि है, प्रयोग विज्ञान की विधि है। योग का अर्थ है अपने साक्षी में डूबना। देह से मन, मन से आत्मा और आत्मा से परमात्मा में जाना। यही सहज योग है। धन्यवाद!!

द्रष्टा एवं दृश्य का खेल

साधनपाद : 20

द्रष्टादृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्य।

द्रष्टा में तो शुद्ध चेतना ही बहती रहती है;
फिर भी मन की विकृतियों से वह देखा करती है।

साधनपाद के बीसवें सूत्र में बड़ी अनूठी बात महर्षि पतंजलि कहते हैं–

द्रष्टा में तो शुद्ध चेतना ही बहती रहती है, फिर भी मन की विकृतियों से वह देखा करती है। हमारे भीतर चैतन्य अपने शुद्ध रूप में विराजमान है, किन्तु जब वह संसार की तरफ देखता है तो मन के माध्यम से, भाव के माध्यम से, विचार के माध्यम से और फिर शरीर की इंद्रियों के माध्यम से। ये जो माध्यम हैं ये भ्रांति खड़ी कर देते हैं।

आपने कभी नदी में या स्वीमिंग पुल में स्नान करते हुए ख्याल किया होगा, नीचे तलहटी में कोई पत्थर पड़ा हुआ दिखाई दे रहा है, आप उसे उठाने की कोशिश करें, आपका हाथ कभी उस पत्थर के पास नहीं पहुंचेगा। उससे दूर, चार–छः इंच दूर, एक फुट दूर पहुंचेगा। जितना गहरा पानी होगा उतना ही वह पत्थर अपने स्थान से दूर दिखाई दे रहा होगा। क्यों? क्योंकि पानी के माध्यम से गुजरते हुए प्रकाश की किरणें मुड़ गईं, तिरछी पड़ रहीं हैं। पत्थर जहां है, वह हमें वहां दिखाई नहीं पड़ रहा। ठीक इसी प्रकार की घटना फिर हमारी आंख में घटती है। आंख के भीतर एक लेंस है, उस लेंस से प्रकाश की किरणें गुजरती हैं, मुड़ जाती हैं, फिर आंख के भीतर एक लिक्विड पदार्थ भरा हुआ है, उससे गुजरते हुए प्रकाश की किरण फिर मुड़ जाती हैं। जो हमें दिखाई दे रहा है, वह वास्तव में वहीं नहीं है, वैसा ही नहीं है जैसा कि हमें दिखाई दे रहा।

और जैसी घटना आंख के साथ घटती है, ठीक वैसी घटना अन्य इंद्रियों के साथ घटती है। हम सबको एक सा सुनाई नहीं देता। कभी आपने ख्याल किया होगा, आपको कोई संगीत की कैसेट बहुत अच्छी लगी, आपने अपने मित्र को दी कि बड़ा अद्भुत संगीत है, सुनना। दो–चार दिन बाद मित्र ने पटक दी लाकर, कहा कि क्या सड़ियल म्यूजिक सुनने को दिया है, यह भी

कोई संगीत है! कर्ण कटु आवाज से दुखी लगा। निश्चित रूप से आपके और आपके मित्र के कान भिन्न-भिन्न ढंग से सुन रहे हैं। वरना संगीत एक सा सुनाई पड़ना चाहिए था।

माताएं जानती हैं कि अगर उनके घर में चार बच्चे हैं, ऐसा कोई भोजन वे नहीं पका सकतीं जो चारों बच्चों को पसंद आ जाए। निश्चित रूप से प्रत्येक की जीभ भिन्न-भिन्न प्रकार से स्वाद लेती होगी। चार बच्चे कभी राजी नहीं हो सकते कि यह भोजन स्वादिष्ट है। किसी को वह स्वादिष्ट लग रहा है, किसी को वही खराब लग रहा है, किसी को बिल्कुल बेस्वाद लग रहा है। कोई उसे छूने को ही तैयार नहीं है, कोई कह रहा है कि इसकी खुशबु से ही उल्टी का मन होता है, खुशबू नहीं, बदबू है ये। उसी को कोई व्यक्ति खुशबु कह सकता है, कोई अन्य व्यक्ति बदबू कह सकता है। हमारी नाक जो सूचना भीतर ले जा रही है, मन उसे बदल दे रहा है।

और भीतर, इंद्रियों के भीतर विचारों का जगत, स्मृतियों का जगत, कल्पनाओं का जगत हमारा मन है, वह चीजों को बदल देगा। जब एक हिन्दू एक मुसलमान की तरफ देखता है तो वह वैसे ही नहीं देखता, जैसे एक हिन्दू की तरफ देखता है। बात बदल गई, आदमी तो आदमी है, दोनों एक से, लेकिन हमारे भीतर का विचार, हमारी कंडीशनिंग, हमारे संस्कार!

आप ट्रेन में यात्रा कर रहे हैं, आपके कंपार्टमेंट में सिर्फ एक आदमी बैठा है, आप उसका नाम पूछें। आप हिन्दू हैं और वह अपना नाम बताए कि मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है, आप जरा सतर्क हो जाएंगे कि मुसलमान है। हिन्दू को भय और खतरा पैदा हो जाएगा। अगर वह कहेगा कि मेरा नाम नारायण प्रसाद है, आप ज्यादा रिलैक्स होकर रात को सो पाते हैं।

छोटी-छोटी चीजें हमारी दृष्टि को बदल देती हैं और दृश्य को बदल देती हैं। फिर इन विचारों के और पीछे, भावनाओं का जगत है- हमारा हृदय। वह चीजों को और बदल दे रहा है। क्रोध में जैसी चीजें आपको दिखाई पड़ती हैं, वे सत्य नहीं हैं और प्रेम में जैसी दिखाई पड़ती हैं, वे भी सत्य नहीं हैं। एक युवक एक युवती के प्रेम में पड़ जाता है और उसे लगता है कि महासुंदरी, दुनिया की सबसे सुंदर यह लड़की उसे मिल गई। और उसके दोस्त मजाक उड़ा रहे हैं, घर के लोग परेशान हैं, परिवार के लोग परेशान हैं कि तुम्हें यही मिली थी... एक राक्षसी। लेकिन वह अभी प्रेमभाव में है, वह प्रेमभाव के माध्यम से देख रहा है। अभी उसे राक्षसी नहीं दिखाई पड़ेगी। जरा शादी हो जाने दो, हनीमून पूरा हो जाने दो, वह भी परिवार वालों के साथ राजी होगा कि आप लोग ठीक ही कह रहे थे। वह लड़की भी इस लड़के में देख रही है एक महाप्रतिभाशाली युवक, दुनिया का सबसे बुद्धिमान लड़का। जरा महीने-दो महीने बीत जाने दो तब पता चलेगा कि कहां के बुद्धू से हमारी शादी हो गई।

क्रोध में, लड़ाई में, झगड़े में, फिर हम दूसरी दृष्टि से देखेंगे, हमारी भावनाएं बदल गईं, वह व्यक्ति नहीं बदला, वह तो अभी भी वही का वही है, लेकिन हमारा हृदय बदल गया, भाव बदल गए। तो ये पर्त दर पर्त हैं, भीतर की जो चेतना है वह इन सब पर्तों के माध्यम से देखती है। सबसे पहले भावनाओं का झीना पर्दा है, उसके बाद विचारों, स्मृतियों, कल्पनाओं का पर्दा है, उसके और बाहर फिर शरीर की इंद्रियां हैं और फिर बाहर का जगत है वह भी बदल जाता है। वह वैसा ही नहीं दिखाई देता जैसा कि है। रात आप देखते हैं तारों को, एक भी तारा वहां नहीं

है, जहां आपको दिखाई पड़ रहा है। कभी हजारों–लाखों साल पहले वह तारा वहां था, कोई करोड़ साल पहले वहां था। आज है भी कि नहीं, ये भी हम नहीं कह सकते, लेकिन हमें दिखाई पड़ रहा है। क्योंकि उस तारे से हम तक प्रकाश पहुंचने में लाखों–करोड़ों वर्ष लगते हैं।

सूरज जब सुबह उगता है और आप कहते हैं कि सूर्योदय हो रहा है, वास्तव में सूर्योदय नौ–दस मिनट पहले हो चुका है। लेकिन सूरज इतनी दूर है कि वहां से रोशनी की किरण आने में हम तक नौ–दस मिनट लग जाते हैं। और रोशनी की रफ्तार बहुत तेज है, याद रखना, तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड। इस गति से प्रकाश हम तक आ रहा है। तो सूरज जहां हमें दिखाई पड़ रहा है। वह वहां है नहीं!

रात जो ग्रह–नक्षत्र दिखाई पड़ रहे थे, एक भी वहां नहीं हैं। हो सकता है इनमें से बहुत नष्ट हो चुके हों लाखों–करोड़ों वर्ष पहले। तो जगत के बारे में जो भी हमारा ज्ञान है, वह बहुत ही भ्रांतिपूर्ण है। भीतर की चैतन्यता तो अपने शुद्धतम रूप में मौजूद है, किन्तु जिस माध्यम से वह देखती है, वे माध्यम उसे विकृत कर देते हैं।

आप कभी एक छोटा सा प्रयोग करना, कांच की गिलास में आधा गिलास पानी भर कर, एक चम्मच उसमें डाल देना। वह चम्मच आपको तिरछी और टूटी हुई दिखाई पड़ेगी। यद्यपि आप भलीभांति जानते हो कि वह चम्मच टूटी हुई नहीं है, आप निकालकर देख लेना दुबारा फिर डालना, लेकिन दिखाई टूटी हुई पड़ेगी क्योंकि पानी से गुजरते हुए प्रकाश की किरणें मुड़ गईं, तिरछी हो गईं। चम्मच टूटी हुई दिखाई पड़ने लगी।

ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति परिपूर्ण जागृत हो जाता है, चेतना के परम रूप परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है, उसे भी अपने शरीर, मन, भाव का उपयोग करना पड़ता है और इसलिए वह भी जगत को भ्रांतिपूर्ण ही जान पाता है। यद्यपि भीतर उसने परम चैतन्य को जान लिया। पतंजलि कहते हैं, द्रष्टा में तो शुद्ध चेतना ही बहती रहती है। जब वह अपने साक्षी भाव में, अपनी समाधि में स्थित है तब वह अपने शुद्ध रूप परमात्मा में स्थित है, किन्तु जैसे ही वह शरीर और मन का उपयोग करेगा विकृतियां आ जाएंगी।

ओशो इसको समझाते हुए कहते हैं, ये हैं चार अवस्थाएं, तीन हैं असंतुलन की और चौथी है संतुलन की। पहली निश्चित है, दूसरी अनिश्चित है, तीसरी सांकेतिक है और चौथी सांकेतिक भी नहीं, अव्यक्त है और यह चौथी ही सबसे अधिक वास्तविक है। पहली सबसे अधिक वास्तविक मालूम पड़ती है तुम्हें, क्योंकि तुम जीते हो पहली में, दूसरी बहुत निकट मालूम पड़ती है, क्योंकि तुम जीते हो मन के पास, तीसरी बहुत दूर मालूम पड़ती है फिर भी तुम उसे समझ सकते हो कम से कम, चौथी तो बिल्कुल ही अविश्वसनीय मालूम पड़ती है, अनात्मा, ब्रह्म, परमात्मा– जो भी नाम तुम उसे दो, बहुत दूर मालूम पड़ता है, करीब–करीब असंभव सा जान पड़ता है। किन्तु पतंजलि कहते हैं कि वही सबसे ज्यादा सत्य है।

पतंजलि कहते हैं द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है, फिर भी मन की विकृतियों के माध्यम से वह देखा करता है और वह चौथी अवस्था, चाहे तुम उसे उपलब्ध भी हो जाओ, जब तक तुम देह में हो तब तक तुम्हें अपने अस्तित्व की बाकी तीन परतों का भी उपयोग करना होगा। बुद्ध भी जब

तुमसे बात करते हैं तो मन के द्वारा ही बात करनी पड़ती है, बुद्ध जब चलते हैं तो उन्हें शरीर के द्वारा ही चलना पड़ता है, लेकिन अब जब एक बार तुम जान लेते हो कि तुम मन के पार हो तो मन तुम्हें धोखा नहीं दे सकता। तुम इसका उपयोग कर सकते हो, तुम उसके द्वारा कभी भी उपयोग नहीं किए जाओगे, यही फर्क होगा।

ऐसा नहीं है कि बुद्ध मन का उपयोग नहीं करते, करते हैं। वे मन का उपयोग भलीभांति करते हैं, लेकिन मन तुम्हारा उपयोग करता है। ऐसा नहीं है कि बुद्ध देह में नहीं जीते हैं, वे जीते हैं, उसका उपयोग करते हैं, किंतु तुम खिसकते हो। देह तुम्हारी मालिक होती है और तुम उसके गुलाम होते हो। बुद्ध की अवस्था भिन्न है, बुद्ध होते हैं मालिक देह के और देह होती है उनकी गुलाम। एक समग्र क्रांति, एक पूर्ण रूपांतरण घटित होता है। जो ऊपर है वह नीचे चला जाता है और जो नीचे है वह ऊपर आ जाता है। सारी स्थिति पलट जाती है बुद्धत्व में, किन्तु फिर भी मन, हृदय, इंद्रियां अपनी विकृतियों की छाप छोड़ ही देंगे।

इस बात को सदा स्मरण रखना, बुद्ध मालिक हैं अपने मन के, अपनी इंद्रियों के, अपने शरीर के। साधारण व्यक्ति गुलाम है इनका। किन्तु फिर भी इस शरीर और मन का उपयोग तो करना होगा। हमारी भावनाएं चीजों को बदल देती हैं।

मैंने सुना है एक 25 वर्षीया कुंवारी लेडी डॉक्टर ने, अपने सुंदर युवक मरीज से पूछा, क्या आपके पास है एक सुलगता हुआ जिस्म, कंपकंपाते होंठ, थरथराता बदन, नशीली आंखे, श्वांस की तेज रफ्तार, लड़खड़ाती आवाज, खून में गर्मी, दिल की तेज धड़कन, कांपती जुबान और दिमाग पर छा रही एक मदहोशी सी है? यदि आप को यह सब हो रहा है तो पक्का समझिए कि आपको मलेरिया बुखार है। वह युवक कुछ और समझ रहा था। भावनाएं चीजों को बदल देंगी। डॉक्टर अपनी डाक्टरी भाषा में पूछ रही है, मरीज कुछ और समझ रहा है। हमारे विचार और भाव चीजों को बदल देते हैं। यहां तक कि हम स्वयं को भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाते। हमारे मन में अपनी ही एक छवि है जो कि सटीक छवि नहीं है।

मैंने सुना मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को कंधे पर लिए हुए सड़क पर जा रहा था बाजार में। सुंदर बेटा है उसका, लोग कहते हैं अरे! तुम्हारा बेटा बहुत सुंदर है। नसरुद्दीन कहता है 'दिस इज नथिंग, यू मस्ट सी हिज पिक्चर, कम टू माई हाउस आई विल शो यू द एलबम।' लोग कह रहे हैं बेटा बहुत सुंदर है, नसरुद्दीन कह रहा है कि अरे! ये कुछ भी नहीं है नालायक, तुम मेरे घर आओ इसकी फोटो मैं तुम्हें दिखाऊंगा। वह बहुत बढ़िया, बहुत सुंदर है।

हम सबके भीतर कहीं अपनी ही छवि, अपनी ही तस्वीर है। हमारा मन हमारा एलबम है और वह बड़ा ही भ्रांतिपूर्ण है। हमें स्वयं का ज्ञान भी सम्यक् रूप से नहीं हो रहा है, दूसरों का तो छोड़ो। परिपूर्ण जागृत अवस्था में ही यह संभव है। पतंजलि इस सूत्र में उसी की तरफ इशारा कर रहे हैं। अपने भीतर के शुद्ध चैतन्य में रमो, यही वास्तविक योग है। 'योगा' के नाम पर प्रचलित पी.टी. एक्सरसाइज में, शारीरिक व्यायाम में उलझे मत रह जाना। पतंजलि के नाम पर न जाने क्या-क्या सर्कस चल रहा है... सावधान!

धन्यवाद!!

इन्द्रियों का इन्द्रधनुष

साधनपाद : 21

इन्द्रियों का इन्द्रधनु

परमपुरुष द्रष्टा बनकर, सब में विहार करता है;
दृश्यों का अस्तित्व उसी के लिए सदा होता है।

साधनपाद के 21वें सूत्र में योग की दृष्टि, सांख्य की दृष्टि, भारतीय मनीषी की दृष्टि का शिखर आ जाता है। पतंजलि कहते हैं– तदर्थ एव दृश्यस्य आत्मा, दृश्य का अस्तित्व केवल द्रष्टा के लिए है। यह बात सुनने में जरा विचित्र सी लगती है कि दृश्य का अस्तित्व मात्र द्रष्टा के लिए होता है। कुछ वैज्ञानिक उदाहरणों से समझें। इंद्रधनुष में हमें सात रंग दिखाई देते हैं। क्या वास्तव में सूरज की किरण के सात रंग हैं? या आंख की वजह से हमें सात दिखाई देते हैं?

आज से पांच–सात हजार वर्ष पहले दुनिया से जो किताबें हमें मिली हैं, उनमें केवल तीन रंगों का वर्णन है। इसका अर्थ हुआ कि आज से पांच हजार साल पहले मनुष्य जाति को सिर्फ तीन रंग ही दिखाई देते थे। धीरे–धीरे हमारी आंख विकसित होती गई, अब हम सात रंग देखने लगे। अभी भी सभी लोग सात रंग नहीं देखते हैं। कुछ लोगों को लाल और हरा एक ही दिखाई देता है, कुछ लोगों को नीला और पीला एक ही दिखाई देता है, किसी को नीला, पीला और हरा तीनों एक ही दिखाई देते हैं। कलर ब्लाइंडनेस.... रंग के प्रति हम अंधे हैं।

ठीक यही बात हमारी अन्य इंद्रियों के बारे में भी सच है। हम सबको एक सा सुनाई नहीं देता, न केवल इतना, आपके दोनों कान भी अलग–अलग सुनते हैं। यदि आप कान के डॉक्टर से ऑडियोमेट्री टेस्ट करवाएं तब आपको पता चलेगा कि आपका एक कान बहरा है, दूसरे की तुलना में। एक कान में 'हाई–फ्रिक्वेंसी' की आवाज ठीक से सुनाई पड़ती है, एक में 'लो–फ्रिक्वेंसी' ठीक से सुनाई पड़ती है। लेकिन आपको सामान्यतः ठीक से पता नहीं चलता है। यह तब पता चलता है जब बात बहुत बिगड़ जाती है, कोई कुछ बोल रहा हो और आपको सुनाई न पड़े। बार–बार आपको पूछना पड़े क्या... क्या कहा...? तब समझ में आता है कि अरे

मैं बहरा हो गया हूं! लेकिन 25 साल की उम्र के बाद से कान की क्षमता प्रतिदिन कम होती जाती है, आप धीरे-धीरे बहरे होते जाते हैं। मैंने सुना है एक बहरे आदमी के बारे में... उसने अपने बगल में खड़े आदमी से कहा कि क्षमा करें, आप क्या कह रहे हैं मुझे सुनाई नहीं पड़ रहा है। आप क्या बोल रहे हैं, थोड़ा जोर से बोलिए। उस आदमी ने कहा मैं तो बोल ही नहीं रहा हूं, मैं तो पान चबा रहा हूं।

हमारी सभी इंद्रियां हमें धोखा दे जाती हैं। वास्तव में बाहर आवाज है कि नहीं, यह हमारा कान तय करता है। घोड़े हमसे बहुत ज्यादा तीव्र सुनते हैं, बहुत दूर की सुनते हैं। कुत्ते हमसे बहुत अच्छे ढंग से सूंघ सकते हैं। सुगंध के मामले में तो हमारी नाक बहुत ही कमजोर है। कहीं कोई हत्यारा किसी की हत्या कर गया है, एक सप्ताह बाद पुलिस वाले अपना कुत्ता लेकर वहां आते हैं और वह कुत्ता सूंघ कर उस आदमी का पीछा कर लेता है कि वह हत्यारा कहां गया और उसे पकड़ लेता है। हम सामने बैठे आदमी की गंध से उसे नहीं पहचान सकते और एक सप्ताह बाद भी इस कुत्ते ने ट्रेस आउट कर लिया कि हत्यारा आदमी कहां गया, किस दिशा में गया।

निश्चित रूप से हमारी इंद्रियां जो सूचनाएं हमें दे रही हैं, केवल वहीं तक जगत सीमित नहीं है। ये जो हम देख रहे हैं, सुन रहे हैं, जो छू रहे हैं उसमें हमारी इंद्रियों ने चीजों को बदल दिया है। हमारी इंद्रियों की सीमा है। हो सकता है हमें इंद्रधनुष में, आज से सौ साल बाद, दो सौ साल बाद, सात की जगह नौ रंग दिखने लगें। आज हम जिसे 'इन्फ्रारेड रेज' कहते हैं, लाल रंग से भी नीचे का रंग और 'अल्ट्रावॉयलेट रेज' बैगनी रंग से ऊपर का रंग, हो सकता है सौ-दो सौ साल बाद मनुष्य को वह दिखाई पड़ने लगे। तब हम कहेंगे कि इंद्रधनुष में नौ रंग होते हैं। कौन सी बात सच है? वे जो दूसरे पशु-पक्षी हैं, प्राणी हैं, उनको इन्द्रधनुष कैसा दिखाई पड़ता है, यह हम कभी भी नहीं जान सकेंगे। यह बिल्कुल व्यक्तिगत मामला है।

दृश्य का अस्तित्व द्रष्टा के लिए है... ये मैंने स्थूल उदाहरण दिए, बाहर के पदार्थ के जगत के। मेरी दो आंखें हैं, किताब भी पढ़ लेता हूं और दूर बैठे लोगों को भी देख लेता हूं, लेकिन जांच कराने से पता चला कि मेरी एक आंख से दूर का ठीक दिखाई पड़ता है, मेरी दूसरी आंख से पास का ठीक दिखाई पड़ता है। दोनों मिला कर काम चल रहा है। पढ़ते भी बन जाता है, दूर का भी दिखाई पड़ रहा है। मैं अगर जांच न करवाता तो यह कभी पता नहीं चलता कि दोनों आंखें खराब हैं। एक पास का नहीं देख पाती, एक दूर का नहीं देख पाती। हमारी इंद्रियां जो सूचना हमें दे रही हैं यह स्थूल उदाहरण हुआ।

अब जरा भीतर की गहरी और सूक्ष्म बात को समझना। भीतर जो द्रष्टा आत्मा है, जब वह रस लेती है बाहर के दृश्य में तब उसके लिए दृश्य उत्पन्न होता है। जब यह द्रष्टा चेतना स्वयं में लवलीन हो जाती है तब दृश्य बचता ही नहीं। यह बात सुनने में थोड़ी विचित्र लगेगी, लेकिन अगर पहली स्थूल बात समझ में आ गई तो दूसरी को समझना भी सरल होगा। दृश्य का अस्तित्व मात्र द्रष्टा के लिए है। यदि द्रष्टा स्वयं में लीन हो गया, समाधिस्थ हो गया तब बाहर का दृश्य बचा ही नहीं। ओशो ने इसको बहुत सुंदर उपमा से समझाया है, सुनो वे क्या कहते हैं- दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए, यह योग का या वेदान्त का चरम शिखर है।

पतंजलि कहते हैं, दृश्य का अस्तित्व होता है मात्र द्रष्टा के लिए। जब द्रष्टा खो जाता है तो दृश्य भी खो जाता है, क्योंकि वह तो केवल द्रष्टा के मुक्त होने के लिए ही था। जब मुक्ति घट जाती है तो उसकी आवश्यकता ही नहीं बचती। यह बात बहुत से प्रश्न उठा देगी, क्योंकि बुद्धपुरुष लिए दृश्य तिरोहित हो चुका, लेकिन तुम्हारे लिए वह अभी भी बचा है।

एक फूल है... तुममें से कोई जब बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है, उसके लिए वह फूल तिरोहित हो चुका, लेकिन शेष लोगों के लिए वह फूल अभी भी है। तो यह कैसे संभव है कि किसी के लिए वह तिरोहित हो गया और किसी के लिए वह बना हुआ है। यह बिल्कुल ऐसा ही है, जैसे रात तुम सब सो जाते हो और स्वप्न देखने लगते हो, फिर एक आदमी जाग जाता है, उसकी नींद टूट जाती है, उसका स्वप्न समाप्त हो जाता, लेकिन शेष लोग अभी भी स्वप्न में डूबे हुए हैं, उनके स्वप्न जारी हैं। एक व्यक्ति के स्वप्न तिरोहित होने की घटना से शेष सबके स्वप्न टूटने में किसी प्रकार की मदद नहीं मिलती। वे चलते ही रहते हैं। इसलिए बुद्धत्व व्यक्तिगत होता है। एक व्यक्ति जाग जाता है, शेष सब अपने–अपने अज्ञान में जिए चले जाते हैं।

वह जागा हुआ व्यक्ति जागने में दूसरों की मदद कर सकता है। तुम अपनी नींद से बाहर आ सको, उसके लिए वह सहायता के उपाय तुम्हारे चारों ओर निर्मित कर सकता है। लेकिन जब तक तुम अपनी नींद से बाहर नहीं आ जाते तब तक तुम्हारे स्वप्न चलते ही रहेंगे। पतंजलि का सूत्र बड़ा अद्‌भुत है, दृश्य का अस्तित्व होता है, मात्र द्रष्टा के लिए। पतंजलि की यह बात बहुत गौर से पकड़ना, बहुत सहानुभूतिपूर्वक समझना, तभी यह बात समझ में आ सकेगी वरना बात कठिन हो जाएगी। बाहर के उदाहरण से समझना, बाहर जो भी हम देखते हैं, उसमें कितना तथ्य है, कितना हमने जोड़–घटा दिया, कैसे उसको हमने परिवर्तित कर लिया, उस पर जरा गौर करना।

सुनो, मैं यह एक लतीफा पढ़ रहा था। कैलीफर्निया की सड़क पर एक साहसी व्यक्ति ने भौंकते हुए एक खतरनाक कुत्ते से किसी स्त्री की बमुश्किल प्राण रक्षा की। अखबार में समाचार छपा, 'बहादुर कैलीफोर्नियन द्वारा एक अबला की प्राण रक्षा'। दूसरे दिन उस आदमी ने न्यूजपेपर के ऑफिस में फोन पर सूचित किया कि क्षमा करें, मैं कैलीफोर्नियन नहीं हूं। अखबार वालों ने क्षमा याचना सहित पुनः अपनी भूल सुधारी। लिखा, साहसी अमेरिकन ने जान दांव पर लगाकर युवती को बचाया। तीसरे दिन उस व्यक्ति ने बताया कि माफ कीजिए मैं अमेरिकन भी नहीं, मैं तो एक पाकिस्तानी पर्यटक हूं। समाचारपत्र ने खबर पुनः इस प्रकार प्रकाशित की। अब मुस्लिम आतंकवादी द्वारा मासूम अमेरिकन कुत्तों पर भी हमला जारी। सारी खबर बदल गई। अगर वह बचाने वाला अमेरिकन है तो अमेरिकन अखबार उसे अलग ढंग से छापेंगे कि युवती की प्राण रक्षा की और अगर वह पाकिस्तानी है तो वे कहेंगे कि मासूम कुत्तों पर भी हमला शुरू। बेचारे अमेरिकन कुत्ते! पूरी बात ही बदल गई।

ऐसा नहीं सोचना कि कोई जानबूझकर कर रहा है, ऐसा निरंतर हमारे साथ हो रहा है। हम कभी ख्याल नहीं करते, कैसे चीजें बदल जाती हैं। दृश्य का अस्तित्व द्रष्टा के लिए है। मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन से गांव का एक मित्र मिलने आया। वह व्यक्ति पंद्रह–बीस साल बाद

गांव से आया था। मुल्ला ने कहा अरे! मैंने तो आपके बारे में सुना था कि पिछले वर्ष आपकी मृत्यु हो गई। उस आदमी ने कहा कि अब तुम देख ही रहे हो मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं भला–चंगा, तुमने कोई अफवाह सुन ली होगी। नसरुद्दीन ने कहा नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। जिस व्यक्ति ने मुझे सूचना दी थी वह पढ़ा–लिखा, पी.एच.डी. है। तुम गांव के गंवार, तुम्हारा क्या भरोसा? तुझ अनपढ़ की बात मानूं कि उस पढ़े–लिखे डॉक्टर की बात मानूं। तुम्हारी तुलना में वह आदमी ज्यादा भरोसेमंद है।

हम अपने–अपने निजी सपनों में जीते हैं। हर व्यक्ति अपने सपनों में जी रहा है। तुम जिस जगत को देख रहे हो वह केवल तुम्हारे लिए ही है। तुम यह मत सोचना कि दूसरे लोग भी उसी दुनिया में जी रहे हैं जिस दुनिया में तुम जी रहे हो। इसलिए तो दुनिया में इतने लड़ाई–झगड़े होते हैं। एक ही परिवार में रहने वाले चार लोग चैन से नहीं रह पाते। पति–पत्नी निरंतर कलह कर रहे हैं, बाप–बेटा, कि भाई–भाई, कि पड़ोसी... निरंतर कलह चल रही है और कारण?... कोई किसी की बात समझ नहीं पा रहा, क्योंकि हम सब अपने–अपने निजी सपनों की दुनिया में जी रहे हैं। एक ऑब्जेक्टिव वर्ल्ड नहीं है, जिसमें हम सब जी रहे हैं। यदि हम सब एक ही दुनिया के वासी होते तब हम एक–दूसरे की बात बड़ी आसानी से समझ पाते। लेकिन, वास्तव में हम एक दुनिया के वासी नहीं हैं। हमारे विचार, हमारी धारणाएं, हमारी कल्पनाएं, हमारे अनुभव, हमारी स्मृतियां, वे सब चीजों को रंग दे रहे हैं।

हमारी व्यक्तिगत दुनिया है। उसमें हम दूसरे को पार्टिसिपेट करने के लिए नहीं बुला सकते, दूसरा उसमें भागीदार नहीं हो सकता। उसकी अपनी निजी दुनिया है, उसके अपने निजी सपने हैं, हम उसके सपनों में नहीं जा सकते, वह हमारे सपनों में नहीं आ सकता। और इसलिए ज्ञानी कहते हैं कि संसार माया है। और जिस दिन साक्षी चेतना स्वयं में विश्राम करती है, उस दिन यह माया खो जाती है। इस माया का अस्तित्व उस मायावी व्यक्ति के लिए ही है।

मैंने सुना है नसरुद्दीन से किसी ने कहा कि दो अंगुलियों के बीच में खाली स्थान क्यों है और परमात्मा ने हमें दो हाथ क्यों दिए हैं? नसरुद्दीन ने कहा, अरे तुम्हें इतना भी नहीं मालूम, अंगुलियों के बीच में जगह इसलिए है ताकि सिगरेट को पकड़ सकें और दो हाथ परवरदिगार ने इसलिए दिए हैं कि एक हाथ से सिगरेट पिओ और दूसरे हाथ से शराब का गिलास उठाओ। शराबी की अपनी नजर है। आपने शायद कभी ऐसा न सोचा हो! वह धूम्रपान करने वाला, उसको एक ही बात समझ में आती है कि दो अंगुलियों के बीच में स्पेस क्यों? अगर न होता तो सिगरेट कैसे पकड़ते? तो उस रहमान, करुणावान की बड़ी कृपा है। दो–दो हाथ दिए, एक से सिगरेट पिओ और एक से शराब का गिलास पकड़ो।

यह व्यक्ति अपनी निजी दुनिया में जी रहा है। यह जिस तरह चीजों को देख रहा है, वह सत्य नहीं है। इन उदाहरणों से भीतर की सूक्ष्म बात को पकड़ना कि संसार है ही नहीं, वह सिर्फ द्रष्टा के लिए है ताकि द्रष्टा संसार में उलझ कर, दुख पाकर जाग जाए, इस स्वप्न को भंग कर दे, बस। जैसे ही वह स्वप्न से मुक्त हुआ, संसार विदा हुआ। कहीं कोई संसार नहीं है, केवल परमात्मा ही है। उस परमात्मा को जानना ही सहजयोग है। धन्यवाद!!

मुक्तपुरुषों के लिए संसार स्वप्नवत्

साधनपाद : 22

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।

मुक्तपुरुष के लिए दृश्य का कोई अर्थ नहीं है;
लेकिन अन्यों के कारण यह बिल्कुल व्यर्थ नहीं है।

पिछले सूत्र में पतंजलि ने कहा कि संसार स्वपनवत् है। आज साधनपाद के 22वें सूत्र में वे एक और बड़ी महत्वपूर्ण घोषणा करते हैं। कहते हैं, मुक्तपुरुष के लिए दृश्य का कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अन्यों के कारण यह बिल्कुल व्यर्थ नहीं है। बड़ी अद्भुत बात कही, लोग सदा दो अतियों पर डोलते रहे हैं। एक संसारवादी हैं भौतिकवादी, वे कहते हैं केवल संसार ही सत्य है, ब्रह्म और परमात्मा जैसी कोई चीज नहीं और दूसरे अध्यात्मवादी हैं, दूसरी अति पर, वे कहते हैं ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या।

पतंजलि बड़ा अद्भुत सूत्र दे रहे हैं, वे कह रहे हैं, वह व्यक्ति जो जाग गया, उसके लिए तो संसार व्यर्थ हो गया। जो व्यक्ति जाग गया, जिसके स्वप्न टूट गए वह व्यक्ति तो तिरोहित हो गया, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वप्न की कीमत नहीं है। यह बिल्कुल व्यर्थ नहीं है। वे लोग जो सो रहे हैं सपनों में, उनके लिए तो सपने मायने रखते हैं, सपने का अर्थ उनके लिए है, उनका जीवन तो उन्हीं सपनों पर केंद्रित है। ओशो ने इसकी बड़ी सुंदर व्याख्या की है, सुनो –

पतंजलि कहते हैं, यद्यपि दृश्य उसके लिए मृत हो जाता है जिसने मुक्ति पा ली, फिर भी दूसरों के लिए वह जीवित रहता है, क्योंकि वह दृश्य सर्वनिष्ठ होता है। भारत में हमने स्वप्न और तुम्हारी तथाकथित वास्तविकता के बीच एक भेद किया है और वह भेद यह है कि स्वप्न निजी वास्तविकता है और जिसे हम वास्तविकता कहते हैं, संसार कहते हैं, वह एक सार्वजनिक स्वप्न है। बस यही भेद है, जब तुम स्वप्न देखते हो तो निजी संसार के स्वप्न देखते हो, रात में तुम अपने व्यक्तिगत संसार में जीते हो, तुम और किसी को अपने स्वप्न में साझीदार होने के लिए बुला नहीं सकते। तुम्हारा निकटतम मित्र, तुम्हारी पत्नी या तुम्हारी प्रेयसी भी बहुत

दूर हैं। जब तुम स्वप्न देख रहे हो तब तुम बिल्कुल अकेले ही स्वप्न देख रहे हो, तुम किसी को उसमें आमंत्रित नहीं कर सकते, वह तुम्हारा एकदम निजी संसार है। और यह बाहर का संसार क्या है? भारत में हमने इस संसार को स्वप्नवत् कहा है, यह एक सामूहिक स्वप्न है। हम सब इकट्ठे एक साथ स्वप्न देख रहे हैं, क्योंकि हमारे मन एक ही ढंग से काम कर रहे हैं।

कभी नदी पर जाओ; अपने साथ एक सीधी छड़ी ले जाना। तुम जानते हो कि छड़ी सीधी है। उसे नदी में डुबाना और तत्क्षण तुम देखोगे कि वह टेढ़ी हो गई, मुड़ गई। बाहर निकालना उसे, तुम देखोगे कि अरे वह तो सीधी ही है, फिर पानी में डालना वह फिर मुड़ी दिखाई देगी। अब तुम भलीभांति जानते हो कि छड़ी सीधी ही रहती है, किन्तु तुम्हारे मन का ढंग और प्रकाश किरणों का व्यवहार एक धोखा निर्मित करता है। एक भ्रम खड़ा करता है कि छड़ी मुड़ गई, तुम जानते हो कि वह सीधी है तब भी पानी के भीतर वह मुड़ी दिखाई देती है। तुम्हारा ज्ञान काम न आएगा, तुम अच्छी तरह, खूब अच्छी तरह जानते हो कि वह मुड़ी हुई नहीं है, लेकिन वह दिखती है, मुड़ी हुई। क्योंकि आंखो का और प्रकाश की किरणों का व्यवहार ऐसा है कि एक भ्रम, इल्यूजन निर्मित हो जाता है। फिर अपने कुछ मित्रों को लेकर जाना और तुम सभी एक साथ देखोगे कि वह मुड़ी हुई है। यह सामूहिक भ्रम है, इसी तरह पूरा संसार एक सामूहिक भ्रम है।

पतंजलि ने यह अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण घोषणा की कि जिसे हम स्वप्न कहते हैं, वह हमारा निजी स्वप्न है, और जिसे हम बाहर का तथ्य कह रहे हैं, सत्य कह रहे हैं, वह जगत एक कॉमन ड्रीम, एक सामूहिक स्वप्न है। हम संग मिल–जुलकर उसे देख रहे हैं, हम सब उसमें भागीदार हैं। अपने निजी स्वप्न में हम किसी को भागीदार नहीं बना सकते।

मुल्ला नसरुद्दीन को मछली मारने का शौक था। अकसर मछली मारने जाया करता था। सपने में भी मछली मारने जाया करता था। एक दिन वह अपने मित्र चंदूलाल को बता रहा था कि कल रात गजब हो गया, सपने में इतनी बड़ी–बड़ी मछलियां पकड़ीं, कभी देखी भी नहीं खुली आंखो से तो! काश किसी दिन खुली आंख से ये मछलियां पकड़ में आ जाएं! अद्‌भुत सपना कल मैंने देखा, रंग–बिरंगी, चमकीली मछलियां, दस–दस, बारह–बारह फुट की, तीन चार आदमियों ने मिलकर उठाया तब उठा पाए।

चंदूलाल ने कहा यह तो कुछ भी नहीं, कल मैंने तो और गजब का सपना देखा। मेरे घर में मिस इंडिया और मिस वर्ल्ड दोनों पहुंच गईं। दोनों ने मुझे प्रेम निमंत्रण दिया। मैं था घर में अकेला और दो–दो सुंदरियां वहां, तुम सोच ही सकते हो कैसा अद्‌भुत आनंद रहा होगा।

नसरुद्दीन एकदम नाराज हो गया, उसने कहा हद कर दी, जब दो–दो सुंदरियां वहां मौजूद थीं तो क्या तुम मुझे फोन करके नहीं बुला सकते थे।

चंदूलाल ने कहा भैया किया था फोन, तुम्हारी मां ने जवाब दिया कि तुम मछली मारने तालाब पर गए हो।

चुटकुलों में तो ठीक है, वास्तव में हम स्वप्न में किसी को निमंत्रित नहीं कर सकते। सपने हमारे निजी हैं, बिल्कुल निजी हैं। यह जो बाहर के जगत में हम देख रहे हैं उसमें बहुत कुछ सपनों का प्रोजेक्शन है, प्रक्षेपण है। हमने अपने विचार, अपनी धारणाएं, अपने मंतव्य, अपनी

कल्पनाएं, अपने अतीत की स्मृतियों के अनुभव, वे सब प्रक्षेपित कर दिए हैं और उस प्रक्षेपण के माध्यम से हम देख रहे हैं। इसलिए हर व्यक्ति बाहर के कॉमन ड्रीम में थोड़ा-थोड़ा भिन्न दिखता है। मैं पढ़ रहा था एक हलवाई ने अपनी प्रेमिका के लिए कविता लिखी है। अब हलवाई का दिमाग कैसा काम करेगा, तुम समझ सकते हो। उसने लिखा है अपनी प्रेमिका के लिए-

मक्खन सी देह, मलाई सा रंग, मक्खन सी देह मलाई सा रंग, मन खोया-खोया है
मक्खन सी देह, मलाई सा रंग, मक्खन सी देह मलाई सा रंग, मन खोया-खोया है
तुम्हारे रूप की चाशनी में मैंने तन को डुबोया है।
जैसे जलेबी को डुबोते हैं चाशनी में। बस ऐसा ही मैं डूब गया हूं।

अब निश्चित रूप से ऐसी कविता कोई हलवाई ही लिख सकता है, तुम्हें कभी ख्याल भी नहीं आएगा कि प्रेम की ऐसी उपमा भी हो सकती है। लेकिन उपमा जिस किसी ने भी दी है उसके व्यक्तिगत, निजी जीवन से संबंधित हैं। उसके निजी ड्रीम प्रक्षेपित हो गए हैं। तो हम जिसे कॉमन ड्रीम कह रहे हैं, उसमें कुछ हिस्सा कॉमन है, कुछ हिस्सा प्रोजेक्शन है हमारा।

हमारे मन के भीतर जो प्रोजेक्टर है, उसे लिए-लिए हम चारों तरफ फिर रहे हैं, और जहां हम जाते हैं, वहां प्रोजेक्ट करके देखते हैं। इसलिए ऐसा मत समझना कि बाहर की दुनिया में हम एक ही दुनिया के निवासी हैं, हम अलग-अलग अपने-अपने संसार में जी रहे हैं।

मैंने सुनी है एक और घटना नसरुद्दीन के जीवन की, एक दिन उसकी पत्नी से खूब झगड़ा हो गया, पत्नी ने बेलन फेंक कर मारा, नसरुद्दीन के पैर में जाकर लगा और पैर की एक हड्डी टूट गई। अस्पताल में भर्ती करना पड़ा, फ्रैक्चर हो गया। नसरुद्दीन के बगल में जो आदमी लेटा हुआ था, दूसरा मरीज, उसके दोनों पैरों की हड्डियां टूटी हुई थीं। नसरुद्दीन ने पूछा, क्यों भाई तुम्हारी दो-दो बीवियां हैं क्या? अब कोई और ऐसा नहीं सोच सकता। नसरुद्दीन ही सोच सकता है, उसका अनुभव, उसका प्रोजेक्शन। मेरी एक बीबी है, मेरी एक टांग टूटी, इसकी दो टांगें टूटी हैं, दो-दो बीवियां होंगी। बाहर जो जगत हम देख रहे हैं, उसमें हमारी धारणाओं का प्रोजेक्शन बहुत ज्यादा है। एक प्रोफेसर ने अपने नौकर से कहा कि देखो रामू, बाहर जाओ और उस भिखारी को मना करो, उससे कहो कि मैं घर में नहीं हूं। रामू ने कहा कि हुजूर मैं उससे तीन-चार बार कह चुका हूं कि आप घर पर नहीं हैं, लेकिन वह मानता ही नहीं है मेरी बात। प्रोफेसर को गुस्सा आया; उसने कहा कि मैं खुद जाकर कहता हूं कि मैं घर में नहीं हूं! तुम अनपढ़ गंवार, तुम्हारी बात वह नहीं सुनता, मुझ प्रोफेसर की तो सुनेगा न, मेरी बात तो विश्वसनीय है। प्रोफेसर अपनी दुनिया में जी रहा है।

प्रोफेसर की पत्नी ने एक दिन आकर बताया कि तुम्हें पता है, अपना मुन्ना चलना सीख गया है! प्रोफेसर ने अपनी किताब से आंख उठाई और कहा कि अच्छा! कब से? पत्नी ने कहा वह पिछले तीन महीने से चल रहा है। प्रोफेसर ने कहा मर गया, अब तो वह बहुत दूर निकल गया होगा! सबकी अपनी-अपनी दुनिया है।

एक और अद्भुत लतीफा मैंने सुना है, अकसर मुझे लतीफों पे हंसी नहीं आती, मगर इस लतीफे पर आ जाती है। वैसे आप देख रहे हैं मैं कितना गंभीर रहता हूं, कभी हंसता नहीं हूं!

मुल्ला नसरुद्दीन एक कार पार्किंग प्लेस में मैनेजर का काम करता था। कार पार्किंग करवाता लोगों से, उनसे पैसे वसूलता। एक दिन एक आदमी वहां बड़ी विचित्र हरकत कर रहा था, एक दूसरे आदमी ने आकर नसरुद्दीन से पूछा कि वह आदमी पागल है क्या? वह कैसे चल रहा है, विचित्र ढंग से खड़ा है, ऐसे जैसे कि कार चला रहा हो। बिना कार के ऐसे ही सड़क पर खड़ा है, एक पैर ऐक्सीलरेटर पर और एक क्लच पर रखे हुए है और हाथ जैसे कि स्टीयरिंग घुमा रहा हो, कभी बैक मिरर में देखता है, कभी पीछे मुड़कर देखता है। तो किसी अन्य व्यक्ति ने नसरुद्दीन से पूछा कि ये आदमी पागल है क्या? ये कैसी हरकत कर रहा है? नसरुद्दीन ने कहा चुप बिल्कुल बोलना मत, उसे पकड़कर किनारे ले गया और कहा कि वह पहले बहुत अमीर था, फिर अचानक शेयर मार्केट डाउन हुआ तो दिवालिया हो गया है। उसकी कार बिक गई, कार का बड़ा शौकीन था। रोज यहां आता था, अपनी कार पार्किंग करता था और फिर बाजार सामान खरीदने जाता था। अब बेचारे के पास कार नहीं है तो पगला गया है, दिवालिया हो गया है, कुछ नहीं है उसके पास। वह कल्पना में अभी भी कार चला रहा है, पार्किंग कर रहा है।

उस आदमी ने नसरुद्दीन से कहा कि भलेमानुष जाकर उसे मना करो, उसको समझाओ कि कोई कार–वार नहीं है, वह क्या पार्क कर रहा है यहां पर। नसरुद्दीन ने कहा खबरदार, उसको ये बात मत बताना, क्योंकि मैं रोज उसकी कार पार्किंग के 20 रुपए वसूलता हूं। करने दो उसे पार्क।

हमें हंसी आएगी उसपर, कार पार्किंग वाले पर, लेकिन तुम देखना, करीब–करीब वही स्थिति हम सब की है। लेकिन यह कार पार्किंग भी बिल्कुल व्यर्थ नहीं है, नसरुद्दीन को भी बीस रुपए मिलते हैं। इसलिए पतंजलि कह रहे हैं कि मुक्तपुरुष के लिए दृश्य का कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अन्यों के कारण यह बिल्कुल व्यर्थ नहीं है। नसरुद्दीन के लिए यह बिल्कुल व्यर्थ नहीं है। एक कॉमन ड्रीम में हम जी रहे हैं और जो व्यक्ति जाग गया, वह इस बात के प्रति सचेत हो जाता है। उसके स्वयं के स्वप्न तो भंग हुए, किन्तु वह जानता है कि अन्य लोग अभी भी स्वप्न में जी रहे हैं। और अगर उन्हें किसी भी प्रकार की मदद पहुंचानी है तो उनके सपनों को समझना होगा, सहानुभूतिपूर्वक। अगर कोई आदमी यहां चिल्लाने लगे कि मैं पानी में डूब रहा हूं, कोई मुझे बचाओ, तो हम क्या करेंगे? अगर हम उससे कहें कि यहां कोई पानी–वानी नहीं है, कोई तालाब–नदी नहीं है, तुम कहां डूब रहे हो? यहां हॉल के अंदर फर्श पर बैठे हो! लेकिन वह आदमी चिल्ला रहा है कि मैं मरा, अब तो मेरे नाक में पानी घुसने लगा, अब तो श्वास भी नहीं ले पा रहा हूं, दम घुट रहा है। उससे यह कहने से फायदा नहीं है कि यहां नदी नहीं है और पानी नहीं है, उसके लिए कुछ उपाय करना पड़ेगा। उसको हाथ पकड़कर, धक्का मारकर उस नदी के बाहर निकालना पड़ेगा जो है ही नहीं। बुद्धपुरुष को ऐसे बहुत से काम करने पड़ते हैं, बिल्कुल फिजूल में। उनके लिए फिजूल है, लेकिन दूसरों के लिए सार्थक है।

इस बात पर खूब गौर करना– माना कि जगत असत्य है, उसके लिए जो जाग गया। जो सोए हुए हैं, उनके लिए सत्य है और अगर उन्हें जागने में किसी भी प्रकार की सहायता पहुंचानी है तो उनके स्वप्नों के माध्यम से ही पहुंचाई जा सकती है। यह सूत्र अपूर्व है। धन्यवाद!!

संसार एक दर्पण

साधनपाद : 23

स्वस्वामीशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिर हेतुः संयोगः।

साथ–साथ होता है द्रष्टा, और दृश्य का भाव;
जिससे हम पहचान सकें, इनका सही स्वभाव।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू एक दिन बड़े विचित्र ढंग से अपने घर में पढ़ाई कर रहा था। वह दर्पण के सामने किताब को उलटा खोलकर दर्पण में झलक रहे किताब के प्रतिबिंब को पढ़ने की कोशिश कर रहा था। दर्पण में प्रतिबिंब उलटा बनता है। बड़ा कठिन काम है, उलटी लिखाई को पढ़ना। नसरुद्दीन ने पूछा कि बेटा यह क्या कर रहे हो? फजलू ने कहा कि मेरे कॉलेज के प्रोफेसर ने कहा है कि आज इस टॉपिक का रिविजन करके आना। मैं रिविजन कर रहा हूं।

पतंजलि कहते हैं यह संसार रिविजन के लिए ही है। यह द्रष्टा दृश्य में स्वयं को देख पाता है। यह संसार एक दर्पण की भांति है, यद्यपि पढ़ना बड़ा कठिन है क्योंकि उसमें हम ही विपरीत होकर नजर आ रहे हैं। समझना बड़ा मुश्किल है, सौभाग्यशाली हैं वे जो समझ लें। साधनपाद के 23वें सूत्र में पतंजलि कहते हैं–

साथ–साथ होता है द्रष्टा और दृश्य का भाव,
जिनसे हम पहचान सकें इनका सही स्वाभाव।

यह संसार एक ट्रेनिंग स्कूल है, यह एक विश्वविद्यालय है। ओशो कहते हैं कि यह शब्द विश्वविद्यालय, सच पूछो तो पूरे विश्व के लिए लागू होना चाहिए, यूनिवर्सिटी को विश्वविद्यालय कहना ठीक नहीं। यह पूरा यूनिवर्स ही एक विश्वविद्यालय है। हम यहां केवल सीखने आए हैं और सीख भी बड़ी छोटी है। दर्पण में अपने को देखकर हम अपने में वापस लौट आएं, इतनी ही सीख है, स्वयं में स्थित हो जाएं। लेकिन और कोई उपाय नहीं है, दर्पण के बिना ये न होगा। हम सीधे–सीधे अपने पर वापस न लौट पाएंगे। इसलिए संसार की इतनी भटकनें

जरूरी हैं। एक बड़ा सुंदर गीत मैं पढ़ रहा था–

मेरी भूलों से मत उलझो, जनम–जनम का मैं अज्ञानी,
कांटो पर निज राह बनाकर मैंने उस पर चलना सीखा,
श्वासों पर निश्वास बनाकर मैंने उस पर पलना सीखा।
गलना सीखा मैंने निशिदिन उन आंखों का पानी बनकर
अपने घर में आग लगाकर मैंने उसमें जलना सीखा,
मुझे नियति ने दे रखी है पागलपन से भरी जवानी,
मेरी भूलों से मत उलझो, जनम–जनम का मैं अज्ञानी।

संसार में अज्ञानी होकर हम आते हैं ताकि हम ज्ञानी होकर वापस जा सकें। और कोई उपाय नहीं है, विपरीत का उपयोग करना होगा। अज्ञान से ही ज्ञान निकलेगा, रात के गर्भ से ही सूर्योदय होगा।

लगातार मैं पीता जाता, भरता जाता मेरा प्याला,
मैं क्या जानूं क्या है अमृत, क्या जानूं क्या यहां हलाहल
खारा–खारा नीर सागर का, मीठा–मीठा है गंगाजल।
सुनने को तो सुन लेता हूं कड़वे–मीठे बोल जगत के
तड़प–तड़प उठती है बिजली, बरस–बरस पड़ते हैं बादल,
कौन पिलाने वाला बोलो, कौन यहां पर पीने वाला,
लगातार मैं पीता जाता, भरता जाता मेरा प्याला।

बेहोशी की शराब, मूर्च्छा की शराब हम इस संसार में पीते हैं। वह भी एक अनिवार्य हिस्सा है। गहरी नींद में हम सो जाते हैं ताकि जागरण घट सके। गहन अंधकार से गुजरना होता है ताकि प्रकाश को पहचान सकें। यह सब ट्रेनिंग स्कूल का हिस्सा है। दुखों के घने जंगल से गुजरना होगा ताकि फिर आनंद के राजपथ पर हम पहुंच पाएं। जहर पीना होगा ताकि अमृत की पहचान हो सके। मृत्यु ने चारों तरफ से घेर लिया है ताकि जीवन का ज्ञान हो सके।

सीधा–सादा ज्ञान तुम्हारा, बहकी–बहकी मेरी बातें,
एक तड़प उसकी धड़कन, जिसको तुम सब कहते हो दिल
और स्वयं में एक लहर हूं मैं, क्या जानूं क्या है साहिल।
मेरे मन में नई उमंगें, मेरे पैरों में चंचलता,
मंजिल पीछे छोड़ चुका हूं, ज्ञात नहीं है अगली मंजिल
सबके सपने अलग–अलग हैं, यद्यपि वही हैं सबकी रातें,
सीधा–सादा ज्ञान तुम्हारा, बहकी–बहकी मेरी बातें।

यहां भटकना जरूरी है ताकि हम मंजिल पर पहुंच सकें। संसार में खो जाना जरूरी है, दृश्य में खो जाना जरूरी है ताकि हम स्वयं पर वापस आ सकें, आत्मज्ञान घटित हो सके। मेरी भूलों में मत उलझो, जनम–जनम का मैं अज्ञानी। बिल्कुल ठीक। अज्ञान ही ज्ञान को पाने का उपाय है और कोई उपाय हो भी नहीं सकता। इसलिए संसार को अध्यात्म का दुश्मन मत

समझना। नरक से होकर ही स्वर्ग का रास्ता जाता है और बंधनों से होकर ही मुक्ति का मार्ग खुलता है। पतंजलि के इस सूत्र को समझाते हुए हमारे प्यारे सद्गुरू ओशो ने जो कहा है, जरा गौर से सुनना–

द्रष्टा और दृश्य हमेशा साथ–साथ होते हैं ताकि प्रत्येक का वास्तविक स्वभाव जाना जा सके। बड़ी अद्भुत बात कह रहे हैं पतंजलि। वे कह रहे हैं कि यहां विपरीत कुछ भी नहीं, सब परिपूरक हैं। ऐसा कुछ भी नहीं संसार में जो परस्पर विपरीत हो, हर चीज परिपूरक है। यह संसार अस्तित्व रखता है ताकि तुम उस संसार को जान सको। इसका अस्तित्व है उसको जानने के लिए। भौतिक है, आध्यात्मिक को जानने के लिए, नरक है स्वर्ग तक जाने के लिए।

यही है प्रयोजन और यदि एक से तुम बचना चाहो तो तुम दोनों से बच जाओगे क्योंकि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक बार अगर तुम इसे समझ लो तो फिर कोई पीड़ा नहीं बचती। तुम जानते हो कि यह एक प्रशिक्षण है, यह एक अनुशासन है और अनुशासन तो कठिन होता ही है। कठिन होगा ही क्योंकि तभी उससे सच्ची परिपक्वता आएगी। योग कहता है कि यह संसार एक ट्रेनिंग स्कूल की भांति है, एक पाठशाला। इससे बचो मत और इससे भागने की कोशिश न करो। बल्कि इसे संपूर्णता से जिओ। इतनी समग्रता से जिओ कि तुम्हें फिर से जीने के लिए विवश न होना पड़े। यही है अर्थ जब हम कहते हैं कि एक बुद्ध पुरुष कभी वापस नहीं लौटता। क्योंकि अब कोई जरूरत नहीं रही, वह गुजर गया जीवन की सभी परीक्षाओं से, उसके लौटने की आवश्कता न बची।

तुम्हें फिर–फिर उसी जीवन में लौटने को विवश होना पड़ता है, क्योंकि तुम सीखते ही नहीं। बिना सीखे हुए तुम अनुभव की पुनरावृत्ति किए चले जाते हो। तुम फिर–फिर दोहराते हो वही अनुभव, वही क्रोध हजारों बार। तुम कितनी बार क्रोधित हुए जरा गिनो तो सही, क्या सीखा तुमने इससे?... कुछ भी नहीं। फिर नई स्थिति आएगी, फिर तुम क्रोधित हो जाओगे बिल्कुल उसी तरह जैसे कि पहली बार तुम्हें क्रोध आ रहा हो। कितनी बार तुम पर कब्जा कर लिया है लोभ ने, कामवासना ने, फिर कब्जा कर लेंगी ये चीजें और फिर तुम प्रतिक्रिया करोगे उसी पुराने ढंग से, जैसे कि तुमने न सीखने की कसम ही खा रखी है!

सीखने के लिए राजी होने का अर्थ है, योगी होने की तैयारी। यदि तुमने न सीखने का ही तय कर लिया है, यदि तुम आंखों पर पट्टी ही बांधे रखना चाहते हो, अगर तुम फिर–फिर उसी नासमझी को दोहराए जाना चाहते हो तो फिर तुम वापस संसार में फेंक दिए जाओगे, तुम वापस उसी कक्षा में भेज दिए जाओगे जब तक कि तुम उत्तीर्ण न हो जाओ।

जीवन को किसी और ढंग से नहीं देखना, यह एक विराट पाठशाला है, एक मात्र विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय शब्द अच्छा है, यह आता है विश्व से। असल में किसी विश्वविद्यालय को स्वयं को विश्वविद्यालय नहीं कहना चाहिए। यह नाम तो बहुत विराट है, संपूर्ण विश्व ही है एक मात्र विद्यालय, लेकिन तुमने बना लिए छोट–छोटे विश्वविद्यालय और तुम सोचते हो कि तुम जब वहां से उत्तीर्ण हो गए तो तुमने सब सीख लिया, बन गए तुम ज्ञानी। नहीं, ये छोटे–छोटे मनुष्य निर्मित विद्यालय न चलेंगे, तुम्हें इस विराट विश्वविद्यालय, इस

जीवन, इस अस्तित्व से गुजरना ही होगा। यह जीवन एक परीक्षा का उपाय है। यहां सीखो, परीक्षा दो। जो उत्तीर्ण हो जाते हैं वे फिर वापस इस स्कूल में नहीं आते। यही आवागमन से मुक्ति का अर्थ है और जब तक पास नहीं होगे, बार–बार स्कूल में आना होगा। और यह बिल्कुल विपरीत के संग जीने से ही जीने की कला आती है।

बहुत लोग मेरे पास मिलने आते हैं, अक्सर पति–पत्नी अपने दुख का रोना रोते हैं कि आपस में बनती नहीं। ये परमात्मा ने कैसी प्रकृति बनाई है? स्त्री और पुरुष एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न। यह एक ट्रेनिंग स्कूल है जहां विपरीत रहकर ही हम जीने की कला सीख पाएंगे और कोई उपाय नहीं है। दुख ही उपाय है जगाने का। मैंने सुना है चंदूलाल की पत्नी कह रही थी, बहुत गुस्से में चिल्लाकर कि इससे ज्यादा अच्छी तो मैं अपने मायके में थी, सुखी थी। चंदूलाल ने कहा– क्या कहा? सूखी! निश्चित रूप से तुम जब आई थी बहुत सूखी थी। यहीं आकर तो हरी–भरी, मोटी–तगड़ी हुई हो।

सुना है मैंने एक लेखक ने अपनी पुस्तक अपनी पत्नी को समर्पित करते हुए लिखा 'अपनी पत्नी को समर्पित जो गुस्से में मायके चली गई और उसकी अनुपस्थिति के कारण ही यह पुस्तक लिखी जा सकी'!

एक युवती ने अपनी सहेली को अपने मंगेतर से मिलवाया। फिर बाद में पूछा कि वह लड़का तुम्हें कैसा लगा जिससे मेरी शादी होने वाली है? उसकी सहेली बोली बहन, सच बात कहूं बुरा न मानना, वेसे तो सब ठीक–ठाक है, लेकिन उसके दांत बड़े ऊबड़–खाबड़, आड़े–तिरछे, रंग–बिरंगे हैं। जब वह हंसता है तब उसका मुंह बहुत खराब लगता है, बाकी सब ठीक है। उसकी सहेली ने कहा कि तुम चिंता न करो बहन, शादी के बाद मैं उसे हंसने का मौका ही कब दूंगी!

ये शादी भी जरूरी है, ये स्त्री–पुरुष का संग–साथ भी जरूरी है। विपरीत के साथ ही हम सीख सकते हैं और कोई उपाय नहीं है सीखने का। भूलों से ही हम सीख सकते हैं। मैंने सुना है एक युवक विश्वविद्यालय पास करके अपने गांव के धनपति सेठ चंदूलाल के पास पहुंचा और उसने पूछा कि मैं भी धनी होना चाहता हूं, मेरी पढ़ाई–लिखाई समाप्त हो गई, मुझे कुछ सूत्र दें, मैं कैसे अपने जीवन को जिऊं? चंदूलाल ने कहा कोई भी व्यवसाय शुरू कर दो। उसने पूछा कि आप सफल कैसे हुए? चंदूलाल ने कहा सही निर्णय लेकर, व्यवसाय में मैं हमेशा उचित निर्णय करता हूं। उस युवक ने पूछा कि उचित निर्णय आप कैसे कर पाते हैं? चंदूलाल ने कहा अनुभव के द्वारा और कैसे। उस युवक ने पूछा और महोदय, अनुभव कैसे हुए? चंदूलाल ने कहा, भूलें कर–कर के और कैसे। और कोई उपाय नहीं है, भूल से ही हम सीखते हैं।

द्रष्टा दृश्य में खो जाए, भूल में पड़े, कभी न कभी रिवीजन होगा, कभी न कभी स्वयं पर वापस लौटना होगा। इसलिए संसार को अध्यात्म का विरोधी मत समझना और वे जो त्यागी, संन्यासी संसार छोड़कर भाग गए, वे न जाग पाएंगे। वे दर्पण ही छोड़कर भाग गए। दर्पण का उपयोग करो स्वयं पर लौटने के लिए। इसलिए ओशो अपने संन्यासी को कहते हैं, भागो मत, जागो। योग यहीं संसार में घटित हो सकता है, जंगल और पहाड़ों में नहीं। धन्यवाद!!

जागरूकता : मुक्ति का उपाय

साधनपाद : 24

तस्य हेतुः अविद्या।

द्रष्टा और दृश्य का यह, जो दिखता है संयोग;
कारण है अज्ञान, अविद्या, यही जानना योग।

अविद्या के विसर्जन द्वारा द्रष्टा और दृश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है। अर्थात् जागरूकता ही मुक्ति का उपाय है।

संसार के दृश्य में चेतना रूपी द्रष्टा उलझ गया। यह उलझाव ऐसा है जैसे किसी झील के ऊपर से पक्षी गुजरता हो और पक्षी का प्रतिबिंब झील में पड़े। वास्तव में पक्षी झील में नहीं उलझा है, पक्षी दूर आकाश में है, सदा झील के पार; बहुत ऊपर है, किन्तु दिखाई पड़ने लगा झील में। भ्रम पैदा हो गया। वह शाश्वत सत्य क्षणभंगुर में उलझ गया। इस उलझाव को केवल एक भ्रांति जानना।

वास्तव में शाश्वत, शाश्वत है, वह क्षणभंगुर न कभी हुआ, न हो सकता है। किन्तु यह खेल, यह तमाशा, यह भ्रम, यह भ्रांति, यह माया जरूरी है, जागने के लिए। वह पक्षी स्वयं अपने आप को झील में डूबा हुआ समझने लगा और तड़प रहा है, परेशान है। यह परेशानी, यह तड़प उसे जगाएगी, उसे स्वयं का बोध कराएगी। लेकिन स्वयं का बोध होने के पहले, अज्ञान में पड़ जाना भी एक अनिवार्यता है। किसी कवि ने लिखा है–

सलिल कहूं या पारावार हूं मैं, स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं,
वह जो छाया बन रही है, उससे भ्रम पैदा हो रहा है कि कौन हूं मैं?
स्वयं छाया, स्वयं आधार हूं मैं,
समाना चाहता है वो बीन हूं मैं,
विकल उस शून्य की झंकार हूं मैं।

भटकता खोजता हूं ज्योति तम में, सुना है ज्योति का आगार हूं मैं
जिसे निशि खोजती तारे जलाकर, उसी का कर रहा अभिसार हूं मैं।
जनम कर मर चुका सौ बार लेकिन अगम का पा सका क्या पार हूं मैं
कली की पंखुड़ी पर ओस कण में, रंगीले स्वप्न का संसार हूं मैं।
मुझे क्या आज ही या कल झरूं मैं, सुमन हूं एक लघु उपहार हूं मैं
मुझे क्या गर्व हो अपनी विभा का, चिता का धूल–कण हूं क्षार हूं मैं।
पता मेरा मुझे मिट्टी कहेगी, समा जिसमें ही चुका सौ बार हूं मैं।
कहो क्या कौन हूं, आया कहां से, जनम और मृत्यु के पार हूं मैं,
परिधि पर स्वप्न सा क्षणभंगुर हूं, केन्द्र में शाश्वत सत्य भंडार हूं मैं।

लेकिन कवि की बातें सुनी–सुनाई हैं, स्वयं जाना नहीं है। ऋषि वह है जिसने सत्य को जान लिया। समाना चाहता है वो बीन हूं मैं, विकल शून्य की झंकार हूं मैं। कवि कहता है कि ऐसा सुना है मैंने कि उस ओंकार की झंकार हूं मैं, महाशून्य में गूंजती ध्वनि।

भटकता खोजता हूं ज्योति तम में, सुना है ज्योति का आगार हूं मैं। सुना है कि मैं प्रकाशमय हूं, मैं ज्योति का आगार हूं, लेकिन तम में भटक रहा हूं, अंधेरे में खो गया हूं। अंधेरे में ही प्रकाश का ज्ञान होता है, भटक जाना भी जरूरी है। आज के सूत्र में पतंजलि उसी तरफ इशारा करते हैं। कहते हैं–

द्रष्टा और दृश्य का जो दिखता है संयोग,
कारण है अज्ञान, अविद्या यही जानना योग।

अज्ञान में हम पड़ गए, संसार में हम उलझ गए, फिर वापस ज्ञान घट जाए, इसी अज्ञान की प्रोसेस से गुजरकर, तो योग हो गया। संसार से जब वियोग होता है तो परमात्मा से योग हो जाता है। जब परमात्मा से वियोग होता है, संसार से योग हो जाता है।

तुमने कभी गेस्टाल्ट साइकोलॉजी के चित्र देखें हों, एक ही रेखाओं से, उन्हीं रेखाओं से, उन्हीं बिन्दुओं से दो चित्र बने हुए हैं। एक वृद्ध स्त्री का चित्र है, एक युवती का चित्र है। अगर तुम वृद्ध स्त्री के चित्र को गौर से देखो तो थोड़ी देर में वृद्ध स्त्री का चित्र खो जाता है और युवती का चित्र उभर आता है। दो मिनट युवती के चित्र को देखते रहो, वह विदा हो जाता है, पुनः वृद्धा का चित्र उभर आता है। एक बार तुमने दोनों को जान लिया तब बड़ी मुश्किल होगी। तुम्हें मालूम है कि दोनों चित्र एक ही चित्र में छिपे हैं, लेकिन एक बार में तुम एक को ही देख पाओगे, दोनों को इकट्ठा नहीं देख सकते क्योंकि उन्हीं रेखाओं से, उन्हीं बिन्दुओं से दोनों चित्र बने हैं।

ठीक इसी प्रकार बह्म और जगत है। एक ही है, दो नहीं हैं, अद्वैत, नॉन–डुएलिटी। वेदान्त उसकी बात करता है– दुइ नहीं एकइ, दो नहीं एक ही है। लेकिन जब हमें संसार दिखाई पड़ रहा है तब परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता और जब परमात्मा दिखाई पड़ता है तब संसार गायब हो जाता है। वह स्वप्नवत, मायावत हो जाता है। इस सूत्र को समझाते हुए

ओशो कहते हैं, इस संयोग का कारण है, अविद्या, अज्ञान। इस स्वप्नवत संसार के साथ जुड़ना, देह के साथ जुड़ना, मन के साथ जुड़ना, जो कि तुम हो नहीं, एक आवश्यकता है। इस जोड़ के द्वारा तुम तैयार होओगे, ज्यादा बड़े जोड़ के लिए। इस जोड़ के द्वारा तुम जान लोगे कि यह जोड़ झूठा है। जिस दिन तुम जान लोगे कि यह जोड़ झूठा है, परम मिलन, परम योग घटित होगा।

जब संसार से तुम्हारा तलाक हो जाता है तो परमात्मा से तुम्हारा विवाह होता है और जब तुम्हारा विवाह होता है संसार के साथ तो परमात्मा से तलाक हो जाता है। इसलिए सारे संत, मीरा, चैतन्य, कबीर, पश्चिम में थेरेसा, वे सभी बात करते हैं विवाह की भाषा में, दूल्हा और दुल्हन की भाषा में और वे सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं परम मिलन की, योग की। इस प्रतीक का बहुत उपयोग किया गया है। मनुष्य तो इस विषय में संदेह भी करते हैं कि क्यों रहस्यदर्शी संत प्रेम, विवाह, आलिंगन आदि प्रतीकों का प्रयोग करते हैं।

भारत में तो संभोग तक का प्रयोग किया गया है, प्रतीक रूप में। जब परम मिलन घटित होता है तो आनंद का चरम शिखर अनुभव होता है। व्यक्ति का समग्र के साथ परम संयोग, लहर का सागर के साथ परम मिलन। क्यों ये लोग यौन प्रतीकों का प्रयोग करते हैं? मनोविद संदेह करते हैं कि जरूर कामवासना का कोई दमन रहा होगा। मनोवैज्ञानिक भी गलत है। नहीं, इन संतों ने कामवासना का दमन नहीं किया है, लेकिन कामवासना इतनी बुनियादी घटना है कि धर्म कैसे बच सकता है उससे। उन प्रतीकों का, सिंबल्स का प्रयोग करना पड़ेगा। और संभोग एक मात्र गहनतम घटना है जहां तुम स्वयं को पूरी तरह खो देते हो। तुम ऐसी कोई और घटना नहीं जानते, जिसमें तुम इतनी समग्रता से डूब पाते हो।

परमात्मा में या अस्तित्व में व्यक्ति स्वयं को पूरी तरह खो देता है, अनात्मा हो जाता है। संभोग में उसकी एक हल्की सी झलक मिलती है। तो विवाह के प्रतीक का, दूल्हा–दुल्हन के प्रतीक का प्रयोग ठीक ही है। संसार से विवाहित रहने पर परमात्मा से तुम्हारा तलाक हुआ है। गुजरो संसार के अनुभवों से, समृद्ध बनो, परिपक्व बनो और मुक्त हो जाओ। अचानक तुम जानोगे कि यह विवाह केवल एक भ्रम था, एक स्वप्न था, अब तुम्हारे सच्चे विवाह की तैयारी हो रही है, प्रीतम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

बंगाल में सती संप्रदाय है, वे परमात्मा को अपना पति मानते हैं। साधक, चाहे वह पुरुष ही हो, वह अपने आप को गोपी मानता है। वह प्यारा प्रेमी, वह कृष्ण का रूप है, मैं उसकी गोपी हूं, मैं उसकी प्रेमिका हूं। सूफी संत हुए हैं, इससे ठीक उल्टी उपमा उन्होंने चुनी है। स्वयं को प्रेमी और परमात्मा को प्रेमिका माना है। उमर खय्याम बात करता है उस प्रेमिका की, उस साकी की, जो मधु ढाल रही है। याद रखना यह मधु, समाधि की सुरा है। जिस साकी की वह बात कर रहा है, वह स्वयं परमात्मा है, लेकिन उनकी उपमा स्त्रैण है।

भारत में परमात्मा को पुरुष रूप में देखा गया, साधक ने अपने आप को उसकी प्रेमिका माना। सूफियों ने ठीक विपरीत किया। दोनों बातें संभव हैं, उपमा से कुछ फर्क नहीं

पड़ता। लेकिन एक बात पक्की है, एक गहन मिलन घटित होता है और जब वह मिलन घटित होता है तब इस संसार से जो तादात्म्य था, वह टूटता है। लेकिन संसार के तादात्म्य से उलझना भी जरूरी है। उसके कंट्रास्ट में ही उस महायोग, परमआनंद का द्वार खुलता है।

मैंने सुना है चंदूलाल की पत्नी गुस्से में अपने पति से बोली कि तुमने मुझसे शादी ही क्यों की? चंदूलाल ने कहा कि मैं जानना चाहता था कि मैं कितना मूर्ख हूं! पत्नी ने कहा कि ऐसी शादी करने की क्या जरूरत थी, वह तो जब तुमने प्रपोजल दिया था, ख्वाहिश जाहिर की थी शादी करने की, तभी तय हो गया था!

संसार में जैसे ही हमने उत्सुकता ली, हमने अपने अज्ञान की घोषणा कर दी। हम अज्ञान में फंसे, लेकिन यह फंसना जरूरी है। पक्षी का प्रतिबिंब झील में बन गया। यही उपाय है मुक्त होने का और कोई उपाय नहीं। नसरुद्दीन के दोस्त ने उससे पूछा कि अरे! तुम खुद झाड़ू-पोंछा लगा रहे हो, खाना पका रहे हो, कपड़े धो रहे हो? तुम्हारे घर में तो एक नौकरानी थी, उसका क्या हुआ? नसरुद्दीन ने कहा कि क्षमा करें, मैंने उससे विवाह कर लिया है! लेकिन इसमें फंसकर ही फिर इससे बाहर निकला जा सकता है। कोई और उपाय नहीं है।

तथाकथित साधु-महात्मा, जो संसार को परमात्मा का विरोधी बताते हैं, उनकी दृष्टि में भूल है। संसार एक ट्रेनिंग स्कूल है, यहां से सीखकर हम जाएंगे और तभी हम इससे मुक्त हो पाएंगे। मैंने सुना है एक परेशान युवक अपनी प्रेमिका की मां के पास पहुंचा और उससे कहा कि मैं विनती करने आया हूं, मैं आपकी बेटी से विवाह करना चाहता हूं और उसके लिए मैं अपना सबकुछ छोड़ने के लिए तैयार हूं। प्रेमिका की मां ने कहा कि जरा विस्तार से कहो, क्या-क्या छोड़ने के लिए तैयार हो? तब उस परेशान युवक ने कहा कि अपने बूढ़े माता-पिता, चार छोटे भाई और तीन कुंवारी बहनें, इकलौती पत्नी, चार बीमार बच्चे, तीन लाख का कर्ज और किराए का मकान, सबकुछ छोड़ने के लिए तैयार हूं। तुम्हारे पास है क्या छोड़ने को! वे जो त्यागी-तपस्वी कह रहे हैं कि मैंने ये छोड़ दिया, वो छोड़ दिया, उनकी भ्रांति अभी टूटी नहीं। वे अभी भी उस सारे दुख के भंडार को अपना समझ रहे थे।

वह आदमी जो कह रहा है कि मैंने धन छोड़ दिया, अभी उसकी आइडेंटिटी बनी हुई है। पहले वह कह रहा था कि मैं अमीर हूं, इतने लाख रुपए मेरे पास हैं, अब वह कह रहा है लाखों पे मैंने लात मार दी। लेकिन लाखों को वह खुद का मानता है! पहले वह कहता था कि मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा घर, अब वह कह रहा है कि मैंने अपनी पत्नी छोड़ दी, लेकिन मेरेपन का भाव बना ही हुआ है! मैंने छोड़ दिया मकान। यह तुम्हारा मकान था कब?

यह जागरण घटित नहीं हुआ, उसकी भ्रांति अभी भी कायम है... पहले पकड़ने की अब छोड़ने की।जो जाग गया वह सिर्फ हंसेगा। न यहां पकड़ने को कुछ है, न यहां छोड़ने को कुछ है। भोगी और त्यागी दोनों गलत हैं। ओशो कहते हैं, न भोगो, न त्यागो, वरन जागो। पतंजलि भी कह रहे हैं, जागो, वह जागरण ही योग है। धन्यवाद!!

ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय में भेद

साधनपाद : 25

तदभावात् संयोगाभावो हानम् तत् दृशेः कैवल्यम्।

ज्ञाता और ज्ञेय का जब, तादात्म्य दूर होता है;
अज्ञान तिमिर मिट जाता तब, कैवल्यज्ञान घटता है।

सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्वारा अविद्या का विसर्जन होता है। तब चेतना शुद्ध, निर्मल, अडोल हो जाती है।

साधनपाद के 25वें सूत्र में पतंजलि कहते हैं कि जब ज्ञाता और ज्ञेय का तादात्म्य टूट जाता है तब कैवल्यज्ञान घटित होता है, तब निर्वाण ज्ञान घटित होता है, तब आत्मज्ञान घटित होता है। ये सारे शब्द पर्यायवाची हैं– हम कहें आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, कैवल्यज्ञान, निर्वाणज्ञान, शून्यज्ञान– सब एक ही सत्य की ओर इशारा करते हैं। बस इतना समझ लेना कि हम सामान्यतः जिसे ज्ञान कहते हैं, वह जानकारियों का संग्रह है। और धर्म की भाषा में जिसे परमज्ञान कहते हैं, वह ज्ञाता का स्वयं का बोध है, किसी ज्ञेय वस्तु का नहीं। किसी बाहरी ऑब्जेक्ट का नहीं, बल्कि सब्जेक्टिव नोइंग।

सामान्य भाषा में जिसे हम ज्ञान कहते हैं, उसमें हमारी जानकारियों की वृद्धि होती है, सूचनाओं का हमारा संग्रह और बड़ा होता है, स्मृति का भंडार विशाल होता है। धर्म की भाषा में जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह जानकारियों का संग्रह नहीं, जानने वाले को जानना है। इस भेद को स्मरण रखना। एक अद्भुत सिद्ध हुए नरोपा। इसके पहले कि वे धर्म की साधना में लगे, वे किसी विश्वविद्यालय के उप कुलपति थे। कोई दस हजार विद्यार्थी थे, वे उन्हें दर्शनशास्त्र पढ़ाते थे। एक दिन वे अपने विद्यार्थियों के संग बैठे हुए थे, चारों ओर किताबें बिखरी हुई थीं। अत्यंत प्राचीन दुर्लभ ग्रंथ, बड़ी रहस्यमयी दार्शनिक किताबें। अचानक उन्हें झपकी लग गई। बहुत देर तक पढ़ते–पढ़ते, पढ़ाते–पढ़ाते झपकी लग गई और उन्होंने एक

स्वप्न देखा। उसे स्वप्न कहना ठीक नहीं, वह साधारण स्वप्न न था, वह स्वप्न तोड़ने वाला स्वप्न था। सच पूछो तो उसे विजन या दर्शन ही कहना चाहिए।

स्वप्न में उन्होंने देखा एक बहुत भयानक चुड़ैल को, बड़े–बड़े दांत उसके, खूंखार, उसकी आंख से आग के शोले निकलते हुए। उसे देखकर वे पसीना–पसीना हो गए, सपने में भी पसीना–पसीना हो गए। छाती तेजी से धड़कने लगी, बड़ा भय उत्पन्न हुआ और उस चुड़ैल ने चिल्लाकर पूछा कि नरोपा, तुम जो इतने बड़े ज्ञानी और विद्वान हो, तुम्हें क्या–क्या मालूम है, ठीक–ठीक बोलो? नरोपा ने कहा मुझे भाषा आती है, व्याकरण आता है, दर्शनशास्त्र, तत्व मीमांसा, सिद्धांत सब मुझे आते हैं। उस चुड़ैल ने और भी भयानक रूप धारण कर लिया और उसने कहा कि ठीक–ठीक बताओ, तुम्हें केवल शाब्दिक ज्ञान है इनका या इनके भाव को भी समझते हो?

नरोपा झूठ न बोल सका। इस भयावह दृश्य में, पता नहीं वह चुड़ैल क्या करे, गर्दन दबा दे, खून पी जाए। नरोपा ने कहा मुझे केवल शाब्दिक ज्ञान है। तब वह चुड़ैल अचानक रूपांतरित हो गई, उसका रूप परिवर्तित हो गया। धीरे–धीरे उसकी भयानकता विदा हो गई और उसने एक सुंदर महिला का रूप धारण कर लिया। वह मुस्कराने लगी, उसके चेहरे पर प्रसन्नता आ गई।

नरोपा ने उसके चेहरे की प्रसन्नता देखकर मन ही मन सोचा कि जब मेरे इतना कहने से कि मुझे सिर्फ शाब्दिक ज्ञान है यह इतनी खुश हो गई है, काश, मैं ये भी कह दूं कि मैं इस भाव को भी पहचानता हूं, किताबों में जो लिखा है केवल शब्द ही नहीं, उसके अर्थ को भी जानता हूं तब तो वह और भी प्रसन्न होगी। ऐसा सोचकर नरोपा ने कहा कि सुनो, किताबों में जो लिखा है, केवल ऊपरी–ऊपरी खोल को नहीं, केवल कंटेनर को ही नहीं, उसके भीतर के कंटेंट को भी मैं जानता हूं, उसके भाव और अर्थ की भी मुझे पकड़ है।

तब वह स्त्री अचानक पहले से भी ज्यादा भयानक और रौद्र रूप में पहुंच गई। नरोपा तो कांप उठा, उसने सोचा कि यह क्या हुआ? उस स्त्री ने कहा कि तुम झूठ बोल रहे हो। पहले मैं प्रसन्न हुई थी यह देखकर कि एक विद्वान, उप कुलपति, वह भी सत्यवादी है! तुमने अपना अज्ञान स्वीकारा था कि केवल शब्दों को जानते हो। लेकिन अब तुम झूठ बोल रहे हो। तुम्हें भाव की कोई समझ नहीं है, किसी भी धर्म–ग्रंथ के भाव को तुम नहीं समझ पाए हो। अब मैं तुम्हारे प्राण ले लूंगी और तब उसने गला दबाने के लिए हाथ आगे बढ़ाए और घबराहट में नरोपा की झपकी टूट गई। स्वप्न भंग हुआ, नींद खुली, पसीना–पसीना, अभी भी नब्ज तेज चल रही थी।

विद्यार्थियों ने पूछा कि क्या हुआ आपको? नरोपा ने पूरी घटना कही और यह घटना नरोपा के जीवन में रूपांतरण ले आई। नरोपा को बात समझ में आ गई।

उसने कहा कि ये चारों तरफ जो ग्रंथ और प्राचीन शास्त्र बिखरे हैं, तुम उठाओ और उनको ले जाओ। अब मुझे इनमें कोई रस नहीं है। यह केवल शब्द का ज्ञान है, वास्तविक

ज्ञान मुझे नहीं घटा और तब वह वास्तविक ज्ञान की खोज में लग गया।

वास्तविक ज्ञान ज्ञाता की खोज है। तो एक ही शब्द के दो अर्थ हुए, साधारण भाषा में ज्ञान यानी जानकारियों का संग्रह, तो स्कूल–कॉलेज से मिलता है, जो किताबों–पुस्तकों से मिलता है और धर्म की भाषा में ज्ञान का अर्थ है आत्मज्ञान, स्वयं को जानना। यह कोई जानकारी नहीं है।

कबीर बिल्कुल बेपढ़े–लिखे हैं, कहते हैं– मसी कागज छुओ नहीं; कागज–कलम को तो कभी जिंदगी में हाथ ही नहीं लगाया, दस्तखत करना भी नहीं आता, लेकिन कबीर परमज्ञानी हैं। दादूदयाल और चरणदास, सहजोबाई और दयाबाई परम ज्ञानी हैं। बाहर के जगत में उनको जानकारी नहीं है, वे कोई विद्वान नहीं हैं, शब्दों की पकड़ उन्हें नहीं है, शब्द का ठीक–ठीक अर्थ वे नहीं जानते। सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग करते हैं, अपनी ही खुद की भाषा बना ली। व्याकरण का ज्ञान नहीं है। पंडित तो उनमें पचास भूलें खोज लेंगे कि इनको तो कविता करना भी नहीं आता। वे कोई दावा कर भी नहीं रहे हैं कि मैं कवि हूं। वे ऋषि हैं, उन्होंने स्वयं को जाना है, भीतर स्वयं को देखा है।

इस फर्क को याद रखना– ज्ञाता और ज्ञेय का तादात्म्य जब टूट जाता है तब जाकर यह घटना घटती है, परमज्ञान घटता है। ओशो ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है– पतंजलि कहते हैं कि द्रष्टा और दृश्य का संयोग भी विनष्ट किया जा सकता है। तो पहले कदम को ही ध्यानपूर्वक ख्याल में ले लेना है कि तुम दृश्य से पृथक हो, जो भी तुम देखते हो तुम उसके द्रष्टा हो। एक वृक्ष है, बहुत हरा–भरा और बहुत सुंदर, फूलों से लदा हुआ, लेकिन वृक्ष है तो दृश्य!... तुम उसके द्रष्टा हो। दोनों को पृथक करो, ठीक से जानो कि वृक्ष वहां है और तुम यहां हो। वृक्ष बाहर है तुम भीतर हो, वृक्ष दृश्य है तुम द्रष्टा हो।

ऐसा स्मरण रखना कठिन है क्योंकि वृक्ष इतना सुंदर है और फूल इतना चुंबकीय आकर्षण रखते हैं कि वे तुम्हें सम्मोहित कर देते हैं। तुम खो जाना चाहते हो उस सौंदर्य में, स्वयं को भूल जाना चाहते हो, असल में सदा तुम स्वयं को भूल जाने की, स्वयं से बचने की तलाश में हो। तुम इतने ऊबे हुए हो स्वयं से! कोई नहीं चाहता स्वयं के साथ रहना, स्वयं से बचने के लिए ही तुम हजारों रास्ते खोजते हो। जब तुम सोचते हो कि वृक्ष सुंदर है तो तुमने बचने का उपाय कर लिया, तुम स्वयं को भूल गए। जब पास से गुजरती किसी सुंदर स्त्री को तुम देखते हो तो तुम भूल जाते हो स्वयं को। द्रष्टा खो जाता है दृश्य में, द्रष्टा को दृश्य में खोने मत देना। बहुत बार खो जाएगा वह, वापस बुला लेना उसे। फिर–फिर द्रष्टा भाव में डूब जाना, धीरे–धीरे तुम थिर होने लगोगे, मजबूत होने लगोगे।

कोई चीज पास से गुजरती है, कोई भी चीज, चाहे ईश्वर ही गुजरता हो, पतंजलि कहेंगे कि ध्यान रहे तुम द्रष्टा हो और वह दूसरा दृश्य है। इस भेद को भूल मत जाना क्योंकि केवल इस दृश्य से ही तुम्हारी दृष्टि साफ होगी, तुम्हारी एकाग्रता शांत होगी, तुम्हारी चेतना घनीभूत होगी, तुम्हारा अस्तित्व जा न पाएगा और स्वयं में केन्द्रित होगा। फिर–फिर लौट

आओ, फिर–फिर उतरो आत्मस्मरण में। ध्यान रहे आत्मस्मरण, अहं स्मरण नहीं है, यह नहीं याद रखना है कि मैं हूं। नहीं! यह याद रखना है कि भीतर द्रष्टा है और बाहर दृश्य है। यह प्रश्न मैं का नहीं है, अहं का नहीं है, यह प्रश्न है चेतना का और चेतना की विषय–वस्तु का।

अज्ञान के विसर्जन द्वारा द्रष्टा और दृश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है, यही मुक्ति का उपाय है। अद्भुत है पतंजलि का यह सूत्र– स्वयं मुक्ति घटित होती है। ज्ञाता और ज्ञेय के बीच भेद खड़ा हो जाए। महावीर ने इसी को भेदविज्ञान कहा है, उपनिषद् के ऋषि इसी को विवेकख्याति कहते हैं। सुनो यह गीत –

दरिया में यूं तो होते हैं कतरे–कतरे सिर्फ,
कोई तो उस निगाह का मारा दिखाई दे,
खाए न जागने की कसम वो तो क्या करे,
जिसको हर एक ख्वाब अधूरा दिखाई दे।
क्या हुस्न है जमाल है, क्या रंग–रूप है,
वो भीड़ में भी आ जाए तो तनहा दिखाई दे,
जिसे आइना कहें, उसे पत्थर न क्यों कहें,
जिस आइने में अक्स उनका न दिखाई दे।
कैसी अजीब शर्त है दीदार के लिए,
आंखे जो बंद हों तो वो जलवा दिखाई दे।

एक जलवा है जो खुली आंख देखा जाता है और एक जलवा है स्वयं का, उसी को कहो परमात्मा का दीदार, वह बंद आंखों से होता है। एक खुले कान जिनसे हम बाहर की ध्वनि सुनते हैं और एक जब वहां से चित्त हटा लें, बाहर की आवाजों से, तो भीतर का अनाहत नाद सुनाई पड़ता है, प्रभु की झंकार सुनाई पड़ती है। एक प्रकाश है बाहर, एक आलोक है भीतर। इंद्रियों से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह ऑब्जेक्टिव नॉलेज है।

जो इंद्रियातीत ज्ञान है, बिना इंद्रियों के जो हमें एहसास होता है, वह सब्जेक्टिव नोइंग है। अपने भीतर चलो। तथाकथित ज्ञान, ज्ञान नहीं है, वह केवल ज्ञान का भ्रम है। इस भ्रम से जाग जाना ही असली योग है। याद रखना, आसन, व्यायाम और प्राणायाम करना, सामान्यतः उसको लोग योग कह रहे हैं। और पतंजलि किसे योग कह रहे हैं? आत्मजागरण को, आत्मबोध को, आत्मज्ञान को।

वह योग कैसे घटेगा? ज्ञाता और ज्ञेय का भेद स्पष्ट होने से। जो निरीक्षण करने वाला है, वह भीतर का चैतन्य है और जिसे वह जान रहा है, वह बाहर की वस्तु है। इसे बारंबार–बारंबार याद रखो।

चलते–फिरते, उठते–बैठते एक सतत स्मरण भीतर बना रहे, उसका नाम ही सुरति है, सुमिरन है। धीरे–धीरे तुम स्वयं में स्थित होने लगोगे, वास्तविक स्वास्थ्य घटित होने लगेगा, उसी का नाम योग है। दृश्य से वियोग हो तो स्वयं से योग घटित हो। धन्यवाद!!

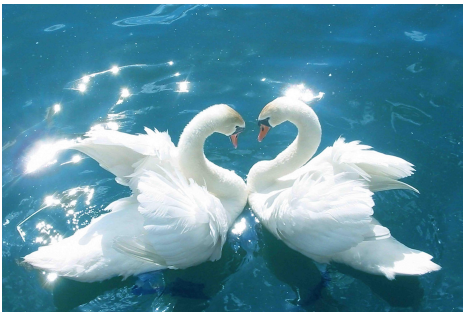

हंसा तो मोती चुगै

साधनपाद : 26

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।

जब भीतर पैदा होता है सत्य–असत्य विवेक;
तभी दृश्य–द्रष्टा का चलता पता वास्तविक भेद।

संबोधि प्राप्ति के सात कदम हैं–

- दुख का ज्ञान
- दुख के कारण की पहचान– द्रष्टा–दृश्य संयोग
- दुख निरोध का उपाय
- दुख निरोध की दशा
- चित्त का कोई कार्य शेष नहीं रहता
- चित्त को निर्मित करने वाले गुण अपने कारण में विलय हो जाते हैं
- आत्मस्वरूप में स्थिति।

किसी शायर ने लिखा है –

वस्ल की चाहत सोने नहीं देती, हंसी की आदत रोने नहीं देती,
बहुत से जुर्म और थोड़ी राहत कभी बगावत होने नहीं देती।
रोशनी तारों की काली रातों से, हमें शिकायत होने नहीं देती,
मीठी जुबान मरहम सी दिल को आहत होने नहीं देती।
जो है नामुमकिन बात उनकी, मुमकिन भी बात होने नहीं देती,
छप्पर से उतरती सुनहली धूप, स्वप्न सागर में खोने नहीं देती।

कितना तो खोए रहे स्वप्न सागर में! और कब तक खोए रहोगे... सपनों से जागो। पतंजलि के ये सूत्र धूप की सुनहली किरणें हैं जो तुम्हें जगाने आई हैं। आज के इस अद्भुत सूत्र में पतंजलि कहते हैं–

जब भीतर पैदा होता है सत्य, असत्य, विवेक,

तभी दृश्य–द्रष्टा का चलता पता वास्तविक भेद।

पहले पतंजलि ने कहा था दृश्य और द्रष्टा में तादात्म्य को तोड़ो, अब एक दूसरे दृष्टिकोण से उसी बात को कह रहे हैं। कहने का तरीका भिन्न है, मंजिल एक है, लक्ष्य एक है। वे कह रहे हैं सत्य और असत्य का विवेक करना सीखो। विवेक का अर्थ है नीर–क्षीर का भेद कर पाएं। यह काव्यात्मक उपमा है हंस की। कहते हैं हम उसे परमहंस जो दूध और पानी के मिश्रण से दूध और पानी को अलग–अलग कर दे। उपमा है, कविता है, पर सुंदर प्रतीक है यह। जो सत्य और असत्य को अलग–अलग कर दे, क्या है सत्य और क्या है असत्य?

हम असत्य के साथ तादात्म्य कर बैठे हैं, यह भ्रम टूटेगा कैसे? जब हम जागरूक होकर जीना शुरू करेंगे। अगर दृश्य और द्रष्टा से बात समझ में नहीं आती तो छोड़ो उस बात को। दूसरे ढंग से देखना शुरू करो, क्या है सच और क्या है झूठ? और ऋषियों ने सच की जो परिभाषा की है, उसे स्मरण रखना। सत्य का अर्थ है जिसकी सत्ता है, जिसका एग्झिसटेंस है, जो सदा–सदा से है, आज भी है, और सदा–सदा होगा, वह है सत्य।

स्वप्न का अर्थ है जो पहले नहीं था, अभी अचानक प्रकट हुआ और बस यूं ही अचानक गायब हो जाएगा, वह है सपना, वह है असत्य। जो पहले नहीं था, बाद में भी नहीं हो जाएगा। दो नहीं के बीच में वह आभासित हो रहा है। वह सिर्फ एपियरेंस है, दो नहीं के बीच में कोई चीज कैसे हो सकती है? वह झूठ ही होगी, असत्य ही होगी। इस असत्य का ज्ञान घटित हो सके इसलिए संसार से हम जुड़ गए हैं।

किसी मित्र ने मुझे लिख कर पूछा है कि आप विवाह के चुटकुले सुनाकर पतंजलि के सूत्रों को क्यों समझा रहे हैं, कोई और उपाय नहीं हैं? संसार से हमारा विवाह हो गया है, असत्य के साथ हम नाता जोड़ बैठे हैं और यहीं से जागरण घटित होगा क्योंकि असत्य बार–बार प्रकट हो रहा है, हम फिर भी नहीं चेत रहे, हम फिर भी नहीं जाग रहे– यही आश्चर्य है। हम कह रहे हैं कि बहुत से जुर्म और थोड़ी राहत कभी बगावत होने नहीं देती। अब बगावत करना सीखो। मीठी जुबान मरहम सी दिल को आहत होने नहीं देती। अब थोड़ा आहत हो ही जाओ, अब तुम्हें थोड़ी चोट लग ही जाए, तुम्हें सत्य का पता चले।

मैंने सुना है नसरुद्दीन ने अपनी प्रथम सालगिरह पर अपने कुछ मेहमानों को बुलाया, उसमें चंदूलाल भी आए हुए थे। भोजन की पार्टी चल रही थी। भोजन करते हुए एक प्लेट जोर से रखी गई तो वह टूट गई। नसरुद्दीन बहुत गुस्से में चीखा– पता नहीं किस कंजूस ने, किस मक्खीचूस ने मेरी शादी पर ये प्लेट का सेट गिफ्ट में दिया था! कोई भी चीज छुओ और टूट जाती है। इतना सस्ता, सड़ियल माल, लोगों को शर्म भी नहीं आती इतना घटिया गिफ्ट देने में! गिरने की तो बात छोड़ो, उठाने–रखने में ही टूट जाती है।

उस सेट की एक–दो चीजें और बची थीं, नसरुद्दीन ने गुस्से में उठाकर उन्हें भी पटककर तोड़ दिया। पता नहीं किस हरामजादे ने गिफ्ट दी थी! तब नसरुद्दीन की पत्नी फातिमा ने कोहनी मारकर कहा कि सुनो, ये तो चंदू भाई साहब ने ही गिफ्ट दी थी!

सत्य जगह–जगह से उजागर हो रहा है। तुम अगर थोड़ा भी गौर करो तो तुम बात को पकड़ लोगे। लेकिन हम सोए हुए हैं, हम बहुत मूर्च्छित हैं। तो विवाह की उपमा से समझना आसान होगा क्योंकि योग का अर्थ है मिलन। परमात्मा से हमारा वियोग हो गया है क्योंकि हमने संसार से शादी कर ली है।

विवाह की उपमा से समझना आसान होगा कि कैसे छुटकारा हो। जरा सा भी जागकर देखो तो छुटकारा हो जाएगा। एक व्यक्ति मुझसे पूछ रहे थे कि कोई स्त्री उनके बारे में क्या विचार रखती है, उसे वे कैसे पहचानें? मैंने कहा उससे शादी कर लो... सबसे आसान तरीका!

मैंने सुना है नसरुद्दीन का जब विवाह हुआ तो पहली ही रात उसने अपनी प्रेमिका गुलजान से, जो कि अब उसकी पत्नी हो गई थी, कहा कि देखो, तुम्हारी जीवनशैली में बहुत सी चीजें ऐसी हैं जिन्हें तुम अपनी खामियां, अपनी कमजोरियां समझती हो। अच्छा हो कि आज सुहागरात के दिन ही मैं तुम्हें बता दूं ताकि आगे तुम थोड़ा ख्याल रखो, फिर इन बातों पर दुबारा चर्चा न हो।

फातिमा ने कहा अजी रहने दो, मुझे अपनी खामियां और कमजोरियां, सब पता हैं। अगर वे खामियां न होतीं तो मुझे भी कोई अच्छा पति मिल गया होता, तुम्हारे जैसा बुद्धिहीन और निठल्लू न मिलता!

हमें अपने बारे में कुछ ख्याल ही नहीं! जब हम दूसरे के दर्पण में अपनी तस्वीर देखेंगे, हमें अपना पता चल जाएगा। नसरुद्दीन को फातिमा में खामियां दिख रही हैं, खुद का पता ही नहीं! अच्छा हुआ पत्नी ने कह दिया! दूसरे पर नाराज न होना। हमारे जितने भी संबंध हैं, उन सब संबंधों को दर्पण की भांति लेना। आइने में अपनी ही तस्वीर दिखाई दे रही है और यही आइने का उपयोग है। आइने को धन्यवाद देना अगर वह कुछ कुरूपता जाहिर करता है ताकि तुम सुंदर हो सको, आइने पर नाराज मत होना।

सेठ चंदूलाल की मुलाकात अपने एक बहुत पुराने, 20 साल पुराने मित्र से हुई। कॉलेज के दिनों में दोनों साथ पढ़ते थे। चंदूलाल ने कहा कि तुम्हें मालूम है रमेश, कॉलेज के दिनों में तुम और मैं एक ही लड़की से प्यार करते थे। फिर उस लड़की ने तुम्हें धोखा दे दिया और मुझसे शादी कर ली। आज मैं जो भी हूं उसी की वजह से हूं। रमेश ने पूछा कि आज आप किस स्थिति में हैं? चंदूलाल ने कहा कि आज मैं दिवालिया हो गया हूं!

संसार से जुड़कर हम सब दिवालिया हो गए हैं। अपनी वस्तुस्थिति को पहचानो और तब वापस लौटना सरल होगा, भीतर लौटना आसान होगा। एक और घटना मैंने सुनी है– किसी ने एक विद्वान से पूछा कि मैंने सुना है, शादीशुदा लोग कुंवारे लोगों की तुलना में ज्यादा लंबा जीते हैं, क्या यह बात सच है? आंकड़े क्या बताते हैं?

उस विद्वान ने कहा कि हां, यह बात सच है। दो कारणों से– पहली बात शादीशुदा व्यक्ति दीर्घजीवी इसलिए होते हैं कि उन्हें ऐसा लगता है कि हे भगवान! कितना लंबा जीवन है, कब खत्म होगा! और दूसरा कि वे सदा आत्महत्या के लिए ही सोचते रहते हैं। दुख में आदमी को समय लंबा मालूम पड़ता है। आपने रिलेटिविटी की बात सुनी होगी। सुख में समय सिकुड़

जाता है, छोटा हो जाता है। आनंद में बिल्कुल ही समाप्त हो जाता है, समयातीत अवस्था हो जाती है। कभी आपको स्मरण हो किसी की मृत्यु हो रही है, कोई प्रियजन मरणशैया पर है और आप रात उसके निकट बैठे हैं। ऐसा लगता है कि रात कभी कटेगी कि नहीं। बार-बार घड़ी देखते हैं कि कितना समय हो रहा है, अभी पांच ही मिनट हुए हैं। ऐसा लगता है कि कई युग बीत गए। दुख की घड़ियां बहुत लंबी हो जाती हैं। सुख में समय छोटा हो जाता है और आनंद में समय तिरोहित हो जाता है। लेकिन ये सुख-दुख का खेल, असत्य में उलझ जाने का खेल, दृश्य के साथ तादात्म्य कर लेने का खेल, हमें जगाने के लिए है।

अब स्वप्न सागर में मत खोओ, मत कहो कि छप्पर से उतरती सुनहली धूप स्वप्न सागर में खोने नहीं देती। कितने सपने देख लिए, जागने का समय आया! जब जागो, तभी सवेरा।

पतंजलि के इस सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं- केवल एक चीज सदा सत्य है, वह है द्रष्टा। रात जब सपना चलता है तो सपना भले सपना हो, झूठा हो, लेकिन द्रष्टा स्वप्न नहीं होता क्योंकि सपना देखने के लिए भी वास्तविक द्रष्टा की जरूरत होती है। दोनों स्वप्न नहीं हो सकते। तुम युवा थे, फिर तुम बूढ़े होने लगे, लेकिन द्रष्टा वही का वही है। तुम बीमार होते हो, फिर स्वस्थ होते हो, लेकिन द्रष्टा वहीं रहता है।

तुम्हारे भीतर की चेतना सदा वही रहती है, वही एक मात्र स्थिर तत्व है, एक मात्र सत्य क्योंकि हिन्दू सत्य की व्याख्या इसी तरह करते हैं कि जो शाश्वत और सनातन है, वही सत्य है। उनकी परिभाषा है जो सदा है, वह सत्य है और जो क्षणभंगुर है, वह झूठा है। क्योंकि एक क्षण तो वह होता है, अगले क्षण विलीन हो जाता है। तो क्यों उसे सत्य कहना, वह स्वप्न जैसा है। कोई चीज जो अपने आपको अर्थ मानती है और अगले क्षण अर्थहीन हो जाती है, वह सपना ही है। हिन्दू कहते हैं कि सारा जीवन एक सपना है, क्योंकि जब तुम मरते हो तो सारा जीवन अर्थहीन हो जाता है, जैसे कि वह कभी था ही नहीं।

धीरे-धीरे सत्य और असत्य के बीच भेद करने से, उन्हें साफ-साफ पहचानने से और-और प्रामाणिक सजगता पैदा होगी। असली बात यह जानना नहीं है कि क्या सत्य है और क्या असत्य, असली मुद्दा है कि सत्य क्या है, असत्य क्या है इसे जानने की कोशिश में तुम अत्यंत जागरूक हो जाओगे। यह सजगता की, ध्यान की एक विधि है। तो इसमें मत उलझ जाना क्योंकि लोग विधि में ही उलझ जाते हैं। सदा ध्यान रहे कि यह एक विधि मात्र है। जितना ज्यादा तुम गहराई में उतरते हो और उसके प्रति सजग होते हो कि क्या है सत्य, क्या है असत्य, तुम्हारा बोध उतना ही गहन, जीवंत होता जाता है, तुम्हारी दृष्टि और भी गहरी होती जाती है। जीवन के रहस्य में दूर तक प्रवेश कर जाती है, यही है असली उद्देश्य।

योग साधन है। लक्ष्य है पूर्ण जाग्रति ताकि एक कोना भी अंधियारा न रहे, सारा घर प्रकाशित हो उठे। पतंजलि कहते हैं, सत्य और असत्य के बीच भेद करने के सतत अभ्यास द्वारा अज्ञान का विसर्जन होता है। वह अज्ञान दूर हो, यही है लक्ष्य। जगत माया है, यह एक विधि है। इसको फिलॉसफी या सिद्धांत मत समझना। अगर तुम जगत को माया मानकर जीने लगो, तो तुम्हें सत्य का, स्वयं का एहसास होना शुरू हो जाए। धन्यवाद!!

संबोधि के सात चरण

साधनपाद : 27

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा।

सात चरण में कली ज्ञान की फूल-रूप में खिलती है,
संबोधि की परम अवस्था, तब योगी को मिलती है।

साधनपाद के 27वें सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं- सात चरणों में संबोधि की परम अवस्था उपलब्ध होती है। पतंजलि क्रमिक विकास में विश्वास करते हैं। वे कहते हैं कि लक्ष्य तक सात चरणों में पहुंचा जाता है। मैं कहता हूं कि एक चरण में पहुंचा जाता है, लेकिन पतंजलि उसी एक चरण को, सात सीढ़ियों में बांट देते हैं ताकि तुम्हारे लिए आसान हो जाए। और कोई कारण नहीं है, तुम एक छलांग में भी पार कर सकते हो। 6 फीट, 7 फीट या तुम उस अंतराल को 6-7 हिस्सों में भी पार कर सकते हो।

पतंजलि छलांग में विश्वास नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि आदमी कमजोर है, छलांग नहीं लगा पाएगा। किन्तु धीरे-धीरे छोटे कदम उठाने के लिए तुम्हें राजी किया जा सकता है, फुसलाया जा सकता है। तुम छोटे-छोटे सात चरण उठा सकते हो, क्योंकि छोटे चरणों के साथ तुम आश्वस्त हो सकते हो कि कोई खतरा नहीं है। छलांग खतरनाक होती है, क्योंकि तुम नहीं जानते कि तुम कहां पहुंचोगे। एक छोटा कदम, तुम देख पाते हो आस-पास, और सुरक्षित अनुभव कर पाते हो। तुम धीरे-धीरे कदम बढ़ाते हो और आश्वस्त होते जाते हो। अगर कोई गड़बड़ हुई तो तुम सदा पीछे लौट सकते हो। यह केवल एक छोटे से अंतराल की ही बात है। लेकिन छलांग में वापस नहीं आ सकते। यदि कुछ गड़बड़ हो जाए तो बस फिर लौटने का कोई उपाय नहीं। छलांग एक आमूल परिवर्तन है, आत्यांतिक बदलाहट है।

पतंजलि जब भी कुछ कहते हैं तो सदा तुम्हारा ख्याल रखकर कहते हैं। अब तत्क्षण सजगता उपलब्ध करने का ढंग समझाने के बाद वे कहते हैं- संबोधि की परम अवस्था उपलब्ध होती है, सात चरणों में। पतंजलि की बात बड़ी महत्त्वपूर्ण है, विराट जनमानस के लिए। जो

इतना हिम्मतवर नहीं, जो इतना साहसी नहीं कि छलांग लगा सके, उनके लिए वे कहते हैं कि धीरे–धीरे चलो, सात हिस्सों में बांट देते हैं फिर एक–एक स्टेप को और छोटे–छोटे हिस्सों में सब–डिवाइड कर देते हैं– अंग के और प्रत्यंग। धीरे–धीरे खिसको, एक–एक कदम आगे बढ़ो।

कुछ लोग हैं दुनिया में बड़े हिम्मतवर, बड़े साहसी, बड़े बलवान, अपनी जान जोखिम में डालने वाले, वे छलांग लगा सकते हैं। उन्हें फिक्र नहीं कि क्या होगा! तो झेन मास्टर जापान में जो सिखाते हैं, वह एक प्रकार की छलांग वाली विधि है। योग शास्त्र जो सिखाता है वह धीरे–धीरे, क्रमिक विकास की विधि है। दोनों मार्गों से लोग पहुंचे हैं।

छलांग वाले लोग दुनिया में कम होते हैं। उतने साहसी बहुत कम लोग होते हैं। धीरे–धीरे चलने वाले लोग बहुत हैं, धीरे–धीरे आदमी को फुसलाया जा सकता है। एक फर्क और याद रखना जो अंत में पड़ता है, मंजिल पर पहुंचने पर। जो आदमी धीरे–धीरे पहुंचता है, मंजिल पर पहुंच कर वह शांत, आनंदित और प्रफुल्लित तो हो जाता है, लेकिन उसके भीतर से उत्सव पैदा नहीं होता। जो व्यक्ति मंजिल पर अचानक छलांग लगाकर पहुंचता है, वह परमानंद में नाचने लगता है, झूमने लगता है, अति उत्साहित हो जाता है।

भक्ति भी एक प्रकार की छलांग है, ठीक झेन की तरह। मीरा नाचती है, चैतन्य प्रभु मदमस्त होकर गाते हैं, ये भक्त हैं, अचानक पहुंचे। कोई क्रमिक विकास नहीं हुआ। यह ऐसे ही है जैसे एक आदमी व्यापार कर रहा है। पचास साल व्यापार करते–करते, एक दिन वह करोड़पति हो जाता है।

एक दूसरा आदमी है, उसने 'कौन बनेगा करोड़पति' में भाग लिया और एक मिनट में ही करोड़पति हो गया। निश्चित रूप से जो क्षण भर में करोड़पति हो गया, उसके जीवन में बड़ा उत्साह, बड़ी उमंग, बड़ा उत्सव हो जाएगा और वह जो पचास साल में, धीरे–धीरे करोड़पति बना है, यद्यपि दोनों ने एक ही मंजिल पाई है, लेकिन समय का भेद बढ़ गया, जिसने धीरे–धीरे पाई है उसके जीवन में उत्सव नहीं आता। वह जो सडेन एक्सप्लोजन, एक विस्फोट की स्थिति बनती है, वह लॉटरी पाने वाले के लिए ही बनती है, व्यापारी के लिए नहीं बनती।

इस बात को ख्याल रखना, क्योंकि मंजिल पर पहुंच कर भी भक्त नाचते हुए पाए गए हैं, योगियों को तुम कभी नाचते हुए न पाओगे। बुद्ध बैठे हैं एक पेड़ के नीचे आंखें बंद किए हुए, बिल्कुल शांत। भीतर वैसा ही आनंद है, जैसे मीरा का। ठीक वैसा ही आनंद महावीर को भी घटा है, लेकिन वे चुपचाप अपने आप में निमग्न खड़े हुए हैं। उनकी लॉटरी नहीं लगी है, बारह साल की क्रमिक साधना से उन्होंने पाया है।

मीरा की लॉटरी लगी है, अचानक परमात्मा का अवतरण हुआ है, छलांग लगी है। तो अपने व्यक्तित्व को देखना, अपने साहस को देखना, तुम कितनी हिम्मत कर पाते हो।

सौभाग्यशाली हो अगर परम मंजिल पर अचानक पहुंच जाओ, अगर न पहुंच सको तो कोई बात नहीं। पतंजलि के मार्ग से चलो, धीरे–धीरे एक–एक कदम उठाओ, उतनी हिम्मत तो सबके भीतर है।

महाकवि नीरज का एक गीत मैं पढ रहा था। वह तुमसे कहूं, बड़ा प्रीतिकर लगा–

मुस्कराकर चल मुसाफिर, पंथ पर चलना तुझे तो
मुस्करा कर चल मुसाफिर, मुस्करा कर चल मुसाफिर।

वह मुसाफिर क्या जिसे कुछ शूल ही पथ थका दें,
हौसला वह क्या जिसे कुछ मुश्किलें पीछे हटा दें।
वह प्रगति भी क्या जिसे कुछ रंगीन कलियां, तितलियां,
मुस्कराकर गुनगुनाकर ध्येय पथ मंजिल भुला दें।
जिंदगी की राह पर केवल वही पंथी सफल है,
आंधियों में, बिजलियों में जो रहे अविचल मुसाफिर,
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कराकर चल मुसाफिर।

जानता जब भी तू कि कुछ हो तुझे बढ़ना पड़ेगा,
आंधियों से ही तुझे न खुद से भी लड़ना पड़ेगा,
सामने जब तक पड़ा कर्तव्य तब तक मनुज को,
मौत भी आए अगर तो मौत से भिड़ना पड़ेगा।
है अधिक अच्छा यही फिर पंथ पर चल मुस्कराता,
मुस्कराती जाए जिससे जिंदगी असफल मुसाफिर।
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्करा कर चल मुसाफिर।

याद रख जो आंधियों के सामने भी मुस्कुराते,
वो समय के पथ पर पद–चिह्न अपने छोड़ जाते।
चिह्न वो जिसको न धो सकते प्रलय तूफान घन भी,
मूक रहकर भी जो सदा भूले हुए को पथ बताते,
किन्तु जो मुश्किलों से देख पीछे लौट पड़ते,
जिंदगी उनकी उन्हें भी भार ही केवल मुसाफिर,
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्करा कर चल मुसाफिर।

कंटकी यह पथ भी राजपथ बन जाए क्षण में,
पांव की पीड़ा क्षणिक यदि तू करे अनुभव न मन में।
सृष्टि सुख–दुख क्या हृदय की भावना के रूप हैं दो,
भावना की ही प्रतिध्वनि गूंजती भू निसि गगन में,
एक ऊपर भावना से भी है मगर कोई शक्ति,
भावना भी सामने जिसके विवश व्याकुल मुसाफिर,
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्कुरा कर चल मुसाफिर।

देख सर पर ही बरसते हैं प्रलय के काले बादल,
व्याल वन पुकारता है सृष्टि का हरिताभ अंचल,
कंटकों ने छेदकर है कर दिया जर्जर सगल तन।
किन्तु फिर भी डाल पर मुस्करा रहा है फूल प्रतिपल,
एक तू है देखकर कुछ शूल ही पथ पर अभी से
है लुटा बैठा हृदय का धैर्य साहस पल मुसाफिर,
पंथ पर चलना तुझे तो मुस्करा कर चल मुसाफिर।

अध्यात्म की इस अंतर्यात्रा के पथ पर आनंदमग्न होकर, मुस्कराते हुए चलो। तुम्हारी मौज धीरे-धीरे चलना हो, योग के मार्ग से चलना। छलांग लगाते हुए चलना हो तो झेन के मार्ग से, भक्ति के मार्ग से चलना। बस एक काम करना, बैठे न रहना, चलना, बाहर ही न उलझे रहना, अपने भीतर आना, धीरे-धीरे ही सही। मैंने सुना है एक लेखिका अपनी किताब लेकर प्रकाशक के पास पहुंची और उसने कहा कि लीजिए यह मेरी कहानी की किताब, पिछले साल भी मैं इसे आपके पास लाई थी। प्रकाशक ने गुस्से में कहा, आपको याद नहीं, पिछले साल ही मैंने आपकी किताब अस्वीकृत करके लौटा दी थी, फिर आप दुबारा क्यों आई? लेखिका ने कहा कि मुझे लगा कि एक साल में आपकी बुद्धि में कुछ तो बढ़ोत्तरी हुई होगी। चलो धीरे-धीरे ही सही, साल भर में सही, कुछ तो वृद्धि हुई होगी।

मैंने सुना है नसरुद्दीन कोई सजा पाने के लिए कटघरे में खड़ा हुआ है। जज ने गुस्से में आकर कहा कि नसरुद्दीन, कम से कम सात बार तुम मेरी अदालत में लाए जा चुके हो, कितने केस तुम पर चलते हैं, कितने अपराध तुम करते हो? तुम्हें शर्म नहीं आती! सातवीं बार मेरे सामने कटघरे में खड़े हुए हो। नसरुद्दीन ने कहा, मुझे कैसी शर्म, शर्म तो आपको आनी चाहिए। हुजूर, आपका प्रमोशन नहीं हो रहा तो इसमें मैं क्या करूं? बार-बार आपकी अदालत में आना पड़ता है, शर्म आपको आनी चाहिए। तुम्हें अगर धीरे-धीरे प्रमोशन पाना है तो चलो, पतंजलि के मार्ग से चलो। अगर अचानक छलांग लगा सकते हो, हिम्मत है प्राण दांव पे लगाने की तो भक्त हो जाओ।

ओशो ने कहा है, अगर तुम भक्त हो सको तो महासौभाग्यशाली हो। क्योंकि भक्त की यात्रा ही वहां से शुरू होती है, जहां पर योग जाकर समाप्त होता है। मंजिल पर ही भक्त सीधा पहुंचता है। सच पूछो तो उसकी कोई यात्रा है नहीं। इसलिए भक्ति की कोई विधि नहीं होती, योग की विधि होती है, संकल्प की विधि होती है। समर्पण की कोई विधि नहीं होती, समर्पण या तो है या तो नहीं है। उसे धीरे-धीरे नहीं साधा जा सकता।

तुम्हें किसी से प्रेम हो गया तो हो गया, नहीं हुआ तो कोई टेकनीक नहीं है कि तुम किसी के पास चले जाओ और सीख लो कि प्रेम कैसे किया जाता है। हो जाए तो हो जाए, न हो तो न हो, यह तुम्हारे वश में नहीं है। भक्ति का मार्ग, समर्पण का मार्ग, झेन का मार्ग अचानक छलांग है, योग का मार्ग धीरे-धीरे प्रमोशन है। एक-एक कदम आगे बढ़ते चलो। धन्यवाद!!

आष्टांगिक मार्ग

साधनपाद : 28

योगाङ्गानुठानात् अष्द्धुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः।

योग–अंग अभ्यास से, क्षय अष्टशुद्धि हो जाय;
आत्मिक ज्ञान प्रकाष्ठा फिर सत्य बोध बन जाय।

पतंजलि धर्म–जगत के आइंस्टीन हैं। हर सूक्ष्म बात को अत्यंत विस्तार से, छोटे–छोटे खंडों में बांटकर समझाते हैं। आत्मज्ञान की यात्रा को आठ पड़ावों में विभाजित करते हैं।

चांदनी रात में एक कवि चांद से कह रहा है–

रात यूं कहने लगा मुझसे गगन का चांद,
आदमी भी जीव कैसा अनोखा है?
उलझने अपनी बनाकर आप ही फंसता,
और फिर बेचैन हो जगता न सोता है।
जानता है तू कि मैं कितना पुराना हूं,
मैं देख चुका हूं मनु को मरते–जन्मते,
और लाखों बार तुझसे पागलों को भी
चांदनी पर बैठ स्वप्नों पर सही करते।
आदमी का स्वप्न है वह बुलबुला जल का
आज उठता और कल फिर फूट जाता है,
किन्तु फिर भी धन्य ठहरा आदमी तू,
बुलबुलों से खेलता कविता बनाता है।
मैं न बोला किन्तु मेरी रागिनी बोली,
देख फिर से चांद मुझको जानता है तू
स्वप्न मेरे बुलबुले हैं है यही पानी,

आग को भी क्या नहीं पहचानता है तू,
मैं न वह जो स्वप्न पर बस दस्तखत कर दे
आग में उसको गला लोहा बनाता हूं।
और उस नींव रखता हूं नए घर की
इस तरह दीवार फौलादी बनाता हूं।
मनु नहीं मनुपुत्र है यह सामने जिसकी
कल्पना की जीभ में भी धार होती है
बाण ही होते नहीं विचारों के केवल
स्वप्न के हाथ में भी तलवार होती है।
स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
रोज ही आकाश चढ़ते जा रहे हैं वे
रोक ये जैसे बने इन स्वप्न जालों को,
स्वर्ग की ही ओर बढ़ते आ रहे हैं वे।

ऐसी ही कल्पनाओं में आदमी खोया है, स्वप्नजालों में। सत्य कहीं और नहीं खो गया है, सत्य ठीक वहीं मौजूद है, जहां होना चाहिए। ऊपर से स्वप्नों की परतें चढ़ गई हैं। और हर आदमी को यही लगता है कि मैं कुछ अनूठा हूं, कुछ अद्वितीय हूं। सुनते हैं इस कवि के वचन, कहता है मनु नहीं, मनुपुत्र है यह सामने, जिसकी कल्पना की जीभ में भी धार होती है, बाण ही होते नहीं विचारों के केवल, स्वप्न के हाथ में भी तलवार होती है। तुमसे पहले अरबों–खरबों लोग ऐसा ही सोच चुके। पूरी मनुष्य जाति की यही कहानी है।

तुम सोच रहे हो तुम कुछ नया, अद्भुत स्वप्नजाल बुन रहे हो, कितने बुलबुले बने और फूटे, कितने लोग आए–गए। स्वप्नों में खोए–खोए जिए, उन्हें कभी सत्य के प्रकाश का अनुभव न हो सका। अंधेरे में ही रहे, गहन निद्रा में। निश्चित रूप से स्वप्न निद्रा में ही हो सकते हैं।

कई बार तो ऐसा होता है, हमें स्वयं के बारे में उतना नहीं पता होता जितना दूसरों को हमारे बारे में पता होता है। हमारी अकड़, हमारा अहंकार, हमारी अविद्या, हमारा अज्ञान अपने बारे में ज्यादा है। वह वैज्ञानिक जो दूसरे पदार्थों को, तत्वों को जान रहा है, बस उसे सिर्फ अपने बारे में नहीं मालूम है। सामान्य जीवन में भी देखना, तुमने कभी आत्मनिरीक्षण किया ही नहीं, स्वयं का अध्ययन किया ही नहीं। और सब मालूम है, दूसरे के बारे में तुम ज्यादा अच्छे, साक्षी भाव से जानते हो, बजाय स्वयं के।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू उससे पूछ रहा था, उसकी बहादुरी की घटनाएं। नसरुद्दीन शिकारी था। शिकारी तो बड़ी ऊंची गप्प मारने के आदी होते हैं। नसरुद्दीन कह रहा था कि एक बार शेर से मेरी भिड़ंत हो गई, हाथ में कोई हथियार भी नहीं थे। बस उठा के पटक दिया। बेटा ने कहा पापा आप शेर से डरे नहीं थे? नसरुद्दीन ने कहा बिल्कुल नहीं बेटा। फजलू ने पूछा, क्या आप हाथी से डरते हैं? नसरुद्दीन ने कहा क्या बात करते हो, हाथी

को तो यूं ही पछाड़ दूं, जैसे किसी बकरे को उठाकर पटक दूं। फजलू की आंखें फटी की फटी रह गई। उसने कहा फिर भूत–प्रेत से तो डरते होंगे? नसरुद्दीन ने कहा बिल्कुल नहीं। भूत–प्रेत मेरे पास नहीं भटकते। फजलू ने कहा, चुड़ैल, जिन्न इत्यादि उनसे तो डरते होंगे? नसरुद्दीन ने कहा नहीं बेटा, मैं बहुत बहादुर हूं। फजलू बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा पापा इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आप मम्मी के अलावा और किसी से नहीं डरते।

हमें अपने बारे में भी नहीं मालूम, छोटे बच्चे को हमसे ज्यादा मालूम है। और कारण हम बहिर्मुखी हो गए हैं, हमारी नजर बाहर कहीं लगी हुई है, हम अपनी तरफ कभी देखते ही नहीं। दूसरा बहिर्मुखी है और दूसरे के लिए हम बाहर हैं, इसलिए हमारे बारे में उसे ज्यादा मालूम है। तुम्हें दूसरों के बारे में ज्यादा मालूम है, क्योंकि हो, अपनी तरफ तुम देखते ही नहीं।

मैंने सुना है, सेठ चंदूलाल के ऑफिस में एक बीमा एजेंट आया। और उसने कहा कि आपके दफ्तर में इतने कीमती–कीमती सामान हैं, कभी कुछ चोरी चला जाए, तो आप बीमा करवा लीजिए। सेठ चंदूलाल राजी हो गए, उन्होंने कहा ठीक। वो जो दीवाल घड़ी है उसको छोड़कर बाकी सब चीजों का बीमा कर दो। उस एजेंट ने पूछा घड़ी का क्यों नहीं बीमा करवा रहे? चंदूलाल ने कहा वह जरूर चोरी नहीं जाएगी, क्योंकि दफ्तर के हर आदमी की नजर उस घड़ी पर लगी रहती है कि कब जाने का समय होगा, वह चोरी जा ही नहीं सकती। हमारी नजर बाहर लगी हुई है, समय पर, घड़ी पर या समय पर घटने वाली अन्य किसी घटना पर।

जो समयातीत शाश्वत तत्व हमारे भीतर है– आत्मा, सिर्फ उसको हम नहीं देख रहे। समय के पार हमारा स्वयं का होना है, वहां हमारी दृष्टि नहीं जा रही और इसलिए हम चूकते चले जा रहे हैं। साधनपाद के 28वें सूत्र में पतंजलि कहते हैं, योग अंग अभ्यास से छः अशुद्धियां हो जाए, आत्मिक ज्ञान प्रकाश फिर सत्य बोध बन जाए। क्योंकि सिर्फ अपनी अशुद्धियों को नष्ट करना है, कुछ और नहीं करना है।

जैसे कोई हीरा दब गया हो कीचड़ में। कीचड़ की पर्त, मिट्टी की परत उसपर जम गई हो। हीरा खो नहीं गया है, सिर्फ मिट्टी की परत को हटाना है। इसलिए उपनिषद् कहते हैं, नेति–नेति। कुछ नई चीज जोड़ना नहीं है, कुछ हटाना है, कुछ घटाना है। कुछ अनावश्यक हमारे ऊपर जुड़ गया है, उसे मिटाना है। इस सूत्र को परमगुरु ओशो ने इस प्रकार समझाया–

लोग आते हैं मेरे पास और कहते हैं कि हम परमात्मा की खोज कर रहे हैं। मैं पूछता हूं उनसे तुमने उसे खोया कहां है, क्यों खोज रहे हो तुम? क्या तुमने उसे कहीं खोया था? यदि तुमने कहीं उसे खोया था तो बताओ मुझे, उसे वहीं पाया जा सकेगा क्योंकि केवल तुम ही उसे खोज पाओगे। वे कहते हैं नहीं, हमने परमात्मा को खोया नहीं है। तो क्यों तुम उसे खोज रहे हो, तब अपनी आंखें बंद करो और भीतर देखो।

शायद इस खोज के कारण ही तुम चूक रहे हो, शायद तुम खोज में बहुत व्यस्त हो, तुमने अपने भीतर झांका ही नहीं कि वहां 'सम्राटों का सम्राट' पहले से ही बैठा हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है कि तुम घर आओ और तुम ठहरे बड़े खोजी, तुम जा रहे हो मक्का–मदीना, काशी और कैलाश। तुम हो एक महान् खोजी, तुम भाग रहे पूरे संसार में सिवाय एक जगह के जहां कि

वास्तव में तुम हो, बस उस जगह से चूक रहे हो। खोजने वाला स्वयं ही मंजिल है। जब वह मौन और शांत हो जाता है तो स्वयं को पाता है, कुछ नया नहीं पाया जाता, बस तुम समझ जाते हो कि बाहर देखने में ही सारी बात चूक रही थी। भीतर देखते हो उसे वहां सदा से मौजूद पाते हो, वह सदा–सदा से उपस्थित है। एक क्षण को भी कभी ऐसा नहीं होता कि जब वह वहां नहीं था और न ही ऐसा क्षण कभी आगे होगा।

परमात्मा या सत्य तुमसे दूर नहीं है, वह तुम्हीं हो अपनी आत्यांतिक महिमा में, वह तुम्हीं हो अपनी परमविशुद्धता में। यदि तुम समझ लो इसे तो पतंजलि का सूत्र बहुत आसान हो जाएगा। योग के विभिन्न अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से आत्मिक प्रकाश का आविर्भाव होता है जो कि सत्य का बोध बन जाता है। वे नहीं कह रहे कि कुछ निर्मित करना है, वे कह रहे हैं कि कुछ हटाना है। तुम अपनी स्वसत्ता से कुछ ज्यादा ही हो, यही है तुम्हारी समस्या। तुमने अपने आस–पास बहुत कुछ इकट्ठा कर लिया है, हीरे पर कीचड़ जम गई है, बस कीचड़ को धोना है और अचानक हीरा प्रगट हो जाएगा।

योग के विभिन्न अंगों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि का क्षय करना है। यह कोई शुद्धता या पावनता या दिव्यता को निर्मित करने की बात नहीं है। शुद्ध तो तुम हो ही, पावन तो तुम हो ही तब तो पूरी बात बदल जाती है। बस कुछ चीजें हटा देनी हैं, काट देनी हैं, गिरा देनी हैं। गहरे में यही है संन्यास का अर्थ, त्याग का अर्थ। जो तुम नहीं हो उसे छोड़ देना है। संन्यास को त्याग कहा जाता है, पत्नी का, बच्चों का, घर–गृहस्थी का, दुकान का, मकान का। नहीं, वे तो तुम्हारे हैं ही नहीं, तुम त्याग कैसे करोगे? सिर्फ वे स्वप्नजाल, वे विचार, वे धारणाएं, शरीर से तादात्म्य जिसे तुमने स्वयं का होना समझ लिया है उसका त्याग करना है।

इस बात को गहराई से समझना, लोग संन्यास के नाम पर संसार को छोड़ के भाग जाते हैं, संसार तुम्हारा दुश्मन नहीं है। तीन परतें हमारे ऊपर जमी हैं तादात्म्य की– सबसे बाहर की परत है शरीर के साथ हमारा तादात्म्य कि यह मैं हूं। उसके और भीतर है हमारा मन, विचारों और स्मृतियों का संग्रह, उसके साथ हमारा तादात्म्य है कि यह मैं हूं। और उसके भीतर तीसरी सूक्ष्म परत है हृदय की भावनाओं के साथ हमारा तादात्म्य, यह भाव मैं हूं। जैसे प्याज में पर्त दर पर्त होती हैं ऐसे ही ठीक हमारे व्यक्तित्व पर पर्त दर पर्त चढ़ी हैं। एक–एक पर्त के प्रति हम जागरूक होते जाएं। यह भी मैं नहीं, यह भी मैं नहीं, यह भी मैं नहीं। जैसे प्याज को कोई छीलता जाए, छीलता जाए, छीलता जाए अंत में क्या बचेगा? शून्यता हाथ में रह जाएगी, कोरा आकाश, वह महाशून्य ही अनात्मा या परमात्मा हमारा वास्तविक स्वरूप है।

लेकिन अपने आप को हम तो कुछ और ही मान बैठे हैं इसलिए उपनिषद् के ऋषि कहते हैं नेति–नेति। न यह न वह, एक–एक करके छोड़ते चलो, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं। इसमें किसी की आलोचना नहीं कर रहे हैं, न तन की न मन की, न हृदय की न भाव की न विचार की, किसी की आलोचना नहीं है। लेकिन उनके साथ जो आइडेंटीफिकेशन बन गया है, द्रष्टा दृश्य में उलझ गया है; उस तादात्म्य को मिटाना है। बस, यही है असली योग!

धन्यवाद!!

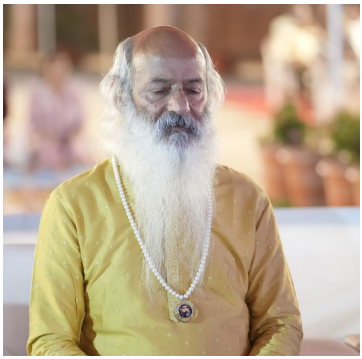

संतोषी परमसुखी

साधनपाद : 42

संतोषादनुत्तमसुखलाभः।

साधक को संतोष से, अनुपम सुख मिल जाते हैं;
अहोभाव में जीने से, सारे दुःख मिट जाते हैं।

किसी शायर ने कहा है–

ऐसे चुप हैं कि मंजिल भी खड़ी हो जैसे,
तेरा मिलना भी जुदाई की घड़ी हो जैसे।
मंजिलें दूर भी हैं, मंजिलें नजदीक भी हैं,
अपने ही पांव में जंजीर पड़ी हों जैसे।

वे जंजीरें तन और मन के साथ तादात्म्य की है, आइडेंटीफिकेशन की हैं। जितने हम बंधन में हैं, उतनी ही मंजिल दूर है और जितने ही हम मुक्त हुए, उतने ही हम मंजिल पर हैं। जिस क्षण हम तादात्म्य से पूरे मुक्त हुए, हम स्वयं ही अपनी मंजिल हैं। इसलिए अध्यात्म में, साधना में यह कहना बड़ा मुश्किल है कि मंजिल कितनी दूर है, वहां पहुंचने में कितना समय लगेगा?

अगर पूर्ण त्वरा से, पूरी समग्रता से, पूरी एकाग्रता से, लगन से कोई साधना में डूब जाए तो वह अभी और यहीं मंजिल पा सकता है। और कोई बेईमानी से, आलस्य से चले तो जन्मों–जन्मों में भी मंजिल नहीं मिल सकती। मंजिलें दूर भी हैं, मंजिलें नजदीक भी हैं। अपने ही पांव में जंजीर पड़ी हो जैसे, तेरा मिलना भी जुदाई की घड़ी हो जैसे। किसी कवि ने लिखा है –

तुम हृदय के पास हो है पास जितनी सांस ये,
दूर हो तुम दूर जितनी चिर मिलन की आस है।
तुम मधुर हो मधुर जितनी प्रीति की मृदु भावना,
किंतु कटु इतनी कि जितनी स्वार्थों की साधना।
तुम सरल हो सरल जितनी शिशु हृदय की भावना,

तुम कुटिल हो कुटिल जितनी है कपट की कामना।
तुम विकल हो विकल जितनी मृदु मिलन की कामना,
शांत हो तुम शांत जितनी है विरागी भावना।
तुम करुण हो करुण जितनी विफल अश्रुधार है,
तुम निठुर हो निठुर जितना मृत्यु का प्रहार है,
तुम हृदय के पास हो है पास जितनी सांस ये
दूर हो तुम दूर इतनी चिर मिलन की आस है।

अगर हम कामनाओं से ग्रस्त हैं, असंतुष्ट हैं, शिकायत भाव से भरे हैं, तो परमात्मा बहुत दूर है। और यदि हम संतोष को उपलब्ध हो गए तो परमात्मा बहुत निकट है, हमारी ही अंतरात्मा है, हमारा ही स्वभाव है। हम स्वीकार भाव में आ गए, अहोभाव में आ गए, हम धन्यवाद भाव में जीने लगे, हम निष्काम हुए तो उसी क्षण मंजिल हासिल हो सकती है।

पतंजलि के ये सूत्र इसी तरफ इशारा हैं। पिछले सूत्र में उन्होंने कहा कि मन की शुद्धि से प्राप्त होती है– एकाग्रता, इंद्रिय नियंत्रण की क्षमता, प्रफुल्लता और आत्मदर्शन की योग्यता। इन सबका परिणाम है, शुद्धताओं का परिणाम है– संतोष। आदमी वर्तमान में जीने लगता है, धन्यवाद भाव में जीने लगता है, लेकिन संतोष से अक्सर हम गलत अर्थ निकालते हैं।

संतोष से हम कभी समझते हैं लाचारी, कभी समझते हैं मजबूरी। कभी हम दूसरों को उपदेश देने के लिए ही संतोष की बातें करते हैं। आजकल पश्चिम में पॉजिटिव थिंकिंग का, विधायक सोच की बड़ी चर्चा होती है, लेकिन वह भी पतंजलि का संतोष नहीं है।

पतंजलि जिस संतोष की बात कर रहे हैं, वह आत्मशुद्धि का परिणाम है और पॉजिटिव थिंकिंग वाले जिस सोच की बात कर रहे हैं, वो कह रहे हैं कि जो तुमसे कमजोर है, जो तुमसे गरीब है, जो तुमसे दरिद्र है, जो तुमसे भी ज्यादा दुर्गति में है उसके साथ तुलना करो। पॉजिटिव थिंकिंग यानी और भी बुरा हो सकता था मगर ऐसा तुम्हारे साथ नहीं हुआ इसलिए खुश हो जाओ। यह कोई बहुत विधायक भावदशा नहीं है, यह असली संतोष नहीं है, झूठा संतोष है।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल पॉजिटिव थिंकिंग पर एक किताब पढ़कर सड़क पर जा रहे थे, घर से बाजार की तरफ। ऊपर से एक चिड़िया निकली और चंदूलाल के चांद पर सु–सु कर दी। चंदूलाल ने ऊपर देखा और कहा कि हे भगवान! तेरी बड़ी कृपा है कि घोड़े, गाय इत्यादि आकाश में नहीं उड़ते, लेकिन यह झूठा संतोष है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक होटल में रुका हुआ था। सुबह उठकर उसने मैनेजर से कहा कि भाई साहब आपने यह कैसा कमरा मुझे दिया है, रात भर चूहे और छिपकलियां कमरे में दौड़ मचाते रहे? मैनेजर ने गुस्से में कहा– हुजूर, संतोष रखिए संतोष, इतने कम किराए में आप कमरे में घोड़े दौड़ते देखना चाहते हैं?

यह संतोष सिर्फ सांत्वना देने का संतोष है, यह वास्तविक संतोष नहीं है।

पतंजलि और ओशो जिस संतोष की बात कर रहे हैं, वह है कन्टेंटमेंट। आत्मशुद्धि से, तादात्म्य टूटने से उत्पन्न हुए प्रफुल्लता का परिणाम। और यह मैनेजर जो कह रहा है, यह सिर्फ

चुप करने के लिए, किसी प्रकार सांत्वना दे रहा है।

मैंने सुना है कि ट्रेन में एक अजनबी से परिचय हुआ मुल्ला का। मुल्ला ने अपने परिवार की बातचीत की, उससे कुछ हालचाल पूछे। मुल्ला ने उसे बताया कि मेरी पत्नी इतनी सुंदर है, इतनी सुंदर है, समझो कि स्वर्ग की अप्सरा हो। मुल्ला बार-बार कह रहा था कि मेरी पत्नी स्वर्ग की अप्सरा है, मेरी पत्नी स्वर्ग की अप्सरा है। उस आदमी ने ईर्ष्या से जलते हुए कहा कि आप बड़े सौभाग्यशाली हैं भाईजान, मेरी पत्नी तो अभी तक जिंदा है। लेकिन मैं संतुष्ट हूं, मैं अपने आप को सांत्वना देता रहता हूं कि एक दिन तो मेरा भी सौभाग्य आएगा। कभी तो वह भी स्वर्गीय होगी।

यह भविष्य की कामना, अपने आप को सान्तवना देना वास्तविक संतोष नहीं है। कभी हम कंजूसी की वजह से, कृपणता की वजह से संतोष की बात करते हैं, वह भी सच्चा संतोष नहीं।

मैंने सुना है, महाकंजूस मारवाड़ी सेठ चंदूलाल के बेटे भोंदूलाल ने एक दिन कहा कि पिताजी मेरी दूर की नजर खराब हो गई है कृपया चश्मा खरीद दीजिए। चंदूलाल ने कहा कि आ मेरे साथ। उसे बाहर ले गए और कहा कि देख वो क्या दिखाई देता है?

भोंदूलाल ने कहा कि वो तो सूरज है। चंदूलाल ने उसे एक झापड़ मारा और कहा कि उल्लू के पट्ठे जब दस करोड़ मील का सूरज तुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है तो चश्मा पर खर्च करवाने की क्या जरूरत, तू और कितनी दूर देखना चाहता है।

और एक घटना याद आती है, सरदार विचित्तर सिंह अपनी पत्नी पर नाराज हो रहे थे कि तुमने मेरे पैंट की बटन नहीं टांकी, तीन-चार बार तुमसे कह चुका। पत्नी ने कहा कि इसमें नाराज होने की क्या बात, थोड़ा धैर्य, थोड़ा संतोष रखना सीखिए। अरे आदमी को संतोषी होना चाहिए, संतोषी सदा सुखी। नहीं टंकी बटन तो क्या हुआ, पत्नी पर नाराज हो रहे हो, पत्नी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि तुम्हारी पतलून? सरदार विचित्तर सिंह ने कहा कि पतलून ज्यादा महत्वपूर्ण है, तुम्हारे बिना मैं कहीं भी जा सकता हूं, पतलून के बिना नहीं जा सकता हूं।

नहीं, ये संतोष शब्द का उपयोग जरूर कर रहे हैं, लेकिन यहां संतोष का मतलब आलस्य है। काम करने से बचना चाहते हैं, दूसरे से कह रहे हैं संतोष रखो। पतंजलि इस संतोष की बात नहीं कर रहे हैं, पतंजलि के संतोष का तात्पर्य बिल्कुल भिन्न है। वह संतोष आंतरिक प्रसन्नता से, प्रफुल्लता से उत्पन्न होता है। उसमें एक धन्यवाद का भाव होता है, उत्सव का भाव होता है। वह कोई मन को समझाने की बात नहीं है, झूठी सांत्वना नहीं है। वैसा व्यक्ति सदा वर्तमान के क्षण में जीता है, वही उसका लक्षण है, उत्सव उसका लक्षण होगा, लाचारी और मजबूरी नहीं।

ओशो ने पतंजलि योगसूत्र पर जो व्याख्यान दी है वह अंग्रेजी में है, उसका शीर्षक है- 'योगाः दि अल्फा ऐण्ड दि ओमेगा'। उसका हिंदी अनुवाद 'पतंजलि योगसूत्र' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो समझाते हैं-

"पतंजलि कहते हैं कि संतोष से उत्पन्न होता है, अनुत्तम सुख, परमसुख और ये

शुद्धताएं अततः संतोष ले आती है। यह शब्द सर्वाधिक गुह्य शब्दों में से एक है। तुम्हें इसे ठीक से समझ लेना है, इसे अनुभव करना है, इसे आत्मसात करना है। संतोष का अर्थ है जैसी भी स्थिति है तुम बिना शिकायत के उसे स्वीकार कर लेते हो। असल में तुम उसे न केवल बिना शिकायत के स्वीकार करते हो, तुम बहुत–बहुत धन्यवाद के साथ उसका आनंद मनाते हो, उत्सव मनाते हो, यह क्षण अपने आप में संपूर्ण हो जाता है।

संतोष में तुम्हारा मन कहीं दौड़ता नहीं या तुम किसी और स्थान की इच्छा नहीं करते, तुम किसी भी ढंग से अस्तित्व से कुछ मांग नहीं करते, तुम निष्काम हो जाते हो, किसी भी चीज की कामना नहीं बची, जब मांगना मात्र गिर चुका। तुम बस अभी और यहीं, वर्तमान में प्रफुल्लित हो, आनंदित हो। जैसे वृक्षों पर पक्षी चहचहाते हैं, फूल खिलते हैं, चांद–तारे घूमते हैं, हर चीज ऐसे स्वीकृत होती है, जैसे कि बस यही है सबकुछ, संपूर्ण, सर्वश्रेष्ठ, कोई और सुधार इसमें संभव नहीं है। जब भविष्य खो जाता है, जब भावी कल खो जाता है तब संतोष उपलब्ध होता है। जब 'अभी' महत्वपूर्ण हो जाता है। एकमात्र समय एक शाश्वतता बन जाती है तब संतोष उपलब्ध होता है और उसी संतोष में पतंजलि कहते हैं, अनुत्तम सुख, परमसुख घटता है।

अनुत्तम अर्थात्, उससे उत्तम और कोई नहीं। संतोष से उत्पन्न होता है अनुत्तम सुख, इसीलिए संतोष है योगी का अनुशासन, वह संतुष्ट रहता है। अगर कोई बात तुम्हें असंतुष्ट नहीं कर सकती, अगर कोई बात तुम्हें बेचैन नहीं कर पाती, अगर कोई बात तुम्हें अपने केन्द्र से नहीं हटा पाती तो जानना तुम संतुष्ट हुए, तब परमसुख उमड़ आता है। आज इतना ही।"

ओशो के ये प्यारे वचन याद रखना और धीरे–धीरे उस संतोष की तरफ आगे बढ़ना। और उसका उपाय क्या है? तन और मन के साथ तादात्म्य को तोड़ना, भूत और भविष्य से हटकर वर्तमान में जीना शुरू करना। तब तुम्हारा हर क्षण धन्यवाद से भरा होगा।

ओशो के शब्दों में धन्यवाद का भाव ही प्रार्थना है, प्रार्थना यानि मांगना नहीं, मांगने का सवाल ही नहीं, जो मिला है वही इतना ज्यादा है, जरूरत से ज्यादा है, बहुत ज्यादा है, उसके प्रति धन्यवाद का भाव, अहोभाव का भाव। इस अहोभाव में, अनुग्रह में जीना शुरू करो। तब तुम सही अर्थों में संतुष्ट हो जाओगे।

यह कहावत निश्चित रूप से सही है– 'संतोषी परम सुखी'।

लेकिन संतोष का ठीक–ठीक अर्थ समझना, वर्तमान के क्षण में जीना शुरू करो, इस क्षण का आनंद मनाना शुरू करो। यही है मंजिल, मंजिलें दूर भी हैं, मंजिलें नजदीक भी हैं। यह हम पर निर्भर है कि हम इसे दूर करेंगे कि नजदीक करेंगे। इसी क्षण आनंदित रहो, इससे ज्यादा सहज और क्या होगा, इसलिए तो इसे 'सहजयोग' कहते हैं।

सरल बनो, सहज बनो, भूत–भविष्य की कामना त्यागो। अहंकार की जटिलता त्यागो। ओशो के इन शब्दों को आना जीवन–मंत्र बना लो–

'अभी और यहीं, हियर एंड नाऊ'

बहुत–बहुत धन्यवाद!!

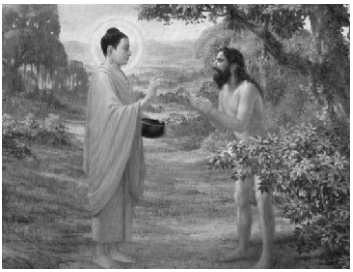

तपश्चर्या यानी सहज–सरल जीवनशैली

साधनपाद : 43

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।

तप से मिटें अशुद्धियां, शुद्ध होती इंद्रियां;
फिर जागृत होती हैं भीतर सोयी शक्तियां।

तपश्चर्या यानी सहज–सरल जीवनशैली, जिससे अशुद्धियां मिट जाती हैं। और इंद्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ शारीरिक और मानसिक शक्तियां विकसित होने लगती हैं।

पतंजलि कहते हैं कि तपश्चर्या से अशुद्धियां मिटती हैं और अशुद्धियों के मिटने से तन–मन की शक्तियां जागृत होती हैं। हमारे शरीर में बहुत सी शक्तियां सोई पड़ी हैं जिनका हमने कभी उपयोग ही नहीं किया। हमारे मन के बहुत से केन्द्र प्रसुप्त हैं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क का एक छोटा सा हिस्सा ही काम कर रहा है। लेकिन प्रकृति कोई भी चीज व्यर्थ तो नहीं बनाती। मस्तिष्क का शेष हिस्सा किसलिए बना होगा, जरूर उसका भी कोई काम होगा। हम उसका उपयोग अभी तक नहीं सीख पाए हैं। और तपस्या के द्वारा अशुद्धियों को मिटाकर हम अपने तन–मन की शक्तियों को जागृत कर सकते हैं। याद रखना यह कोई चमत्कार नहीं है।

कोई व्यक्ति टेलीपैथी सीख जाए या माइण्ड रीडिंग की कला, दूसरों के विचार पढ़ने की कला सीख जाए, इसमें कुछ भी चमत्कार नहीं है। हां, यह कला सामान्य लोगों को नहीं मालूम है। उसने अपनी एक विशेष शक्ति जागृत कर ली।

ऐसा समझें कि आप अपना मोबाइल फोन लेकर कहीं जंगल में चले जाएं और वहां अपने फोन के द्वारा अपने परिवारवालों से बात कर रहे हों तो जंगल के आदिवासी समझेंगे कि बड़ा चमत्कार हो रहा है। यह छोटी सी चीज आप कान के पास रखकर अपने घरवालों से बात कर रहे हैं। लेकिन हम जानते हैं मोबाइल फोन की मेकैनिज्म को, हमें पता है कि इसमें चमत्कार कुछ

भी नहीं है। लेकिन आदिवासियों के लिए यह चमत्कार जैसा लगेगा। ठीक इसी प्रकार से हम सामान्यतः जिन चीजों को चमत्कार कहते हैं उनमें भी चमत्कार कहीं नहीं है, सब चीजें एक नियमबद्ध तरीके से चल रही हैं। प्रकृति के परम नियम हैं उसके खिलाफ कुछ भी नहीं होता। सिर्फ हमारे अज्ञान के कारण वे हमें चमत्कार जैसी लगती हैं। हमने कभी प्रयास नहीं किया।

आपने एक चाक की मोना–साइकिल चलाते हुए लोगों को सर्कस में देखा होगा। आपको लगेगा चमत्कार है क्योंकि इसका आपने कभी अभ्यास नहीं किया। लेकिन जरा याद करो जब आप दो चक्के की साइकिल चलाना सीखे थे तब आपको भी बड़ा विचित्र लगता था कि कैसे चलेगी, कैसे संतुलन सधेगा, असंभव सा लगता था, लेकिन जब आप संतुलन साधना सीख गए तो अब यह सहज और सरल बात हो गई।

एक छोटा बच्चा चारों हाथ–पैर से खिसकता, वह आश्चर्य से दूसरे लोगों को दो पैरों पर खड़ा देखता, उसको बड़ा चमत्कार सा लगता कि लोग कैसे खड़े हैं, दो पैरों पर चल रहे हैं, असंभव जान पड़ता। लेकिन एक दिन वह भी कोशिश शुरू करता है और धीरे–धीरे वह भी चलना सीख जाता है। चमत्कार कुछ भी नहीं है। ठीक इसी प्रकार हमारे शरीर में, मन में बहुत सी शक्तियां सोई हुई पड़ी हैं, उन्हें जगाना होगा, तपस्या के द्वारा।

तपस्या से हम अक्सर एक गलत अर्थ निकालते हैं, वह आत्मपीड़ा, स्वयं को सताना। वह तप का अर्थ नहीं है, तो तप का वास्तविक अर्थ ठीक से समझ लें। अशुद्धियों का अर्थ है बाहर से आए विजातीय प्रभाव जो हमारे स्वाभाव में मिश्रित हो गए, उन विजातीय प्रभावों को निकालना है तो हम शुद्ध हो जाएंगे। और सारी तपस्या का केन्द्र बस यही है। विजातीय प्रभावों को हटाना और अपने मूल स्वभाव में, अपनी मौलिक प्रकृति में स्थापित होना। जिसे हम कहें वास्तविक रूप से स्वयं में स्थित होना।

अतः तप यानी आत्मपीड़ा नहीं, लेकिन ऊपर से देखने में समझना मुश्किल है। एक आदमी उपवास कर रहा है, वास्तव में वह आदमी स्वयं को सता रहा है। वह स्वयं को भूखा मार रहा है अथवा अपना शुद्धिकरण कर रहा है, यह बाहर से कहना कठिन है, इसे भीतर से जानना होगा, उसके इंटेशन क्या हैं, उसका इरादा क्या है। उसे उपवास करने की कला आती भी है कि नहीं। उपवास अपने आप में एक विज्ञान है, कितना खाना, क्या खाना, कब खाना, कब नहीं खाना, सहज और स्वाभाविक होकर अगर कोई व्यक्ति उपवास करे तो निश्चित रूप से बड़ा उपयोगी होगा।

यहां अमृत समाधि में, ओशोधारा में हम सूक्ष्म शरीर को बाहर निकालने का विज्ञान सिखाते हैं, उसमें वे लोग आसानी से सफलता हासिल कर लेते हैं जो अति भोजन नहीं करते। जो लोग अति भोजन के आदी हैं, वे अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर नहीं निकाल पाते। उनका स्थूल शरीर वजनदार हो गया, गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव ज्यादा हो गया, सूक्ष्म शरीर आसानी से उड़ न सकेगा। हर चीज का एक विज्ञान है, उपवास का भी एक विज्ञान है।

कोई व्यक्ति उपवास किस भांति कर रहा है आत्मपीड़ा के रूप में अथवा शुद्धिकरण की खातिर, यह बाहर से जानना संभव नहीं, वह व्यक्ति भीतर से ही जानता है। हमारे शरीर के

भीतर सात परतें हैं, एक के पीछे एक सूक्ष्म शरीर हैं। उपवास के द्वारा उन सबको शुद्ध किया जा सकता है। शाकाहार करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है, मांसाहार नहीं। तपस्या का एक अंग है, सम्यक् आहार, मांसाहार जरा भी सम्यक् नहीं है।

मनुष्य की फिजियोलॉजी, उसकी शरीर की संरचना बताती है कि वह प्राकृतिक रूप से शाकाहारी है। और जब हम किसी पशु का वध करते हैं तब वह क्रोध में होता है, भयभीत होता है। क्रोध में, भय में, बेचैनी में, डर की अवस्था में उसके शरीर के भीतर बड़े तीव्र जहरीले पदार्थ उत्सर्जित होते हैं, भय के हॉर्मोन्स निकलते हैं, वे सारे जहरीले पदार्थ उसके रक्त में और मांस में पहुंच जाते हैं। उस मांस को भोजन के रूप में लेने वाला व्यक्ति परोक्ष रूप से इन जहरीले पदार्थों का सेवन कर रहा है। यह मांसाहारी भोजन आध्यात्मिक साधना में सहयोगी नहीं होगा, शाकाहार सहयोगी होगा।

शाकाहार तुम्हें हल्का-फुल्का करेगा, प्रफुल्लित करेगा, मांसाहार तुम्हें भारी करेगा। मनुष्य आहार के बारे में भटक गया है, निद्रा के बारे में भटक गया है, विशेषकर विद्युत की खोज के बाद आज का आधुनिक शहरी मनुष्य अपनी स्वाभाविक नींद की पूर्ति भी नहीं कर रहा है। बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई है। तो सम्यक् निद्रा लेना आज की दुनिया में एक तपस्या है। तो ख्याल रखें मैं तपस्या किसे कह रहा हूं, अपने सहज स्वभाव के तारतम्य में, उसके साथ ताल-मेल बिठाकर जीना तपस्या है।

मैंने सुना है एक लतीफा, एक पादरी चर्च में भाषण देने आया और उसने बताया कि तपस्वी वही हो सकता है जो साहसी हो, हिम्मतवर हो, संकल्पवान हो। उसने एक उदाहरण दिया कि तीस स्कूल के बच्चे पिकनिक मनाने गए थे। दिन भर के थके-मांदे रात सोने का वक्त आया। ठंड की रात थी, 29 बच्चे कंबल तानकर सो गए, लेकिन एक बच्चे ने सोने के पहले ईसामसीह की प्रार्थना किया और तब सोया, यह है तपस्वी। अगले सप्ताह वह पादरी फिर आया और उसने बच्चों से पूछा कि बच्चों, तुम कोई उदाहरण दो तपस्या का। एक बच्चे ने खड़े होकर कहा कि मैंने सुना है कि तीस पादरी पिकनिक मनाने गए थे। दिन भर के थके-मादे ठंड का मौसम। रात को 29 पादरी तो प्रार्थना करने बैठ गए, एक पादरी कंबल ओढ़कर सो गया, यह है साहसी और तपस्वी।

निद्रा स्वाभाविक है, इसलिए अपने स्वभाव के साथ जीना। स्वभाव के विपरीत लड़ना तपस्या नहीं है, अतीत में यह बड़ी भूल और भ्रांति रही है, इससे सावधान! दृश्य से तादात्म्य जब हो जाता है, वह अशुद्धि है। तपस्या और अशुद्धि इन दोनों शब्दों को खूब अच्छे से समझ लेना। हम जो सुनते हैं, देखते हैं उसी से हमारा आइडेंटीफिकेशन हो जाता है।

मैंने सुना है एक अजनबी आदमी किसी नए शहर में किसी नाई की दुकान पर अपनी हजामत बनवा रहा था। नाई ने अपनी चादर उसकी गर्दन में लपेट दिया था, दाढ़ी पर साबुन लगा दी थी, तभी एक लड़का दौड़ा-दौड़ा आया और उसने कहा कि शेख साहब, शेख साहब, आपके मकान में आग लग गई है, जल्दी चलिए। उस आदमी ने अपने गर्दन पर लपेटा हुआ कपड़ा फेंका, साबुन लगी हुई चेहरे लिए भागा। करीब 15-20 कदम भागने के बाद उसे याद

आया कि अरे! मेरा नाम तो शेख साहब नहीं, मेरा नाम तो चंदूलाल है और दूसरी बात यह है कि इस शहर में मेरा कोई मकान ही नहीं है, जिसमें आग लग सके।

हम जो सुनते हैं और देखते हैं, उससे हमारा तादात्म्य तुरंत बैठ जाता है। इस तादात्म्य को तोड़ना शुद्धिकरण है, तपस्या है। ओशो ने तपस्या की एक बहुत सुंदर विधि दी है, वह है रेचन या कैथार्सिस। अपने भीतर दमित भावनाओं को जो कि सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा की वजह से हमारे भीतर आ गई हैं, उन्हें बाहर निकालने का उपाय, कैथार्सिस या रेचन।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी पर अक्सर नाराज होता रहता था, लेकिन पत्नी सदा प्रसन्न रहती थी। एक दिन मुल्ला ने पूछा कि मैं तुम पर इतना क्रोधित होता हूं फिर भी तुम मुस्कराती रहती हो, उसका रहस्य क्या है? पत्नी ने कहा कि इसका रहस्य यह है कि जब मुझे क्रोध आता है, मैं टॉयलेट में चली जाती हूं और टॉयलेट सीट साफ करने लगती हूं। मुल्ला ने कहा कि मैं कुछ समझा नहीं, पत्नी ने कहा कि यह न पूछो तो अच्छा है, यह सीक्रेट है।

जब नसरुद्दीन ने बहुत 'इन्सिस्ट' किया कि बताना ही पड़ेगा, मैं भी इस विधि का उपयोग करूंगा। पत्नी ने कहा कि तुम इस विधि का उपयोग नहीं कर पाओगे, मैं ही कर पाती हूं। बहुत जिद करने पर पत्नी ने बताया कि मैं तुम्हारे टूथ ब्रश से सीट साफ करती हूं।

मैं आपसे कहूंगा कि टूथब्रश से तो सीट साफ न करें, लेकिन कभी दो–चार दिन पर, घंटा भर के लिए अपने खिड़की–दरवाजे बंद करके कमरे में सहज–स्वाभाविक हो जाएं। अगर क्रोध आपके भीतर है तो उसे प्रगट हो जाने दें, हवा में घूंसे चलाऐं, चीखें, चिल्लाऐं, गाली दें या बिना आवाज के वे सारे भाव विसर्जित कर दें जो आपके भीतर दमित हैं और तब आप पाएंगे आपका तन और मन खूब शुद्ध हो गया।

एक हल्कापन आपके भीतर आया और उसके साथ ही आप पाएंगे एक प्रकार की शुद्धता आने लगी, प्रफुल्लता आने लगी और तन–मन की सोई हुई शक्तियां जागृत होने लगीं। इसको समझाते हुए परमगुरू ओशो ने पतंजलि योगसूत्र में जो कहा है, उसका हिन्दी अनुवाद मैं पढ़कर आप लोगों को सुनाता हूं–

"सारे चमत्कार, नियमों के पता न होने के कारण, चमत्कार लगते हैं। योग कहता है कि संसार में कहीं कोई चमत्कार नहीं होते, क्योंकि चमत्कार का मतलब है कि ऐसी चीज जो नियम के विरुद्ध है, जो संभव ही नहीं है। सार्वभौमिक नियम के विरुद्ध होने की कोई संभावना कैसे हो सकती है, ऐसी कोई संभावना नहीं है। हां, यह हो सकता है कि लोगों को नियम मालूम न हो। जैसे–जैसे तुम ज्यादा गहरे उतरते हो शुद्धता में, पूर्णता में, सिद्धियां संभव हो जाती हैं।

उदाहरण के लिए यदि तुम अपने स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर को, ऐस्ट्रल बॉडी को तुम बाहर ला सको, तो तुम बहुत सी बातें जान सकते हो। तुम जान सकते हो जो कि चमत्कार जैसी लगेंगी, लेकिन वह चमत्कार नहीं है। पतंजलि कहते हैं तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है और इस प्रकार हुई इंद्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ शारीरिक और मानसिक शक्तियां जागृत होती हैं।"

पतंजलि के साथ एक–एक कदम हम और आगे बढ़ेंगे। आज इतना ही। धन्यवाद!!

स्वाध्याय यानी आत्म–निरीक्षण

साधनपाद : 44

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।

योगी के जीवन में स्वाध्याय घटित होता है;
दिव्यता के संग तब एकत्व फलित होता है।

स्वाध्याय के द्वारा आंतरिक दिव्यता के संग तादात्म्य बन जाता है। सदगुरु ओशो समझाते हैं कि स्वाध्याय का अर्थ शास्त्रों का पठन–पाठन नहीं, मनोविश्लेषण भी नहीं, बल्कि आत्म–निरीक्षण है।

आज के सूत्र को समझने के लिए पूर्व सूत्रों का थोड़ा सा स्मरण करें। पतंजलि ने पूर्व सूत्रों में कहा कि मनोशुद्धि से उत्पन्न होती है प्रफुल्लता, एकाग्रता की क्षमता, इंद्रिय नियंत्रण की क्षमता और आत्मदर्शन की योग्यता। हम सबमें आत्मदर्शन की योग्यता की बहुत कमी है। हम लगातार बहिर्मुखी हैं और बाहर का निरीक्षण कर रहे हैं। स्वयं का अवलोकन करने का न समय है, न सूझबूझ है। जब ये विकसित हो जाएं तभी शुरू होती है, तपश्चर्या।

ओशो ने तपश्चर्या के जो अंग गिनाए हैं, वे हैं सहजता, सरलता, अखण्डता, रेचन, सम्यक् श्रम, सम्यक् विश्राम, सम्यक् भोजन, सम्यक् निद्रा। ओशो की एक बड़ी प्रसिद्ध किताब है 'अंतर्यात्रा', इसमें उन्होंने शरीर की शुद्धि और मन की शुद्धि के विभिन्न उपायों की विस्तार से चर्चा की है। ठीक इसी प्रकार एक और किताब है 'महावीर वाणी–भाग 1'। इसमें महावीर के केवल एक ही सूत्र की व्याख्या 18 प्रवचनों में की है। उसमें 12 प्रकार के तप समझाए हैं। तो तपश्चर्या को अगर ठीक से समझना हो, विस्तार से समझना हो तो ओशो की किताब महावीर वाणी पढ़ें या यह प्रवचनमाला सुनें। अब हम आते हैं आज के सूत्रों पर।

पतंजलि कहते हैं कि स्वाध्याय के द्वारा भीतर की दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है। पहले उन्होंने कहा कि परिधि के साथ तादात्म्य को तोड़ो। हम शरीर को और मन को,

स्वयं का होना समझ बैठे हैं, उससे नाता तोड़ो। अब अगला कदम भीतर की दिव्यता के साथ नाता जोड़ो। केन्द्र के साथ स्वयं को एक जानो। यह तभी संभव है जब हम आत्मनिरीक्षण शुरू करें।

साधक के लिए स्वाध्याय का अर्थ है, आत्मनिरीक्षण, सेल्फ ऑब्जर्वेशन। बुद्ध उसे कहा करते थे 'सम्मासती'। सतत अपना स्मरण रखो। तुम क्या कर रहे हो, क्यों कर रहे हो, कैसे कर रहे हो, तुम्हारे भीतर क्या विचार चल रहे हैं, तुम्हारे भीतर कौन सी भावदशाएं हैं, क्यों हैं, जो भी कुछ तुम्हारे भीतर हो रहा है वह क्यों हो रहा है? जब तुम उसे जानते हो, तब स्वाध्याय घटित होता है।

जिस प्रकार से अशुद्धि और तपस्या का गलत अर्थ जनमानस में प्रचलित है, ठीक उसी प्रकार स्वाध्याय का भी एक गलत अर्थ लोकमानस में प्रचलित है। स्वाध्याय से लोग समझते हैं, शास्त्र का अध्ययन। लेकिन अगर स्वाध्याय का अर्थ शास्त्र अध्ययन होता तो पतंजलि खुद ही 'शास्त्र अध्ययन' शब्द का प्रयोग करते। इस 'स्वाध्याय' शब्द का प्रयोग क्यों करते? स्वाध्याय शब्द से बिल्कुल स्पष्ट है, उसका शाब्दिक अर्थ देखें, स्वयं का अध्ययन, सेल्फ ऑब्जर्वेशन।

ओशोधारा में हम सभी साधकों से निवेदन करते हैं कि रोज रात सोने के पहले पांच मिनट बैठ जाएं और पिछले चौबीस घंटे में उनके जीवन में क्या महत्त्वपूर्ण घटना घटी, उनके भीतर क्या प्रतिक्रिया हुई जरा उसे ख्याल करें और डायरी में नोट करें। यह डायरी लेखन एक बहाना है, स्वाध्याय का, वरना हम कभी स्वाध्याय करते ही नहीं। और जब वह घटना घट रही होती है, उससे हमारा आइडेंटीफिकेशन बहुत ज्यादा होता है।

लेकिन चौबीस घंटे बाद उतना आइडेंटीफिकेशन नहीं रह जाता। फिर हम एक वैज्ञानिक दृष्टि से निष्पक्ष होकर स्वयं का अध्ययन कर सकते हैं। बारह घंटे पहले कोई घटना घटी अब उसका ऑब्जर्वेशन करना बहुत आसान है। तो डायरी लेखन का जो इतना आग्रह हम करते हैं, उसका कारण यही है कि उससे स्वाध्याय घटित होता है। और जब स्वाध्याय घटित होता है तब हमारे भीतर जो–जो पाप है वह विदा होने लगता है और जो–जो पुण्य है वह शेष बचने लगता है।

ओशो ने पाप और पुण्य की परिभाषा की है– निरीक्षण के द्वारा, अवलोकन के द्वारा जो विलीन हो जाए वह है पाप और जागरूकता के द्वारा, निरीक्षण के द्वारा जिसमें वृद्धि हो, जिसमें विकास हो वह है पुण्य। तो धीरे–धीरे हमारे भीतर से पाप विदा होते जाएंगे, पुण्य ही पुण्य शेष बचेंगे, दिव्यता ही दिव्यता। भगवत्ता से ओतप्रोत हमारी अंतरात्मा बचेगी। और उसके साथ एकत्व फलित हो जाता है। तो स्वाध्याय उसका उपाय है।

सतत अपने आप को कसौटी पर कसते रहो, देखते रहो, हमारे भीतर जो षट्रिपु हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि। अहंकार के विविध रूप, इनको जरा गौर से ऑब्जर्व करो और तुम पाओगे वे विदा होने लगे।

मैंने सुना है मारवाड़ी सेठ चंदूलाल के बारे में, एक टैक्सी में यात्रा कर रहे थे। ढलान पर गाड़ी जा रही थी। ड्राइवर ने कहा कि सेठजी बड़ी मुश्किल हो गई, कार का ब्रेक फेल हो गया है, जान खतरे में है क्या करूं? चंदूलाल ने कहा जान जाए भाड़ में, सबसे पहले तू मीटर बंद कर।

आदमी के भीतर भयानक लोभ है। जरा अपने भीतर के लोभ को देखो, जरा अपने भीतर के क्रोध को देखो, छोटी-छोटी बातों में तुम्हें क्रोध आ जाता है। इसको जब तुम ऑब्जर्व करोगे यह लोभ विदा हो जाएगा, यह क्रोध विदा हो जाएगा। कुछ और करने की जरूरत नहीं है, क्रोध से कोई संघर्ष नहीं करना है, लड़ना नहीं है। क्योंकि लड़ने की प्रवृत्ति स्वयं ही क्रोध का लक्षण है। अगर कोई व्यक्ति अपने क्रोध से लड़ रहा है तो वास्तव में क्रोध ही क्रोध से लड़ रहा है, यह और भी ज्यादा क्रोधी हो जाएगा।

कई लोग लोभ से लड़ने की कोशिश करते हैं, लेकिन वे जो उपाय कर रहे हैं वे लोभ को ही बढ़ाने के उपाय हैं। उनके धर्म गुरू समझा रहे हैं कि यहां मंदिर में दान करो, ब्राह्मणों को दान दो, गरीबों की सेवा करो स्वर्ग में अनंत गुना मिलेगा, तुम एक पैसा दोगे वो दस लाख देगा। यह तो लॉटरी हो गई, यहां एक पैसा दो वहां दस लाख मिलेंगे। यहां हजार रुपए दान करो, वहां करोड़ों मिलेंगे। यह आदमी लोभ से कहां मुक्त हुआ, इसका लोभ तो और बढ़ गया। यह जो भी दान कर रहा है, उसके लोभ का हिस्सा हो गया। नहीं, इस प्रकार लोभ से मुक्त नहीं हो सकते। क्रोध से मुक्त नहीं हो सकते, ईर्ष्या से मुक्त नहीं हो सकते, मुक्त होने का उपाय एक ही है, स्वाध्याय, स्वयं का अध्ययन करो। लेकिन हम बिल्कुल भी स्वाध्याय नहीं करते।

मैंने सुना है एक अजायबघर देखने के लिए मुल्ला नसरुद्दीन गया। जब बाहर निकला तो अजायबघर के पास ही एक दुकान थी, उसके भीतर गया। एक तस्वीर उसने देखी बहुत पसंद आई। उसने दुकानदार से पूछा कि यह बंदर की तस्वीर बड़ी प्यारी है, कितनी कीमत है? दुकानदार मुस्कराया और कहा कि श्रीमान जी, यह बंदर की तस्वीर नहीं, दर्पण है, आप अपना ही चेहरा देख रहे हैं। हमने सिर्फ अपना चेहरा नहीं देखा है ठीक से, हम स्वाध्याय करते ही नहीं, हमारी आत्मदर्शन की योग्यता बिल्कुल खो गई है। और हम जो अध्ययन भी करते हैं बाहर, वह भी सही मायने में ठीक नहीं है। उसमें भी बड़ी भ्रांति और भूलें हैं।

मैंने सुना है, कि एक उच्च अध्ययन, ऊंची डिग्रियां प्राप्त की हुई नई बहू घर में आई। पहले ही दिन होम साइंस पास बहू रानी ने जब मेहमानों के लिए हलवा बनाया तो वह गर्म-गर्म हलवा लेकर निर्वस्त्र ही डाइनिंग हॉल में आ गई। उसका पति चौंका, ससुर चौंके, सास चिल्लाई की बहू क्या कर रही हो? बहू बोली की नई कुकिंगबुक की रेसिपी में लिखा है, सर्व हॉट विदाउट ड्रेसिंग। हम तो बाहर भी जो अध्ययन करते हैं उसका भी अर्थ का अनर्थ हो जाता है, अर्थ तो हमीं निकालेंगे न।

कंप्यूटर की नौकरी करने ऑफिस में विचित्तर सिंह अप्वाएंट किए गए। नई-नई

नौकरी के पहले ही दिन विचित्तर सिंह दिनभर काम में बहुत व्यस्त रहे, यहां तक कि लंच टाइम में भोजन के लिए भी नहीं उठे। मालिक देखता रहा दिनभर, रात को भी वह देर तक काम करता रहा, ओवरटाइम। रात को जब विचित्तर सिंह जाने लगा, मालिक ने उसकी तारीफ करने के बाद पूछा कि आज तुमने दिन भर में क्या काम किया? तुमने लंच भी नहीं लिया, शाम चाय भी नहीं पी, देर रात तक काम करते रहे, क्या–क्या किया?

विचित्तर सिंह ने कहा कि सर, कंप्यूटर में की बोर्ड के अक्षर अल्फाबेटिकली नहीं थे वे मैंने उन्हें अल्फाबेटिकली जमा दिया।

स्वाध्याय के द्वारा तुम्हारा जीवन जम जाएगा, मूर्च्छा के कारण सारी चीजें अस्त–व्यस्त हैं। इस सूत्र की व्याख्या हमारे प्यारे सत्गुरू ओशो ने इस प्रकार से की है –

स्वाध्याय के द्वारा दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है। व्यक्ति को अपना अध्ययन करना होता है, यही एकमात्र ढंग है, दिव्यता का, दिव्यता तक पहुंचने का। पतंजलि नहीं कहते कि मंदिर जाओ, वे नहीं कहते कि चर्च जाओ, वे नहीं कहते कि कोई धार्मिक अनुष्ठान करो। नहीं, भगवत्ता के साथ एक होने का वो ढंग नहीं है।

स्वाध्याय करो, स्वयं का अध्ययन करो, क्योंकि वह तुममें ही छिपा है, तुम्हारे भीतर छिपा है। वह तुम्हारा अंतर्तम केन्द्र है, तुम स्वयं मंदिर हो, अपने भीतर उतरो। अपना अध्ययन करो, तुम एक अद्भुत घटना हो, देखो, जानो, पहचानो स्वयं को। उन सबका अध्ययन करो जो तुम हो और जिस दिन अपने को पूरी तरह जान लेते हो, वह प्रगट हो जाएगा। वह तुम्हारे भीतर ही छिपा है, वह तुम्हीं हो, अपने आत्यांतिक प्राणों में। अपना अध्ययन करना सीखो। पतंजलि के 'स्वाध्याय' का मतलब वही है, जो गुरजिएफ के 'सेल्फ रिमेम्बरिंग' का था। स्वयं का स्मरण बनाए रखना और ध्यानपूर्वक देखते रहना।

तुम लोगों के साथ कैसे संबंधित होते हो, ध्यान देना इस बात पर। संबंध दर्पण है, तुम अजनबियों से किस तरह संबंधित होते हो, जिन लोगों को तुम जानते हो उन लोगों के साथ तुम कैसे संबंधित होते हो, तुम अपने नौकर के साथ और अपने मालिक के साथ किस भांति का व्यवहार करते हो, बस जागरूक होकर देखते रहना। प्रत्येक संबंध को एक दर्पण, एक छवि की भांति उपयोग करना और ध्यान देना कि किस प्रकार तुम अपने मुखौटे बदलते हो। अपने लोभ को देखना, ईर्ष्या को, वैमनस्य को, भय को, अपनी चिंताओं को, अपनी माल्कियत जमाने के ढंग को देखना, बस देखते रहना और सजग रहना। कुछ भी करने की जरूरत नहीं है, यही इस सूत्र का सौंदर्य है।

पतंजलि कहते हैं बस, स्वयं का अध्ययन, यही सजगता काम करेगी। जब तुम अपनी पूर्ण अंतःसत्ता का साक्षात्कार करोगे तो एक रूपांतरण घटित होगा। जो–जो तुम्हारे भीतर असत्य, अशिव, असुंदर है, वह विलीन हो जाएगा। मात्र स्वाध्याय से और सत्यं शिवं सुंदरं, दिव्यता के सारे आयाम अनावृत हो जाएंगे और उनके साथ तुम्हारा तादात्म्य हो जाएगा, एकत्व फलित होगा। उस दिन तुम कह सकोगे, अहं ब्रह्मास्मि। धन्यवाद!!

समर्पण का विज्ञान

साधनपाद : 45

समाधि सिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्

जो साधक ईश्वर के प्रति समर्पित होता है,
वही समाधि सिद्धि से आलोकित होता है।

समाधि–प्रकाश प्रगट होता है ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर। सद्गुरु ओशो कहते हैं– समर्पण किया नहीं जा सकता, वह घटता है।

आज का सूत्र बड़ा अद्भुत है, गौर से समझना और बड़ी सहानुभूतिपूर्वक समझना। पतंजलि कहते हैं– समाधिः सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्। जो व्यक्ति प्रभु के प्रति समर्पित हो जाते हैं, उन्हें समाधि की सिद्धि होती है, समाधि का पूर्ण आलोक प्रगट होता है।

स्वभावतः हमारे मन में सवाल उठता है कि जब समर्पण से ही सब कुछ होता है तो अष्टांग योग के इन शेष सात कदमों की जरूरत क्या है, आवश्यकता क्या है? क्या उन्हें हम बाईपास नहीं कर सकते? यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि... जब अंत में ही समाधि आती है और वह समर्पण से ही आती है तो क्या आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये सब छोड़े जा सकते हैं? नहीं! नहीं छोड़े जा सकते। पीछे के सूत्रों में हमने जिन–जिन योगों की चर्चा की है, वे सब पूरे करने होंगे, उसके बाद ही जाकर समर्पण घटित हो सकता है।

समर्पण कोई क्रिया नहीं है जो हम कर सकें, समर्पण एक घटना है। जैसे मैं आपसे कहूं कि जाइए फलाने व्यक्ति को प्रेम करिए तो आप क्या करेंगे? आप प्रेम कैसे कर सकते हैं? प्रेम करना आपके बस में नहीं है, प्रेम तो हवा का एक झोंका है। हां, खिड़की खोलकर रखें, झोंका आ जाए तो आ जाए, न आए तो न आए, कुछ किया नहीं जा सकता।

हम ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकते हैं कि हम अवरोध उत्पन्न न करेंगे, हम अपने खिड़की, दरवाजे, द्वार खुले रखेंगे, अब अपने हृदय की खिड़कियां खोलकर रखेंगे। प्रेम सीधा–सीधा किया नहीं जा सकता, परोक्ष उपाय हो सकते हैं, बस। समर्पण प्रेम का ही बड़ा

रूप है। समर्पण का अर्थ है, सारे अस्तित्व के प्रति तथाता का भाव, स्वीकार का भाव। जब हम किसी एक व्यक्ति से प्रेम करते हैं तो उसका अर्थ है, उस व्यक्ति को हमने स्वीकारा। वह जैसा भी है, जो भी है हमें ठीक लगता है, हम उसके प्रेम में पड़े।

जब यही प्रेम विराट रूप लेता है तब वह तथाता भाव या समर्पण भाव बन जाता है। ईश्वर प्रणिधान उसी को पतंजलि कह रहे हैं, जिसने अपना सारा जीवन प्रभु के लिए अर्पित कर दिया। भाषा में तो कहना पड़ता है– कर दिया। लगता है यह कोई क्रिया है, इसलिए मैं कह रहा हूं गौर से समझना, यह कोई क्रिया नहीं है।

जो व्यक्ति शुद्धिकरण की प्रक्रिया से गुजरा, जिसने पतंजलि के पिछले सूत्रों का पालन किया, शुद्धता साधी, स्वाध्याय साधा, प्रफुल्लता साधी, उसके जीवन में सहज रूप से समर्पण घटित होता है। एक दूसरे उदाहरण से समझें, हम एक बीज को जमीन में बो सकते हैं, हम उसे खाद पानी से सींच सकते हैं, पौधे की सुरक्षा का इंतजाम कर सकते हैं, कीटनाशक दवाएं छिड़क कर कीड़े–मकोड़ों से पौधे को बचा सकते हैं, लेकिन हम पौधे में फूल नहीं खिला सकते! फूल अपने आप खिलते हैं।

जापान के झेन फकीर कहते हैं– वेन द स्प्रिंग कम्स द ग्रास ग्रोज बाई इटसेल्फ। हम खींच–तान करके उन्हें पैदा नहीं कर सकते। हमें इंतजार करना होगा, आएगी ऋतु बसंत की और फूल अपने आप खिलने लगेंगे। उसके पहले हमने भूमिका तैयार कर दी, हमने बीज बोए, पानी सींचा, सब इंतजाम किया। तो अष्टांग मार्ग को ऐसे ही समझना, शेष सात अंग भूमिका निर्मित करने के उपाय हैं, उनके बिना समाधि फलित नहीं होगी।

यद्यपि जब समाधि फलित होगी तब आप कभी न कह सकेंगे कि मैंने समाधि को पाया, कि मैंने कुछ किया उसकी वजह से समाधि आई। आप सदा जानेंगे कि परमात्मा के कृपास्वरूप, अस्तित्व की अनुकंपा, एक उपहार की भांति समाधि मुझे मिली, इसलिए समाधि के साथ कभी भी अहंकार का भाव और कर्ताभाव नहीं जुड़ सकता। तो केवल ईश्वर समर्पण से ही समाधि घटती है, लेकिन अष्टांग मार्ग को पूरा करना होगा। उससे रास्ते के अवरोध और बाधाएं हटेंगे।

आपने बीज बो दिया और उसके ऊपर चट्टान रखी हुई है, कि घास–पात लगा हुआ है, कि भेड़–बकरियां आकर चर जाती हैं तो फिर ये पौधा पनप नहीं पाएगा, फूल खिल नहीं पाएगा। तो इतना तो आपको करना होगा कि बीज चट्टानों में न दबा हो, बीज को पानी मिल जाए, भेड़–बकरियां उसे चर न जाएं, बच्चे उखाड़कर न फेंक दें, ठीक समय पर खाद–पानी मिल जाए। सारी साधना, यम–नियम से लेकर धारणा–ध्यान तक, बस ऐसी ही है।

....या जैसा मैंने कहा दरवाजे–खिड़की खोलना, सूरज उगा है, बाहर हवाएं चल रही हैं, यदि तुमने खिड़की–दरवाजे बंद रखे तो भीतर अंधेरा ही रहेगा, हवा के ताजे झोंके भीतर न आ सकेंगे। लेकिन खिड़की दरवाजे खोलने से हवा नहीं चलती, खिड़की–दरवाजे खोलने से सूरज नहीं उगता। तुम कभी ये न कह सकोगे कि देखो मैंने सूरज को उगा दिया, कि मैंने हवा को चला दिया। हवा स्वतः चलती है, सूरज एक नियम से, स्वयमेव उगता है, बस ऐसे ही समाधि

फलित होती है, समाधि का आलोक प्रकट होता है। तो शुद्धता के बाद, स्वाध्याय के बाद, समर्पण सहज रूप से घट जाता है, यह किया नहीं जाता, इसलिए इसकी कोई विधि नहीं है, इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया जा सकता और जो लोग बहुत ज्यादा विधियों में उलझ जाते हैं, वे कर्ताभाव से, अहंकारभाव से ग्रस्त हो जाते हैं। अहंकारभाव को छोड़ना खिड़की दरवाजे को खोलने के समान है।

यह अहंकारभाव क्या है, इसे थोड़ा समझना। मैंने सुना है तीन चींटियां जा रही थीं और सामने से एक हाथी आ रहा था। वे तीनों चींटियां आपस में चर्चा करने लगीं। पहली ने कहा कि मैं इस दुबले–पतले, मरियल प्राणी को कुचल कर रख दूंगी।

दूसरी चींटी बोली, बहन इसको कुचलना नहीं, हम सिर्फ इसकी एक टांग तोड़ कर रख देंगे बस, ज्यादा कष्ट नहीं देंगे।

तीसरी चींटी और महाअहंकारी थी, लेकिन बोली बड़ी विनम्रतापूर्वक– नहीं–नहीं बहन ऐसा मत करो, यह तो बिल्कुल अनुचित होगा। वह बेचारा अकेला है और हम तीन–तीन हैं, ऊपर से वह निहत्था भी है, आज उसे छोड़ दो, जाने भी दो।

छोटी सी चींटी को भी विराट अहंकार है!

अहंकार में हम बिल्कुल नशे में होते हैं। हम भूल जाते हैं कि हम क्या कह रहे हैं, हम क्या कर रहे हैं। अहंकार एक प्रकार का अंधापन है, यह समाधि के आलोक को देखने न देगा।

मैंने सुना है महाअहंकारी सरदार विचित्तर सिंह बंबई गए हुए थे। वहां से उन्होंने रात बारह बजे अपने घर लुधियाना फोन किया। दरबान ने फोन उठाया। विचित्तर सिंह ने पूछा– कौन बोल रहे हो? उसने कहा हुजूर दरबान बोल रहा हूं। विचित्तर सिंह बोला मैडम कहां हैं, मैडम से बात कराओ। दरबान ने कहा हुजूर, मैडम तो अपने पति के साथ सो रही हैं।

विचित्तर सिंह को बहुत गुस्सा आया, उसने कहा पति तो मैं हूं, कौन हरामजादा उनके साथ सो रहा है? दरबान से कहा कि उठाओ बंदूक और जाकर दोनों बेवफा इंसानों को खतम कर दो, गोली मार दो और मैं फोन होल्ड किए हूं, लौटकर आओ और मुझे बताओ क्या हुआ? दरबान गया तड़–तड़–तड़ गोलियां चलने की आवाज आई।

दो मिनट बाद दरबान ने आकर बताया कि सरदार मैंने उन दोनों बेवफा इंसानों को समाप्त कर दिया, आगे क्या करना है? विचित्तर सिंह ने कहा कि अब ऐसा करो कि दोनों की लाश ले जाकर स्वीमिंग पुल में डुबा दो। मैं जब आऊंगा दो दिन बाद फिर मैं निपटारा करूंगा कि क्या करना है।

दरबान ने कहा कि हुजूर अपने घर में तो स्वीमिंग पुल है ही नहीं।

विचित्तर सिंह ने कहा स्वीमिंग पुल नहीं है अपने घर में! सॉरी रौंग नंबर लग गया!

अहंकार में हम भूल ही जाते हैं कि हम क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं, वह करने योग्य भी है कि नहीं! छोटी–छोटी बात अहंकार को चोट लगा देती है। ऐसा अहंकारी व्यक्ति कभी प्रेम न कर सकेगा। तो अपने अहंकार के प्रति सजग होना, स्वाध्याय करना, शुद्धता के द्वारा इस अहंकार को विसर्जित करना, फिर जो शेष बचता है, उसका नाम समर्पण है। लेकिन अहंकार

भी बड़ा विचित्र है!... जो करने को कहा जाए, उसका उल्टा करता है। मैंने सुना है एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर की पांचवीं मंजिल की छत पर जाकर खड़ा होकर वहां से चिल्लाकर कह रहा था कि मैं आत्महत्या कर लूंगा, मैं बहुत दुखी इंसान हूं, संसार ने मुझे बहुत परेशान कर रखा है। जितना अहंकारी आदमी उतना ही दुखी होगा, दुख थर्मामीटर है नापने का कि कोई आदमी कितना अहंकारी है। गांव की सारी भीड़ जमा हो गई। लोगों ने कहा कि नसरुद्दीन, अपने माता–पिता का, कुल का ख्याल रखो, उनका नाम बेइज्जत हो जाएगा।

नसरुद्दीन ने कहा कि मेरे माता–पिता मर चुके हैं, वे स्वर्गीय हो चुके हैं। अगर उनकी याद दिलाओगे तो मैं भी स्वर्गीय हो जाऊंगा, कूद ही जाऊंगा। लोगों ने कहा अरे! पत्नी–बच्चों का ख्याल रखो, उन बेचारों का क्या होगा? नसरुद्दीन ने कहा उन्होंने मेरा जीना हराम कर दिया है, मैं तो बस आज आत्महत्या करके ही रहूंगा, चाहे कुछ हो जाए।

लोगों ने बहुत समझाया, कई बातें कहीं। नसरुद्दीन नहीं माना। अंत में एक बूढ़े आदमी को गुस्सा आ गया, उसने कहा कूद जा अभी मर। नसरुद्दीन ने कहा तुम कौन होते हो मुझे मारने वाले, नहीं मरूंगा, नहीं कूदूंगा। यह है अहंकार जो सदा दूसरे के साथ संघर्ष में रहता है, इस अहंकार को जाने देना।

इस सूत्र की व्याख्या करते हुए हमारे परमगुरू ओशो ने समझाया है–

समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है, ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर और जब तुमने स्वयं का अध्ययन कर लिया, जब तुमने स्वयं को जान लिया तो समर्पण घटता है। तब समर्पण बहुत सहज बात है, तब वह कोई प्रयास नहीं लगता।

अभी तुम अगर समर्पण करना चाहो तो वह केवल एक प्रयास होगा और वह भी समग्र नहीं होगा। यदि बिल्कुल अभी तुम समर्पण करना चाहो तो कैसे कर पाओगे? भीतर घृणा मौजूद है, भीतर हिंसा मौजूद है, तुम समर्पण कैसे करोगे?

नहीं! समर्पण केवल तभी संभव है जब तुम भीतर पूरी तरह शुद्ध हो गए। कैसे तुम परमात्मा के सामने जा सकते हो, अपनी घृणा, हिंसा, वैमनस्य, ईर्ष्या को लेकर? अपने को उसके चरणों में अर्पित न कर पाओगे। लेकिन जब तुम शुद्ध होते हो, एक बार शुद्धता का फूल चढ़ जाता है, तब तुम प्रविष्ट होते हो मंदिर में और स्वयं को उसके चरणों में चढ़ा देते हो।

तुम्हें समर्पण के योग्य बनना होगा, क्योंकि समर्पण बहुत बड़ी बात है। उसके पार फिर कुछ भी नहीं बचता, तुम अपने संकल्प और प्रयास से समर्पण नहीं कर सकते, क्योंकि संकल्प और प्रयास का संबंध अहंकार से है। अहंकार समर्पण नहीं कर सकता, जब तुम स्वयं का अध्ययन करते हो, स्वाध्याय से, तो अहंकार तिरोहित हो जाता है। तब तुम तो बचते हो, लेकिन कोई 'मैं' भाव नहीं बचता। तुम एक विराट शून्य होते हो, जिसमें कोई कर्ता भाव नहीं होता, अनंत, असीम अस्तित्व होता है, लेकिन कोई अहं नहीं होता, बस ब्रह्म बचता है, शुद्ध चेतना, तब समर्पण घटता है।पतंजलि ठीक कहते हैं, समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है, ईश्वर के प्रति समर्पण घटित होने पर। तब तुम प्रकाश ही हो जाते हो, हर चीज खो जाती है, तुम एक शुद्ध ऊर्जा रह जाते हो और प्रकाश शुद्धतम ऊर्जा है। धन्यवाद!!

आसन

साधनपाद : 46

स्थिरसुखमासनम्।

तन का सुखपूर्वक होना, स्थिर होना, आसन है;
सहज, तनावरहित होना, यही योग का साधन है।

पतंजलि ने कितनी सरल व संक्षिप्त परिभाषा दी है– शरीर का स्थिर व सुखपूर्वक होना आसन है। किंतु आश्चर्य! अहंकारग्रस्त योगियों ने योगासन के नाम पर न जाने कैसे–कैसे सरकसी करतब प्रचलित कर दिए हैं।

मेरी आंखों ने जो देखा है वो दिखलाया नहीं जाता,
मेरे दिल ने जो समझा है वो समझाया नहीं जाता,
मेरे सर में गूंजता है राग अनहद का
मगर कुछ बात है ऐसी अभी गाया नहीं जाता।
मेरी आंखों में उसका जलवा है, दिल में उसकी तस्वीर,
मगर मुश्किल तो ये है फिर भी बताया नहीं जाता।
मेरी आंखों ने जो देखा है दिखलाया नहीं जाता।

संतों की, ऋषियों की, मुनियों की, बुद्ध पुरुषों की बड़ी मुश्किल है। उन्होंने भीतर कुछ जाना है, कुछ देखा है, कुछ सुना है, कुछ स्पर्श किया है, लेकिन जब शब्दों में उसे कहते हैं तो बात बिगड़ जाती है। आज ऋषि पतंजलि आसन के बारे में कह रहे हैं। उन्होंने इतने सरल तरीके से, सुगमतम भाषा में कहा था, लेकिन लोगों ने बात कितनी बिगाड़ दी इसका अंदाज लगाना मुश्किल है।

पूरे योगशास्त्र में आसन के बारे में पतंजलि ने केवल एक छोटी सी पंक्ति कही है– "स्थिर सुखम् आसनम्" बस। इसके अलावा आसन की कहीं कोई चर्चा नहीं है पतंजलि

योगसूत्र में। लेकिन आज के योगियों को आप देखें, भगवान जाने कौन–कौन से आसन सिखा रहे हैं। ये योगी कम सरकस के लोग ज्यादा नजर आते हैं! इन्हें कहीं सरकस में भर्ती होकर अपने करतब दिखाने थे! ये अहंकार की चालें हैं, उल्टे–सीधे आसन। कुछ ऐसा करके दिखाओ जो दूसरे न कर सकें। पतंजलि की परिभाषा अगर सुनो तो वे योगाचार्य जो भांति–भांति के आसन सिखा रहे हैं, वे तो आसन की परिभाषा में फिट भी नहीं बैठते।

पतंजलि कह रहे हैं– जिसमें तुम स्थिर हो सको सुखपूवर्क, आराम से हो सको, वह आसन है। यहां तक कि शास्त्रों में इसका अनुवाद तक गलत है। अनुवादक लिखते हैं कि आसन स्थिर और सुखदायी होना चाहिए। यह 'चाहिए' शब्द अनावश्यक आ गया। संस्कृत में तो कहीं चाहिए शब्द नहीं आया। 'होना चाहिए', जब हम कहते हैं, उसमें फिर कर्ता का भाव आ गया कि ऐसा होना चाहिए, मैं ऐसा करके रहूंगा।

अंग्रेजी की एक किताब पश्चिम में बड़ी प्रसिद्ध हुई 'यू मस्ट रिलैक्स', तुम्हें शिथिल होना चाहिए। आश्चर्य की बात है, कॉमन सेंस भी लोगों के अंदर नहीं है। इस किताब का नाम ही कंट्राडिक्ट्री है 'यू मस्ट रिलैक्स'। अगर तुम्हें शिथिल होना चाहिए तो फिर तुम शिथिल हो नहीं पाओगे। शिथिलता घटती है, जब तुम स्वीकार भाव में होते हो, जब तुम्हें कुछ नहीं चाहिए, तब तुम रिलैक्स होते हो। 'यू मस्ट रिलैक्स', उसमें 'मस्ट' जो आ गया, जब तुम उस पर जोर डालने लगे तब रिलैक्सेशन हो ही नहीं पाएगा। तो ठीक यही बात आज के पतंजलि के सूत्र के बारे में कहना चाहूंगा, इस सूत्र की बहुत गलत ढंग से व्याख्या हुई है।

परमगुरु ओशो ने इस प्रकार इस सूत्र को समझाया है–

स्थिर सुखम् आसनम्– पतंजलि के योग को बहुत गलत समझा गया है, उसकी बहुत गलत व्याख्या हुई है। पतंजलि कोई व्यायाम नहीं सिखा रहे हैं, लेकिन योग ऐसा मालूम पड़ता है, जैसे वह शरीर का व्यायाम मात्र हो। पतंजलि शरीर के दुश्मन नहीं हैं, वे तुम्हें शरीर को तोड़ना–मरोड़ना नहीं सिखा रहे हैं, वे तुम्हें शरीर का ससैंदर्य सिखा रहे हैं क्योंकि वे जानते हैं कि एक सुंदर शरीर में ही एक सुंदर मन हो सकता है और केवल सुंदर मन में ही, सुंदर आत्मा संभव है और केवल सुंदर आत्मा में ही परमात्मा उतर पाता है।

एक–एक कदम सौंदर्य में गहरे उतरना है। शरीर के सौंदर्य, शरीर के प्रसाद को ही वे आसन कहते हैं। वे कोई मैसोचिस्ट नहीं हैं, आत्मपीड़ावादी। वे तुम्हें अपने शरीर को सताना नहीं सिखा रहे हैं, वे शरीर के जरा भी विरुद्ध नहीं हैं। शरीर के विरुद्ध कैसे हो सकते हैं? वे जानते हैं कि देह ही तो बुनियाद है, वे जानते हैं कि अगर तुम देह से चूक गए, अगर तुम शरीर को प्रशिक्षित नहीं कर पाए तो ऊंचा प्रशिक्षण, आत्मा और परमात्मा का, तो संभव ही न होगा। शरीर एक वाद्ययंत्र की भांति है जिसके तार ठीक कसे होने चाहिए केवल तभी उससे अद्‌भुत संगीत पैदा होगा। यदि वाद्ययंत्र की ठीक स्थिति और ठीक व्यवस्था नहीं है तो कैसे

तुम कल्पना कर सकते हो कि उससे मधुर संगीत उठेगा। केवल शोरगुल ही उठेगा। शरीर एक वीणा है।

स्थिर सुखम् आसनम्– आसन को स्थिर और सुखद होना चाहिए। कभी अपने शरीर को तोड़ने–मरोड़ने की कोशिश मत करना और कभी उन आसनों को करने की कोशिश मत करना जो सुखद नहीं हैं। आसन ऐसा होना चाहिए कि तुम अपने शरीर को भूल सको। आरामदेह होने का मतलब क्या है? जब तुम भूल पाते हो अपने शरीर को तब तुम आराम में होते हो। जब तुम्हें शरीर की बार–बार याद आती है तब तुम विश्राम में नहीं हो।

चाहे तुम कुर्सी पर बैठो, चाहे जमीन पर या टिककर, सवाल उसका नहीं है, आराम में रहो क्योंकि यदि तुम शारीरिक रूप से आराम में नहीं हो तो तुम दूसरी धन्यताओं की आकांक्षा नहीं कर सकते जो ज्यादा गहरी पर्तों से संबंधित हैं। यदि पहली पर्त, शरीर की, चूक गई तो भीतर की आंतरिक सब पर्तें बंद हो जाती हैं। यदि तुम सच में प्रसन्न और आनंदित होना चाहते हो, परमानंद को पाना चाहते हो तो एकदम प्रथम से ही आनंदित होना आरंभ कर दो। जो व्यक्ति भीतर के आनंद की तलाश में है, उसके लिए शरीर का आराम एक मूलभूत आवश्यकता है।

योग शास्त्रों में विविध आसनों का वर्णन है। मैं सिर्फ नाम गिना रहा हूं, इसलिए नहीं कि आपको सीखना है, बल्कि इसलिए कि इनसे बचना। वे गिनाते हैं मुख्य आसन – स्वास्तिकासन, सिद्धासन, समासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, वीरासन, गोमुखासन, वज्रासन, सरलासन, शवासन, सुखासन इत्यादि। कोई चौरासी मुख्य आसनों का वर्णन है। इसी प्रकार बंधों की चर्चा इसी सूत्र के अंदर शास्त्रकार करते हैं। उसमें से पांच बंध मुख्य हैं – मूलबंध, उड्डियानबंध, जालंधरबंध, महाबंध और महावेधबंध। मुख्य रूप से 11 मुद्राओं का वर्णन योगशास्त्रों में है– खेचरी मुद्रा, महामुद्रा, अश्विनीमुद्रा, शक्तिचालिनीमुद्रा, योनिमुद्रा, योगमुद्रा, शाम्भवीमुद्रा, तड़ागीमुद्रा, विपरीतकरणमुद्रा, वज्रोनिमुद्रा, उन्मनीमुद्रा। इन सारे चक्कर में फंसकर लोग ये भूल ही जाते हैं कि ध्यान और समाधि में डूबना है। शरीर की कवायद ही करते रहते हैं।

अगर आप करना ही चाहें, तो मैं निवेदन करूंगा एक–एक आसन, मुद्रा या बंध को तीन–तीन दिन प्रयोग करके देख लेना। अगर तुम्हारे शरीर के साथ उसका तालमेल है, अगर तुम्हें वो सूटेबल लगता है, उसमें तुम स्थिर और सुखपूर्ण हो पाते हो तो फिर ठीक, उसका उपयोग करना।

तीन दिन में तुम्हें लगता है कि नहीं, इससे तो तुम्हारी तकलीफ और बढ़ गई, बजाय चेतना केन्द्रित होने के तुम और देह केन्द्रित हो गए, परमात्मा में डूबने के बजाय, पदार्थ पर तुम्हारी नजर हो गई तो उस आसन को भूल जाना। कोई जरूरत नहीं है ये सब करने की।

पश्चिम से लोग आते हैं, ठंडे देशों के रहने वाले लोग कभी जमीन पर बैठे नहीं, सदा कुर्सी पर बैठे, यहां भारत में योगियों के चक्कर में फंसकर पद्मासन लगाने की कोशिश करते हैं। अब उनकी जांघ की मांसपेशियां, उनके घुटने, उनकी एड़ियां, उनकी कमर बचपन से एक अलग ढंग से निर्मित हुई है। पचास साल तक वे कुर्सी पर बैठते रहे अब अचानक उनको पैर मोड़कर जमीन पर बैठा रहे हो, व्यर्थ का समय बरबाद होगा और इससे कोई ध्यान–समाधि नहीं फलेगी।

हां, यह भारत में ठीक है, यहां बचपन से तुम जमीन पर बैठते आए तो कोशिश करके देख लेना। ये ध्यान–समाधि के कोई अनिवार्य हिस्से नहीं हैं, सहयोगी भी हो सकते हैं और बाधक भी हो सकते हैं। तुम अपने शरीर की सुनना, अपने मन की सुनना तुम्हारे लिए क्या आरामदायक है।

योग को व्यायाम की तरह मत लेना, शारीरिक स्वास्थ्य उसका सही लक्ष्य नहीं है ध्यान और समाधि उसका लक्ष्य है। हां, अगर शारीरिक स्वास्थ्य मिलता है बाई प्रोडक्ट की भांति, एक परोक्ष परिणाम की भांति, तो ठीक। शरीर से दुश्मनी नहीं है। अगर स्वस्थ हो, सुंदर हो तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन वह कहीं मूल लक्ष्य ही न बन जाए।

देखना, बड़े–बड़े योगियों को, उनके जीवन का मूल लक्ष्य बस यही होगा। यम–नियम साधना, आसन–प्राणायाम साधना और भूल ही गए साध किस लिए रहे थे! समाधि में जाने के लिए, वह बात ही उनके दिमाग से निकल गई। दूसरी बात मैं कहना चाहूंगा किसी से सीखने मत जाना, तुम अपनी अतःप्रेरणा से चलो। अगर तुम्हें लगता है कि दीवार से टिककर बैठना अच्छा लगेगा, एक तकिया लगाकर तो दीवार से टिककर बैठ जाओ।

अगर तुम्हें लगता है कि लेटकर ज्यादा अच्छा होगा, लेटकर ध्यान करके देखो। महावीर ने खड़े होकर ध्यान किया, बुद्ध ने पद्मासन में ध्यान किया, मीरा नाचती हुई ध्यानमग्न हो गई, चैतन्य महाप्रभु झूमते, नाचते, गुनगुनाते, डोलते, कीर्तन करते हुए ध्यानमग्न हो गए। हर व्यक्ति भिन्न–भिन्न और अनूठा है, तुम्हारे अंगूठे के निशान तक एक से नहीं होते। हर व्यक्ति अद्वितीय और बेजोड़ है, तुम्हारा आसन भी बेजोड़ होगा।

हम सबके शरीर भिन्न–भिन्न हैं। तो अपने शरीर की सुनना, किसी योगाचार्य, किसी योग के शिक्षक की सुनने की जरूरत नहीं है। हां, अगर तुम योग की किताबें पढ़ते हो, उसे औसत नियम समझकर चलना। प्रयोग करके देखना अगर दो–तीन दिन में तुम्हें जमता है तो ठीक, आगे जारी रखना वरना छोड़ देना। नकल हमेशा नुकसान में ले जाती है।

मैंने सुना मुल्ला नसरुद्दीन एक वैद्यराज से ट्रेनिंग ले रहा था। तो वैद्यराज अपने साथ जहां–जहां मरीज देखने जाते उसे भी ले जाते थे। नसरुद्दीन देखता रहता था कि गुरुजी किस प्रकार से इलाज कर रहे हैं। एक मरीज के घर गए, गुरुजी ने नब्ज देखी मरीज की

और कहा कि आपने आम बहुत खाए हैं इसलिए आप बीमार हैं, आम खाना बंद कर दीजिए। नसरुद्दीन बड़ा हैरान हुआ। बाहर निकलकर उसने कहा कि हद कर दी, नब्ज देखकर आपको कैसे पता चला कि उसने आम खाए है और वह मान भी गया! कहने लगा कि हां, अब आम नहीं खाऊंगा। गुरुजी ने कहा कि बेटा नब्ज देखकर पता नहीं चला, मेरी नजर पलंग के नीचे पड़ी, वहां आम की गुठलियां पड़ी हुई थीं, आम के छिलके पड़े हुए थे, मैं समझ गया कि ये आदमी आम बहुत खाता है। नसरुद्दीन ने कहा ठीक, मैं सब समझ गया।

फिर एक दिन ऐसा हुआ एक एमरजेंसी रोगी के यहां नसरुद्दीन को अकेले जाना पड़ा। गुरुजी कहीं गांव के बाहर गए हुए थे। नसरुद्दीन ने सोचा ठीक, हम भी वही ट्रिक आजमाएंगे। गए रोगी के घर। रोगी की नब्ज देखी, पलंग के नीचे नजर फेरी और नसरुद्दीन ने कहा कि सुनो मियां, तुम जो घोड़ा खाते हो न, उसके वजह से तुम्हें बीमारी हो गई है। उस आदमी ने कहा घोड़ा! तुम आदमी हो कि गधा हो। बड़ी बेइज्जती करके नसरुद्दीन को घर से निकाल दिया गया। नसरुद्दीन ने आकर गुरुजी से कहा कि हद हो गई! जो ट्रिक आपने की थी वही मैंने भी की, लेकिन काम नहीं आया।

गुरुजी ने पूछा, तुमने क्या देखा था वहां? नसरुद्दीन ने देखा कि घोड़े की जीन पड़ी है पलंग के नीचे, कोड़ा पड़ा हुआ है, घोड़ा नहीं है इसका मतलब यह आदमी घोड़ा खा गया। जैसे आम की गुठली पड़ी थी, आम का छिलका पड़ा था तो आम खा गया! दूसरे की नकल मत करना, किसी योगासन के लिए दूसरे की नकल करने की जरूरत नहीं है।

मैंने सुना है एक आदमी को नौकर रखा गया और उसने कहा कि मैं कभी भी घर के काम करते हुए थकता नहीं हूं। पहले ही दिन मालकिन ने देखा कि नौकर कुर्सी पर बैठा हुआ, स्टूल पर पैर फैलाए हुए आराम से खर्राटे भर रहा है। मालकिन ने उसे झकझोर कर उठाया और कहा कि हद हो गई, तुमने कहा था तुम कभी थकते नहीं और तुम यहां आराम कर रहे हो? उस नौकर ने कहा कि यही तो मेरे न थकने का राज है! कभी थकता ही नहीं।

सेठ चंदूलाल अपने बेटे से कह रहे थे कि एक तुम हो आलसी जब देखो तब आराम करते रहते हो और एक था नेपोलियन, वह कहता था कि मेरी डिक्शनरी में असंभव जैसा कोई शब्द ही नहीं है, इंपॉसिबल शब्द ही नहीं है। चंदूलाल के बेटे ने कहा कि पापा, नेपोलियन को डिक्शनरी देखकर खरीदनी थी, उसकी डिक्शनरी में शब्द ही नहीं छपा था, मिसप्रिंटेड!

मैं आपसे कहना चाहता हूं असंभव काम मत करना, नेपोलियन बनने की कोशिश मत करना। धर्म और अध्यात्म के नाम पर भी लोग नेपोलियन, सिकंदर और हिटलर बनना चाहते हैं। इन ऊटपटांग आसनों में जाने की जरूरत नहीं।

जो तुम्हारे शरीर के लिए सुखद और स्थिरतादायी हो, वही तुम्हारा आसन हो, तब ध्यान में, समाधि में यात्रा बड़ी आसानी से हो सकेगी। धन्यवाद!!

प्रयासरहित प्रयास

साधनपाद : 47

प्रयत्नशैथिल्यानंत्यसमापत्ति भ्याम्।

यत्न छोड़ दो शिथिल हो रहो, कुछ भी नहीं करो।
रखो ध्यान असीम पर, तुम आसन सिद्ध करो।

प्रयास की शिथिलता एवं विराट पर ध्यान से आसन सिद्ध होता है। जापान के झेन फकीर कहते हैं– सिटिंग सायलेंटली, डूइंग नथिंग, द स्प्रिंग कम्स ऐण्ड द ग्रास ग्रोज बाइ इटसेल्फ। आज के सूत्र में पतंजलि ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण शब्द का प्रयोग किया है– प्रयत्न शैथिल्य। हम अपनी तरफ से प्रयास छोड़ दें और बिल्कुल शिथिल हो जाएं तब आसन सिद्ध होता है। ये दोनों शब्द सुनने में एक–दूसरे के विरोधाभासी लगेंगे, एक–दूसरे के कंट्राडिक्ट्री। लेकिन मजबूरी है, इसी ढंग से कही जा सकती है बात। प्रयत्न की शिथिलता, एफर्टलेसनेस जिसे कहें।

जापान के झेन फकीर कहते हैं, सिटिंग सायलेंटली डूइंग नथिंग द स्प्रिंग कम्स ऐण्ड द ग्रास ग्रोज बाइ इटसेल्फ। ओशो ने अपनी एक किताब का शीर्षक रखा है– द ग्रास ग्रोज बाइ इटसेल्फ। प्रयत्न शैथिल्य को समझना। ओशो की एक दूसरी किताब का नाम है 'बी स्टिल ऐण्ड नो', रुक जाओ, थिर हो जाओ और जान लो। एक अन्य किताब का नाम है 'डोन्ट जस्ट डू समथिंग, सिट देयर'– ये है प्रयत्न शैथिल्य, कुछ भी न करो। चीन के ताओवादी संत इसे कहते हैं, एफर्टलेस एफर्ट, प्रयासरहित प्रयास। विपरीत शब्दों का प्रयोग करना पड़ेगा। एक सूक्ष्म प्रयास तो है, लेकिन प्रयासरहित है, कर्ताभाव रहित है।

हमारा आसन कैसा हो, इस संबंध में कुछ मोटी–मोटी बातें तो कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए अगर आप बैठना चाह रहे हैं तो जमीन से थोड़ा ऊपर चौकी हो। लकड़ी की हो तो और अच्छा, उसमें ऊन, रेशम या सूती गद्दी हो, इलेक्ट्रिकल नॉन कंडक्टिंग मटेरियल ज्यादा उपयोगी होता है, आसन के लिए। यदि समुद्रतल से लगभग पांच हजार मीटर की ऊंचाई पर हम किसी जगह को चुन सकें ध्यान, समाधि के लिए तो बहुत उपयोगी माना जाता रहा है।

अतीत में जो संन्यासी घर–गृहस्थी त्यागकर हिमालय चले जाते थे, इसलिए नहीं कि घर–गृहस्थी बुरी है या संसार से कोई नाराजगी है, बल्कि इसलिए कि वहां शोरगुल नहीं है, शांति है, सन्नाटा है, मक्खी, मच्छर नहीं हैं जो ध्यान में बाधा पहुंचाएंगे। आसन सिद्ध करना आसान होगा। शीतलता है हिमालय की, वह बड़ी उपयोगी होगी। आज के जमाने में यह सब करना संभव नहीं है। कितने लोग हिमालय जाएंगे, पॉपुलेशन एक्सप्लोजन हुआ है!

7 अरब आदमी दुनिया में हैं और जल्दी ही 10 अरब हो जाने वाले हैं। अगर इसमें से एक प्रतिशत लोग भी हिमालय पर चले गए तो हिमालय में शाश्वत काल से जमी हुई बर्फ भी पिघल जाएगी, वहां भी भीड़–भड़क्का हो जाएगा, बाजार से ज्यादा भीड़ हो जाएगी! नहीं! आज हमें कुछ और इंतजाम करना होगा। विज्ञान की नई प्रगतियों का हम उपयोग करना सीखें।

अपने घर में ही एक साउंड प्रूफ ध्यान कक्ष बना लें। आपका ध्यान कक्ष एयर कण्डीशंड हो सके तो बहुत ही सुंदर, हिमालय पर जाने की जरूरत नहीं, हिमालय को आपके घर में लाया जा सकता है। अगर हिमालय की गुफा में शांति और सन्नाटा है, साउंड प्रूफ कमरा बनाकर घर में ही वैसा इंतजाम किया जा सकता है। तो आसन के लिए ये छोटी–मोटी व्यवस्थाएं करें। अच्छा हो ध्यान, समाधि में डूबने के दो–ढाई घंटे पहले से आपने कुछ खाया–पिया न हो। हां, जिन मित्रों का चाय–कॉफी लेने की आदत है, वे ले सकते हैं। उससे ध्यान में बाधा नहीं पड़ती बल्कि सहयोग ही मिलता है। आप और ज्यादा जागरूक हो पाते हैं। तो ये छोटी–छोटी बातें उपयोगी और सहयोगी होंगी। स्नान करके, ताजे वस्त्र पहनकर, अगर कोई विशेष सुगंध आपको पसंद है उस सुगंध का इस्तेमाल कर लें, मच्छर, मक्खियों से मुक्त रहने का इंतजाम अपने घर में कर लें। आज विज्ञान की उन्नति के कारण ये सारे इंतजाम घर में किए जा सकते हैं और इसलिए ओशो इस पक्ष में नहीं हैं कि उनका संन्यासी संसार छोड़कर जाए। संसार में ही हम और ज्यादा सुंदर व्यवस्था बना सकते हैं।

जरा कल्पना करें, हिमालय की गुफा में एक योगी बैठा है। माना कि संसार की बहुत सी मुसीबतों से वह दूर है, लेकिन बगल में शेर दहाड़ता है, क्या उसे ध्यान, समाधि लग पाएगी? आप शहर में ज्यादा सुरक्षित हैं। वह योगी जो जंगल में रह रहा है, उसे प्यास लगी। हो सकता है उसे चार–छः किलोमीटर पैदल चलना पड़े, तब कहीं कोई जलस्रोत मिले। आप फ्रिज खोलते हैं और पानी निकालकर पी लेते हैं, यह ज्यादा आसान है। आज के जमाने में घर में साधना करना ज्यादा आसान है। इसलिए पुरानी जो बातें कही गई हैं, उनका ख्याल रखना। एक विशेष संदर्भ में, एक खास परिस्थिति में वे उपयोगी थीं। अब परिस्थिति बदल गई है, जमाना बदल गया है, नई व्यवस्थाओं में, हम नए प्रकार की सुविधाएं जुटा सकते हैं।

आज के सूत्र में पतंजलि कहते हैं– प्रयत्न शिथिल हो जाने दो, कुछ भी नहीं करो, ध्यान रखो असीम पर, यूं आसन सिद्ध करो। संसार की जो सफलताएं हैं, वे मिलती हैं प्रयत्न से, कोशिश से। जितना संकल्पवान आदमी होगा, जितना कर्मठ होगा, जितना महत्वाकांक्षी होगा, पागलपन के साथ अपनी कामनाओं के पीछे दौड़ेगा, जितनी कोशिश करेगा, उतनी ही शीघ्र सफलता पाएगा। अध्यात्म का जगत इसके ठीक विपरीत है, अगर वहां तुमने ये पागलपन किया, कभी भी तुम्हें कुछ हासिल नहीं होगा। वहां तो रिलैक्सेशन, शिथिलता चाहिए। क्यों?

क्योंकि वहां तुम जिसे पाने चले हो, वह पहले से ही मौजूद है, कोई आक्रमण नहीं करना है, किसी से छीन-झपट नहीं करनी है, वहां कोई प्रतियोगिता और स्पर्धा नहीं है, अपने ही स्वभाव को जानना है। अगर तुम प्रयत्न करते रहे तो स्वयं से चूक जाओगे। अपनी कोशिश के कारण ही तुम चूक जाओगे। इसलिए संकल्प नहीं, वहां पर समर्पण मार्ग बनता है। फ्रांस में एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक हुआ पिछली सदी में, इमाइल कुए। उसने 'कुए नियम' खोजा, जिसे वह कहता है विपरीत परिणाम का नियम, द लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट। इसे थोड़ा समझना, अगर तुमने बहुत कुछ करने की कोशिश की तो ठीक उसका उल्टा परिणाम होगा।

एक लड़की अपने प्रेमी को फुसलाने की कोशिश कर रही थी, उसे सुधारने की कोशिश ताकि शादी कर सके। प्रेम संबंध आगे बढ़ता जा रहा था। एक दिन उस लड़की ने अपने प्रेमी से कहा कि कसम खाओ कि शादी के बाद कभी शराब न पिओगे। उसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं पिऊंगा। प्रेमिका ने कहा और ये जो गाली देने की तुम्हारी आदत है, इसे भी छोड़ दोगे। उस युवक ने कहा कि निश्चित रूप से छोड़ दूंगा। उस लड़की ने कहा कि सिगरेट की बास मुझे बिल्कुल पसंद नहीं, व्रत लो कि सिगरेट कभी नहीं पिओगे। उस युवक ने कहा कि बिल्कुल ही नहीं पिऊंगा। लड़की बोली कि तुम्हारे जो दोस्त हैं जिनके साथ तुम उठते-बैठते हो, वे मुझे बिल्कुल पसंद नहीं, उनका साथ-संगत भी छोड़ना पड़ेगा। उस लड़के ने कहा कि उनका साथ भी छोड़ दूंगा। फिर अंत में उस लड़की ने कहा कि ये तो वे चीजें हैं जो मैंने छुड़वाईं, कोई गलत आदत तुम अपनी तरफ से भी तो बोलो, क्या छोड़ोगे? उस लड़के ने कहा कि मैं तुमसे शादी करने का इरादा ही छोड़ दूंगा!... यह है लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट, विपरीत परिणाम का नियम। किसी ने मुझे एस.एम.एस. किया है, गर्लफ्रेंड की परिभाषा... एक ऐसी लड़की जो साल भर तक अपने प्रेमी की गलत आदतें छुड़ाने की भरपूर कोशिश करती रहे और सफलता हासिल हो जाने पर विवाह करने से इसलिए इंकार कर दे कि अब तुम पहले जैसे नहीं रहे!

लॉ ऑफ रिवर्स इफेक्ट- जो हमने चाहा था उसका उल्टा ही हो जाएगा। इमाइल कुए कहता था कि जैसे कोई आदमी साइकिल चलाना सीख रहा है। आप याद करें आपने बचपन में साइकिल चलाना सीखा, 20 फुट चौड़ी सड़क है, अचानक आपकी नजर पड़ती है एक बिजली के खंभे पर जो बेचारा सड़क के किनारे लगा हुआ है। आपके भीतर डर पैदा हुआ कि कहीं खंभे से टकरा न जाउं, और जैसे ही भीतर डर आया, आपकी साइकिल का हैंडल खंभे की तरफ मुड़ने लगा, जिस तरफ आप ध्यान देंगे उसी तरफ हैंडिल मुड़ जाएगा। तब आप और घबड़ा जाएंगे कि अब मारे गए, अब तो साइकिल टकराएगी ही खंभे से और तब वही होगा, साइकिल खंभे से टकराएगी।

अध्यात्म के जगत में इसका खूब-खूब स्मरण रखना; अगर तुमने ध्यान की, समाधि की अति कोशिश की, तुम्हारी कोशिश ही बाधा बन जाएगी। एक मित्र ने ओशो से पूछा है कि फिर आप ये ध्यान के प्रयोग हमें क्यों सिखाते हैं? ओशो ने कहा कि क्योंकि तुम प्रयत्न शैथिल्य में सीधे नहीं जा पा रहे इसलिए। तुम्हें उल्टी तरफ से कान पकड़ना सिखाता हूं। काश, तुम सीधा कान पकड़ना सीख जाओ! ये उल्टी कोशिश क्या है, समझना। उदाहरण के लिए मैं आपसे कहूं कि आप अपनी हथेली को बिल्कुल शिथिल छोड़ दें, कोई ताकत न लगाएं, बड़ा मुश्किल है ये

करना। या तो आप जोर से मुट्ठी बंद करना जानते हैं या आप पूरी खोलेंगे ताकत लगाकर। वह जो मध्य की अवस्था है शिथिलता की उसमें जाना बड़ा कठिन है। तो फिर मैं आपसे कहूंगा कि अच्छा ठीक है, जोर से मुट्ठी बंद करें, श्वास रोककर, पूरी प्राणशक्ति लगा दें मुट्ठी बंद करने में। तब क्या होगा? ये मुट्ठी बंद करने में आपकी मांसपेशियां धीरे–धीरे थक जाएंगी। एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट थोड़ी देर में वह समय आएगा, आपके बस के बाहर हो जाएगा और तब हथेली अपने आप खुलनी शुरू हो जाएगी। आपकी सारी कोशिश व्यर्थ गई, रोकने की, हाथ खुल गया और रिलैक्स हो गया। तो रिलैक्स करने का एक तरीका यह भी है। कोई ऐसी विधि जो अति तनाव से भर दे।

ध्यान की सारी विधियां करीब–करीब ऐसी ही हैं। पहले आपको एक क्रिया से गुजारते हैं ताकि आप निष्क्रिय हो सकें। ओशो ने अपनी प्रसिद्ध विधि का नाम रखा है, सक्रिय ध्यान। याद रखना यह मजाक है, वे सदा समझाते हैं कि निष्क्रिय जागरूकता ध्यान है और विधि का नाम रखा सक्रिय ध्यान, डाइनैमिक मेडिटेशन, ये उनका सेंस ऑफ ह्यूमर, उनकी मजाक की प्रवृत्ति है। क्या करें? आदमी ऐसा ही है!... उससे कहोगे सीधे–सीधे निष्क्रिय हो जाओ वह नहीं सुनता। 1953 से लेकर 1970 तक ओशो समझाते रहे, प्रयत्न शैथिल्य, कुछ भी न करो। लोगों ने कहा कि कुछ बनता नहीं करते। तो फिर ओशो ने कहा ठीक है, अब इतनी सक्रियता के साथ, पूरी टोटलिटी के साथ मेहनत करो कि अब तुम्हीं थोड़ी देर में कहोगे कि अब बंद भी करो बहुत हो गया। तब वे कहेंगे ठीक है, रिलैक्स, अब बिल्कुल शिथिल हो जाओ। तो प्रयत्न शैथिल्य से आसन शिथिल होता है और दूसरी महत्त्वपूर्ण चीज ओशो कह रहे हैं, वह है असीम पर ध्यान।

हमारा मन सीमाओं के साथ बड़ी आसानी से अपना चाल चलता रहता है। इसे समझाते हुए परमगुरू ओशो ने कहा– प्रयत्न पर शिथिलता और असीम से आसन सिद्ध होता है। दो बातें– पहली बात प्रयास को शिथिल करना उस पर जबरदस्ती मत थोपना, उसे सहज होने देना, वह नींद जैसे है, उसे सहज आने देना। वह बहने जैसा है, तैरने जैसा नहीं, उसे जबरदस्ती थोपना मत अन्यथा तुम उसकी हत्या कर दोगे।

जब शरीर विश्राम में उतर रहा हो, गहन विश्राम में स्थिर हो रहा हो तो तुम्हारा मन केन्द्रित होना चाहिए असीम पर। मन बहुत कुशल है, सीमित के साथ। यदि तुम धन या राजनीति या दर्शनशास्त्र की धारणाओं के संबंध में सोचोगे, तो मन बड़ा कुशल है। ये सब सीमित बातें हैं।

यदि तुम परमात्मा के विषय में सोचते हो तो अचानक मन ठिठक जाता है, एक शून्य आ जाता है। तुम क्या सोच सकते हो परमात्मा के विषय में? यदि तुम कुछ भी सोच पाते हो तो जानना कि वह परमात्मा वास्तविक परमात्मा नहीं, वह सीमित धारणा है। यदि तुम परमात्मा का विचार करते हो कृष्ण के रूप में बांसुरी बजाते हुए तब वह तुम्हारी ही धारणा है, सीमा आ गई।

यदि तुम परमात्मा का विचार करते हो, क्राइस्ट के रूप में, सूली पर लटके हुए तो फिर वह परमात्मा न रहा, तुमने एक रूप दे दिया, एक सीमा दे दी। माना कि बड़ी सुंदर है छवि! तो दो प्रकार के परमात्मा हैं, पहले धारणा वाले परमात्मा, ईसाई परमात्मा, मुसलमान परमात्मा, हिन्दू परमात्मा, जैन परमात्मा और दूसरे अस्तित्वगत, धारणागत नहीं, वही वास्तविक परमात्मा है। उस असीम का ध्यान रखो और प्रयत्न शैथिल्य, तब आसन फलित होता है। धन्यवाद!!

संतुलित जीवन

साधनपाद : 48

ततो द्वंद्वानभिघातः।

जब आसन सिद्धि होने पर द्वंद्व सभी मिट जाते है;
तब साधक के जीवन में शांति के फल आते है।

पतंजलि कहते हैं– जब आसन सिद्ध हो जाता है, तब द्वंद्वों से उत्पन्न अशांति की समाप्ति होती है।

आज के सूत्र की व्याख्या ओशो के अमृत वचन से शुरू करते हैं–

ततो द्वंद्वानभिघातः, जब आसन सिद्ध हो जाता है तब द्वंद्वों से उत्पन्न अशांति की समाप्ति होती है। जब शरीर सचमुच में शांत होता है, विश्राम में होता है, शरीर की लौ कंप नहीं रही होती, स्थिर होती है, कोई गति नहीं होती, अचानक जैसे समय रुक जाता है, कोई हवा न चल रही हो, प्रत्येक चीज थिर और शांत हो, शरीर में कोई उत्तेजना न हो, वह थिर हो, गहन रूप से संतुलित, शांत, मौन, अपने स्वभाव में स्थित, इस अवस्था में मन के सभी द्वंद्व समाप्त हो जाते हैं और द्वंद्वों के कारण उत्पन्न अशांति भी खत्म हो जाती है।

क्या तुमने ध्यान दिया है कि जब भी तुम्हारा मन अशांत होता है तो तुम्हारी देह भी अशांत और बेचैन हो जाती है। तुम चुपचाप नहीं बैठ सकते या जब तुम्हारा शरीर बेचैन होता है तो तुम्हारा मन मौन नहीं हो सकता। वे दोनों जुड़े हुए हैं। पतंजलि अच्छी तरह से जानते हैं कि शरीर और मन दो चीजें नहीं हैं, तुम शरीर और मन दो में बंटे हुए नहीं हो, शरीर और मन एक ही चीज के दो छोर हैं। तुम साइकोसोमैटिक हो, तुम मनोशरीर हो। शरीर केवल प्रारंभ है, तुम्हारे मन का और मन तुम्हारे अंतिम छोर के सिवाय और कुछ भी नहीं। दोनों एक ही घटना के पहलू हैं, वे वास्तव में दो नहीं हैं। तो जो कुछ भी शरीर में घटता है, वह मन को प्रभावित करता है और जो कुछ भी मन में घटता है, वह शरीर को प्रभावित करता है। वे

संग–साथ चलते हैं। इसलिए योग में शरीर पर इतना जोर है क्योंकि अगर तुम्हारा शरीर विश्रामपूर्ण नहीं है तो तुम्हारा मन भी शांत नहीं हो सकेगा। और शरीर के साथ शुरू करना हमेशा आसान होता है क्योंकि वह सबसे बाहरी पर्त है। मन के साथ शुरू करना कठिन है। बहुत से लोग मन के साथ प्रारंभ करने का प्रयास करते हैं, किन्तु असफल हो जाते हैं क्योंकि उनकी देह सहयोग नहीं देती। हमेशा अच्छा होता है ए, बी, सी से शुरू करना और धीरे–धीरे एक्स, वाई, जेड की तरफ आगे बढ़ना। शरीर पहली पर्त है, मन मध्य में है, आत्मा और परमात्मा आखिरी छोर हैं। प्रारंभ से ही प्रारंभ करना चाहिए।

शरीर की शांत अवस्था को उपलब्ध हो जाओ तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारा मन भी स्थिर हो गया। हमारा मन ऐसे है जैसे पुराने जमाने में घड़ी का पेण्डुलम हुआ करता था, निरंतर बाएं से दाएं, दाएं से बाएं गति करता रहता है, बीच में कभी नहीं ठहरता। ठीक ऐसे ही कभी हम प्रेम करते हैं, कभी घृणा करते हैं। जब हम प्रेम कर रहे होते हैं तब हम घृणा की तैयारी कर रहे होते हैं। वह पेण्डुलम जो बाईं तरफ जाता हुआ दिखाई दे रहा है, वास्तव में वह दाहिनी तरफ जाने का मोमेंटम इकट्ठा कर रहा है। जो दिखाई पड़ रहा है, उससे ठीक उल्टा घटित हो रहा है। सारी दुनिया में पति–पत्नी के बीच निरंतर कलह चलती रहती है।

भाई–भाई के बीच, पिता–पुत्र के बीच, पड़ोसियों के बीच, बॉस और सबआर्डिनेट के बीच निरंतर कलह चलती रहती है। कारण? जिनसे हम प्रेम करते हैं, उनके प्रति हम घृणा का भाव इकट्ठा करते जा रहे हैं। ये पेण्डुलम बाएं से दाएं जाएगा, इसे रोका नहीं जा सकता। तो मन की इस पेण्डुलम की भांति अतिवादी वृत्ति को समझना, तब तुम समझ जाओगे कि बीच में कैसे रुकना है।

हम सुख और दुख में डोलते हैं, हम ज्यादा देर सुखी भी नहीं रह सकते, हम फिर कुछ ऐसा करेंगे जिससे दुख उत्पन्न हो जाएगा। जब दुख उत्पन्न होगा हम सुख की कोशिश करेंगे, जब सुख आ जाएगा हम फिर दुख का उपाय कर लेंगे। सुख और दुख के पार एक तीसरा ट्रांसेनडेंटल प्वाइंट भी है, अतिक्रमण का बिंदु, वह शांति का बिन्दु है। सुख और दुख दोनों अशांतियां हैं, दोनों उत्तेजनाएं हैं। लेकिन हम एक अति से दूसरी अति में डोलते हैं।

कहावत है 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'। हमेशा एक्सट्रीम पर जाने से बचना। किन्तु मन हमेशा एक्सट्रीम पर ही जाता है। मैं पढ़ रहा था एक चुटकुला, एक पत्नी–पीड़ित व्यक्ति का कथन कि विवाह के पूर्व इंसानों को तनहाई काटने को दौड़ती है और विवाह के पश्चात पत्नी। या तो हम एकांत में दुखी होंगे या फिर हम संग–साथ में दुखी होंगे। दोनों ही उत्तेजनाएं हैं, दोनों में ही शांति न हो सकेगी।

मैंने सुना है एक अजनबी स्त्री, बस में सफर करते हुए अपने बगल में बैठे आदमी की हरकतों से तंग आकर उससे बोली कि अगर तुम मेरे पति होते तो मैं तुम्हें जहर दे देती। उस आदमी ने कहा कि क्षमा करना, अगर तुम मेरी पत्नी होती तो मैं स्वेच्छा से खुद ही जहर खा लेता! पत्नी ने नसरुद्दीन से कहा कि शादी से पहले तुम कहा करते थे कि मेरे बिना स्वर्ग में

रहने के बजाय तुम मेरे संग नर्क में रहना पसंद करोगे, याद है तुमने एक दिन मस्जिद में अल्लाह से यही दुआ भी की थी! नसरुद्दीन ने कहा कि हां की थी और अल्लाह ने मेरी मनोकामना शादी के तुरंत बाद पूरी भी कर दी! अब जी रहा हूं उसी नर्क में।

आदमी कुंवारा है, एक अति; शादीशुदा है, दूसरी अति। संसार में चार प्रकार की दिशाओं में हमारा मन भटकता है– धन, पद, प्रेम और ज्ञान। जैसे उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम चार दिशाएं हैं, ऐसे ही मुख्य रूप से मन की भी चार दिशाएं हैं। विस्तार में तो बहुत लंबी बात होगी। मुख्य रूप से हम या तो संपत्ति में, या शक्ति में, या व्यक्ति में या बुद्धि में उत्सुक होते हैं, फिर जब हम इनसे थक जाते हैं, हम इनका विपरीत करने लगते हैं।

वह आदमी जो घर–गृहस्थी में, प्रेम–संबंधों में उत्सुक था अचानक त्यागी हो जाता है, वह संसार छोड़कर भागता है। पहले वह कह रहा था स्त्री में सुख है, स्वर्ग है, अब कहता है स्त्री नर्क का द्वार है, अब दूसरी अति पर चला गया। वह आदमी जो धन का दीवाना था, अति महात्वाकांक्षी था, बिल्कुल पागल था पैसा कमाने के लिए, एक दिन पैसा कमा–कमा कर थक जाता है, कुछ हाथ में आया नहीं, शांति मिली नहीं, अब वह दान करना शुरू कर देता है और सोचता है कि दान ही धर्म है। तीसरा व्यक्ति जो शक्ति में उत्सुक था, पद में उत्सुक था, दूसरों को कैसे सता पाऊं, दूसरों को कैसे अपनी ताकत दिखा पाऊं, एक दिन वह राजनीति करते–करते थक जाता है, तब वह तपस्या में चला जाता है, अपने आप को सताने लगता है। अब वह उपवास करेगा, कांटों की सेज पर सोएगा... अपने आप को सताने लगा। यह है वही सताऊ आदमी, पहले दूसरों को सताता था अब अपने को सताने लगा, पलट गया। इसकी नजर सताने पर है, अभी भी यह बता रहा है कि मैं कितना शक्तिशाली हूं, देखो! पन्द्रह दिन से खाना नहीं खाया, देखो इतनी तेज धूप में, जेठ की दोपहरी में बाहर खड़ा हूं... यह आदमी बदला नहीं! इसकी नजर अभी भी बहिर्मुखी है।

वे जो ज्ञान के पीछे दीवाने थे, बुद्धि, विचार, तर्क, वितर्क, विज्ञान, गणित उसमें उत्सुकता ले रहे थे, उसमें ऊंची–ऊंची डिग्रियां हासिल कर ली थीं, एक दिन ये बुद्धि से थक जाते हैं। कोई शांति तो मिली नहीं, मन खूब तनावग्रस्त हो गया, अब ये विपरीत काम करेंगे। कुछ गैरबुद्धिपूर्ण हरकतें करना शुरू कर देंगे। इसलिए जितने धार्मिक क्रियाकांड हैं, वे सब गैरबुद्धिपूर्ण, नॉन इंटेलेक्चुअल हरकतें हैं। ये पत्थर की मूर्ति के सामने बैठकर प्रार्थना करने लगेंगे... निश्चित ही गैर बुद्धिमानी का काम है, लेकिन ये ज्ञान से थक गए हैं।

साठ और सत्तर के दशक में अमेरिका में 'हरे राम–हरे कृष्ण' आंदोलन का बड़ा प्रभाव पड़ा। बड़े पढ़े–लिखे युनिवर्सिटी के प्रोफेसर्स और वैज्ञानिक सड़क पर आ गए। सिर घुटा लिए उन्होंने, रुद्राक्ष की मालाएं पहन लीं, चंदन के तिलक लगा लिए और डफली बजा के नाचने लगे हरे रामा, हरे कृष्णा गाने लगे। यह सिर्फ छुटकारा है, बुद्धि से थक गए हैं अब ये कुछ मूर्खतापूर्ण हरकतें करके सिर्फ एक हॉलीडे मना रहे हैं।

तो चार प्रकार के लोग हैं संसार में दौड़ने वाले। कोई धन के पीछे, कोई पद के पीछे,

कोई ज्ञान के पीछे, कोई प्रेम के पीछे। और यही लोग फिर दूसरी अति पर जाते हैं। जिसे सामान्यतः धर्म कहा जाता है, वह धर्म नहीं है, वह दूसरी अति है। न दान धर्म है, न चोरी धर्म है, न गृहस्थी धर्म है, न त्याग धर्म है, न दूसरों को सताना धर्म है, न तपस्या धर्म है, न बौद्धिक ज्ञान इकट्ठा करना धर्म है और न बुद्धि के विपरीत मूर्खतापूर्ण क्रियाकांड करना धर्म है। लेकिन सामान्यतः इन्हीं को धर्म समझा जाता है। सावधान! एक अति से दूसरी अति पर जाने से बचना।

मैंने सुना है कि महाविद्यालय की एक संस्कृत शिक्षिका ने कहा, बच्चों अगर अपना चरित्र सुधारना है तो दुनिया की हर स्त्री को अपनी मां समझो, सबको सम्मानपूर्वक मांजी कहकर संबोधित किया करो। फजलू नामक एक विद्यार्थी बोला कि आदरणीय मांजी– ऐसा कहने में मेरा तो सुधर जाएगा किन्तु मेरे आदरणीय पिताजी के चरित्र का क्या होगा, वे तो पहले से ही काफी बिगड़े हुए आशिक मिजाज इंसान हैं!

अति से सदा बचना। मैंने सुना है एक आशिक मिजाज मंजनू साहब की गांव वालों ने चौराहे पर खूब पिटाई कर दी। वे गांव की हर लड़की को छेड़ा करते थे। गांव वालों ने कहा कि आगे से हर स्त्री को बहनजी कहना। जब उनकी काफी पिटाई हो चुकी तब उनकी पत्नी आई और उसने पूछा कि ज्यादा चोट तो नहीं लगी, बहुत तकलीफ तो नहीं हो रही? उस आदमी ने कहा– नहीं बहनजी नहीं! पहले हर स्त्री को पत्नी समझ रहे थे, अब पत्नी को भी बहनजी कहने लगे। ऐसा विचित्र हमारा मन है! दोनों स्थितियों में शांति घटित नहीं होगी, ध्यान और समाधि फलित नहीं होगी। पतंजलि कह रहे हैं, बीच में रुक जाना।

बुद्ध इसी को कहते हैं, मज्झिम निकाय। चीन के संत लाओत्सु इसे कहते हैं, द गोल्डेन मीन, स्वर्णिम मध्य। हमेशा बीच में ठहरना। भोग और त्याग दोनों अतियां हैं, दोनों से सावधान! न धन के दीवाने हो जाना और न धन को छोड़ने के दीवाने हो जाना, न चोरी में लग जाना न दान में, सदा मध्य में रहना। और यह बात सब चीजों पर लागू होती है। न तो जरूरत से ज्यादा सोना और न जरूरत से कम सोना। देखना तुम्हारे शरीर की क्या जरूरत है, वह तुम्हारी सम्यक् निद्रा होगी। न अति भोजन करना और न ही उपवास करना, सम्यक् भोजन करना। न तो बहुत ज्यादा श्रम करना और न ही बहुत ज्यादा विश्राम करना। श्रम की भी जरूरत है और विश्राम की भी जरूरत है और दोनों में एक संतुलन चाहिए।

जिंदगी को जीने की कला ऐसी है जैसे एक नट रस्सी पर हो। न बाएं झुकता है, न दाएं, ठीक मध्य में रहता है। संत लाओत्सु ने संतुलन की अद्भुत विधियां खोजी हैं। ठीक मध्य में संतुलित हो जाओ, शरीर को भी यदि मध्य में संतुलित कर लो।

आसन करते हुए तुम्हारी रीढ़, तुम्हारी गर्दन और तुम्हारा सिर एक सम रेखा में हो, और अच्छा हो अगर पूरब या उत्तर की तरफ मुंह करके बैठो, तब उस संतुलन की अवस्था में तुम पाओगे कि अचानक तुम्हारे भीतर द्वंद्व विसर्जित होने लगते हैं और द्वंद्वों के कारण उत्पन्न अशांति समाप्त हो जाती है। धन्यवाद!!

प्राणायाम

साधनपाद : 49

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्ति र्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः

।

रेचक, पूरक, कुंभक की अवधि एवं आवृत्ति;
देश, काल, व संख्या के अनुसार है घटती–बढ़ती।

आसन की सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम। यह सिद्ध होता है रेचक, पूरक व कुंभक द्वारा। साधनपाद के 50वें सूत्र में पतंजलि इशारा कर रहे हैं, रेचक, पूरक और कुंभक की तरफ। कितनी उसकी आवृति हो, कितनी देर तक श्वास रोको यह तुम स्वयं तय करना। इसकी संख्या, इसका समय, देशकाल के अनुसार व्यक्ति–व्यक्ति पर निर्भर होगा।

किसी दूसरे की नकल नहीं की जा सकती, हम सबके शरीर भिन्न–भिन्न हैं। हां, बस एक महत्वपूर्ण बात याद रखना, श्वास जो है वह सेतु है, शरीर और आत्मा के बीच, पदार्थ और परमात्मा के बीच। ऐसा समझो नदी के दो किनारे हैं, एक तरफ भौतिक जगत है और एक तरफ पराभौतिक परमात्मा है।

इन दोनों के बीच में जो ब्रिज है, सेतु है, इन दोनों को जोड़ने वाला जो पुल है, वह श्वास का पुल है। इस शरीर के भीतर आत्मा निवास कर रही है, सिर्फ इसलिए कि श्वास उनको जोड़े हुए है। श्वास टूटी फिर शरीर अलग, आत्मा अलग हो जाएगी।

इसलिए जिस व्यक्ति को शरीर से आत्मा की तरफ, पदार्थ से परमात्मा की तरफ यात्रा करनी है, उसके लिए सबसे सुगम उपाय है श्वास के माध्यम से जाना। पीछे मैंने आपसे कहा था कि अष्टांग योग के पांच बहिर्अंगों में मैं सबसे महत्वपूर्ण प्राणायाम को मानता हूं। कारण?

कारण ऐसा है जैसे कोई पूछे कि इस पार से नदी के उस पार जाने के लिए सबसे सरल उपाय क्या है? तो मैं कहूंगा पुल, सबसे आसान तरीका है कि पुल पर से चले जाओ।

हां, अन्य तरीके भी हैं, लेकिन वे जरा कठिन होंगे। तैर के भी जा सकते हो, नाव से भी जा सकते हो, लंबी छलांग लगाकर भी जा सकते हो, हेलीकॉप्टर से भी जा सकते हो।

कठिन उपाय हो सकते हैं, उनमें खतरे भी हो सकते हैं, लेकिन सबसे सुगम होगा, जब पुल बना हुआ है तो क्यों न पुल पर से चले जाओ! तो अपने भीतर जाने के लिए प्राणायाम सर्वाधिक सुगम उपाय है।

एक जगह ओशो ने कहा है कि आज तक जितने लोग बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं उनमें से सबसे ज्यादा लोग अनापानसतीयोग के द्वारा या प्राणायाम की विधि के द्वारा उपलब्ध हुए हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है, ऐसा होना ही चाहिए। पुल से ज्यादा सरल उपाय और क्या हो सकता है, उस पार जाने का। लेकिन इसकी आवृति, संख्या इत्यादि, इसके संबंध में विस्तार से नियम मत बनाना, सहज और स्वाभाविक रहना, जो तुम्हारे लिए अनुकूल हो।

अपनी विधि स्वयं ढूंढ़ना, इसलिए मैं आपको कोई विशेष विधियां नहीं सिखा रहा हूं। क्योंकि अगर मैं सिखाऊंगा, हो सकता है वे मेरे लिए ठीक रही हों, लेकिन आपके लिए ठीक न हों। जैसे भोजन के बारे में, कितना भोजन करना चाहिए, क्या भोजन करना चाहिए, यह व्यक्ति–व्यक्ति पर निर्भर करता है।

दुबले–पतले आदमी को डॉक्टर कहेगा कि ज्यादा भोजन करना, हाई प्रोटीन और हाई फैट डाइट लो। किसी अन्य मोटे मरीज से डॉक्टर कहेगा कि भाई खाना कम खाओ, घी, तेल बिल्कुल छोड़ दो। किसी लो ब्लडप्रेशर वाले से कहेगा कि नमक कम खाओ और किसी हाई ब्लडप्रेशर वाले से कहेगा कि नमक ज्यादा खाओ। कोई जेनरल रूल नहीं बन सकता सबके लिए कि कितना नमक खाना चाहिए। इसलिए पतंजलि भी अपने योगशास्त्र में कोई निश्चित बात नहीं कहते। कहते हैं, देशकाल और व्यक्ति पर निर्भर करेगा।

श्वास के संबंध में एक और मजेदार बात आपसे कहूं, हमारे जीवन में आनंद की जो भी अनुभूति होती है, उन क्षणों में हमारी श्वास ठहरी हुई होती है। शायद आपने कभी गौर न किया हो! ख्याल करना, कभी आप किसी हिल स्टेशन पर गए, सुंदर सूर्योदय देख रहे हैं और क्षण भर के लिए आपकी श्वास ठिठक जाती है। न केवल श्वास थम जाती है, उसके साथ मन में चलने वाले विचारों का प्रवाह भी रुक जाता है और अनायास ही आनंद की एक झलक मिलती है।

आप सोचते हैं कि सुंदर सूर्योदय की वजह से, कि पक्षियों की चहचहाहट की वजह से, कि ये बड़ी घाटी या पहाड़ियां, इनकी वजह से आनंद मिला। आप भूल में हैं, आपकी श्वास रुक गई थी इसलिए आनंद मिला।

खतरनाक कामों में जो आनंद आता है, लोग पहाड़ों पर चढ़ते हैं, तेज मोटर साइकिल दौड़ाते हैं, फास्ट ड्राइविंग करते हैं, जुआ खेलने जाते हैं, यद्यपि ये तो पता है कि जुआ घर से सब हार कर ही आते हैं, जुआघर का मालिक जीतता है, कसीनो का मालिक दिन–प्रतिदिन अमीर होता जाता है, कसीनो आने वालों की जेब रोज खाली होती है, सबको पता है।

लेकिन फिर भी क्यों जाते हैं कसीनो, क्यों जाते हैं जुआ खेलने? जरूर कोई आनंद आता होगा। जब आपने सिक्का उछाला है और उसमें दांव लगाया है, वह चित गिरेगा कि पट, इसपर हजारों–लाखों रुपए कि हार–जीत निर्भर है। वह सिक्के का ऊपर जाना और सिक्के का नीचे आना, इतनी देर के लिए, एक–दो सेकेण्ड के लिए आपकी श्वास चल नहीं सकती। आपने बड़ा दांव लगाया हुआ है।

उस श्वास के रुकने की वजह से आनंद मिलता है, जुआ खेलने की वजह से नहीं।

जब आप फास्ट ड्राइविंग कर रहे हैं और ऐक्सीडेंट होने का खतरा है तब आपकी श्वास बिल्कुल थम जाती है, भीतर विचार रुक जाते हैं, निर्विचार जागरूकता घटित हो जाती है। उस समय आप वर्तमान के क्षण में होते हैं।

अगर आप ठीक–ठीक विश्लेषण करें कि जीवन में जिन–जिन घटनाओं में आनंद मिलता है, आप पाएंगे कि उन सब में कहीं न कहीं ध्यान घट रहा है और श्वास थम रही है। बड़े–बड़े झूले, आजकल तो इलेक्ट्रिक के झूले आ गए हैं, जब बच्चे उनमें तीव्र गति से घूमते हैं, उन्हें क्या मजा आता है, विशेषकर जब झूला ऊपर से नीचे आ रहा है?... श्वास थम जाती है।

वॉटर पार्क में जब आप ऊंची स्लाइड पर से फिसलते हैं, कुछ क्षणों के लिए आपकी श्वास नहीं चलती। जब स्विमिंग पूल में या नदी में आप बहुत ऊपर से छलांग लगाते हैं, वह एक सेकेण्ड का क्षण, ऊपर से नीचे आने का, न श्वास चल सकती है, न विचार चल सकते हैं, अचानक आनंद की झलक मिलती है। इसका न झूले से कुछ लेना–देना है, न स्लाइड से कुछ मतलब है, न छलांग लगाने से कुछ मतलब है।

अगर ठीक–ठीक बात आपको समझ में आ जाए तो आप चौबीस घंटे में सैकड़ों बार इसका प्रयोग चलते–फिरते, उठते–बैठते, अपने घर के कामकाज करते, प्रयोग कर सकते हैं। कभी भी कुछ सेकेण्ड के लिए श्वास को रोक लें।

तो रेचक, पूरक, कुंभक इन तीनों पर ध्यान देना। और कुंभक में अंतर्कुंभक, बहिर्कुंभक दो प्रकार हुए, कर–करके थोड़ा सा देखना, जो बात तुम्हें जम जाए, जितनी देर तुम्हें जम जाए। धीरे–धीरे तुम्हें रस आने लगेगा और एक अद्भुत घटना घटेगी। बाहर के जगत से तुम विमुख होने लगोगे और अपने भीतर के प्रति सन्मुख होने लगोगे, यही इसका लक्ष्य है।

पुराने जमाने में क्षत्रिय और राजपूत हुआ करते थे। पुराने जमाने में क्षत्रियों के जो युद्ध थे वहां आमने–सामने तलवारें चला करती थीं। आजकल के युद्ध वैसे नहीं रहे। अब तो हवाई जहाज से जाकर कोई ऐटम बम फेंक आता है, इसमें किसी बहादुरी की जरूरत नहीं है। अब तो कंप्यूटर पर बैठे–बैठे बटन दबाना है और मिसाइल चल जाएगी। लेकिन पुराने जमाने में युद्ध भी एक खतरनाक खेल था और उसमें भी एक आनंद आता था। अब न वे युद्ध रहे, न वे क्षत्रिय!

जापान में तो झेन मास्टर्स ने युद्ध की कलाएं ही विकसित कीं। जूडो, कराटे, अकीटो और भांति-भांति के खेल निर्मित किए, युद्ध की कलाएं विकसित की। सोचकर थोड़ा आश्चर्य होता है कि ध्यान सिखाने वाले गुरुओं को तलवार सिखाने की क्या जरूरत? लेकिन तलवार चलाते हुए जब तुम्हारे प्राणों की नौबत आ बनती है तब तुम्हारी श्वास ठहर जाएगी और तब सहज रूप से ध्यान घटित हो सकता है। इसलिए युद्ध में, लड़ाई में और खेल में इतना मजा आता है।

एक आश्चर्य की बात है जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय थे, स्वयं गौतम बुद्ध क्षत्रिय थे, उन्होंने अपने पिछले जन्मों की भी कहानी कही, हर जन्म में वे क्षत्रिय थे। भगवान राम क्षत्रिय थे, भगवान कृष्ण क्षत्रिय थे, परशुराम एकमात्र ब्राह्मण अवतार हैं, लेकिन नाम मात्र के ही ब्राह्मण हैं, काम उन्होंने भी क्षत्रियों का किया, जिंदगी भर तलवार-फरसा लिए घूमते रहे। फरसे के कारण ही उनका नाम परशुराम पड़ गया। वे भी क्षत्रिय थे।

आश्चर्य की बात है कि अतीत में जितने भी बड़े-बड़े ध्यानी हुए, अवतार और तीर्थंकर हुए, सभी क्षत्रिय हुए। तो जरूर इसका कोई संबंध होना चाहिए। क्षत्रिय जब अपनी पूरी प्राण ऊर्जा दांव पर लगा देता है और लड़ाई में जीवन-मरण का जहां प्रश्न खड़ा हो जाता है, वहां श्वास थम जाती है, मन रुक जाता है, वहां ध्यान और समाधि की झलक मिल जाती है। एक व्यापार वाले आदमी के लिए दुकान पर बैठकर यह संभव नहीं।

अब वे पुराने ढंग के युद्ध विदा हो गए, वे पुराने ढंग के क्षत्रिय भी विदा हो गए। मैं सुन रहा था एक चुटकुला, एक महिला से किसी ने पूछा कि डायनासोर और क्षत्रिय में क्या समानता है? उस महिला ने कहा, आजकल के युग में दोनों ही नहीं बचे! और एक दूसरा सुन रहा था कि पत्नी ने अपने राजपूत पति से कहा कि ससुराल में आकर इतने सहमे-सहमे, परेशान, निराश, उदास, मुंह लटकाए क्यों रहते हो? जब शादी करने आए थे तब तो कितने धूम-धड़ाके के साथ, सीना फुलाए हुए, कटार लटकाए हुए, घोड़े पर सवार आए थे, अब क्या हो गया? सांप सूंघ गया क्या?

पति ने कहा कि हां, याद है मुझे, उस समय मैं सीना फुलाए आया था क्योंकि उस समय मेरे साथ ढाई सौ बाराती भी थे। आजकल के राजपूत और क्षत्रिय वे पुराने राजपूत और क्षत्रिय नहीं रहे। लेकिन एक जमाना था जब युद्ध भी ध्यान में डुबाने का उपाय था और जापान के इन झेन मास्टर्स ने तो इसका बहुत सही ढंग से उपयोग किया है।

पतंजलि के इस प्यारे सूत्र को समझाते हुए हमारे प्यारे सद्गुरू ओशो ने कहा- जब तुम श्वास भीतर लेते हो तो उसे थोड़ी देर रोकना ताकि द्वार अनुभव किया जा सके, जब तुम श्वास बाहर छोड़ते हो तो उसे थोड़ी देर बाहर रोकना ताकि तुम ज्यादा आसानी से अनुभव कर सको उस द्वार को, उस शून्य अंतराल को, क्योंकि तुम्हारे पास थोड़ा ज्यादा समय होगा। या अचानक श्वास को रोक लो, रास्ते पर चलते हुए अनायास एक झटका और मृत्यु भीतर प्रवेश कर जाती है!

कभी भी, किसी भी समय तुम अचानक श्वास को रोको, कहीं भी बिना योजना के और श्वास के रुकने से मृत्यु भीतर प्रवेश कर जाती है और उसके कंट्रास्ट में परम जीवन का अनुभव होता है। उपरोक्त प्राणायाम की आवृत्ति और अवधि देशकाल और संख्या के अनुसार ज्यादा लंबी और सूक्ष्म होती जाती है।

इन अंतरालों का जितना ज्यादा तुम अध्ययन करते हो, भीतर का द्वार उतना ज्यादा विस्तीर्ण होता जाता है, तुम उसे उतना ज्यादा अनुभव करने लगते हो। इसे अपने जीवन का हिस्सा बना लेना। जब भी तुम कुछ नहीं कर रहे हो, फुरसत में हो, श्वास को भीतर रोक लेना, अनुभव करना उसे वहां। वह कहीं जा नहीं रही, बस उस क्षण में द्वार खुलता है। यद्यपि थोड़ा अंधेरा है, टटोलना होगा तुम्हें, द्वार तुरंत नहीं मिल जाएगा, थोड़ा खोजना पड़ेगा। या जब कभी श्वास बाहर जा रही है और अचानक रोक लो, तुरंत विचार ठहर जाएंगे। प्रयोग करके देखना, ये बातें समझने की नहीं, प्रयोग करने की हैं।

अचानक श्वास रोक देना और तुरंत मन का प्रवाह भी रुक जाएगा, विचार थम जाएंगे, क्योंकि विचार और श्वास दोनों संबंधित हैं, इस तथाकथित जीवन से। उस दूसरे जीवन में, दिव्य जीवन में, परम जीवन में श्वास की कोई जरूरत नहीं। तुम जीते हो वहां, लेकिन श्वास की जरूरत नहीं, तुम जीते हो उस दिव्य जीवन में, वहां विचारों की जरूरत नहीं। विचार और श्वास इस भौतिक जीवन में जरूरी हैं, वे इस भौतिक संसार का हिस्सा हैं। निर्विचार जागरूकता और निःश्वास, वे शाश्वत जीवन का हिस्सा हैं।

बहुत मित्र जब यहां समाधि के प्रयोग करते हैं तो मुझसे पूछते हैं कि समाधि में कभी–कभी ऐसा लगता है कि जैसे श्वास रुक गई और मृत्यु का भय घेर लेता है और हम लौट आते हैं। नहीं! लौटना मत, डरना मत! वहीं से तो अंतर्यात्रा का द्वार खुल रहा था। और 'समाधि' ध्यान की पराकाष्ठा को भी कहते हैं और कब्र को भी। कभी शायद आपने इस बात पर गौर न किया हो। मृत्यु का प्रतीक है समाधि और ध्यान की पराकाष्ठा भी है समाधि। दोनों में समानता है, दोनों में श्वास थम जाती है।

योगी इसे एक दूसरे ढंग से कहते हैं। वे कहते हैं सामान्यतः हमारी श्वास बाएं और दाएं नथुने से चल रही है। इसको वे इंगला नाड़ी, पिंगला नाड़ी कहते हैं या सूर्य व चंद्र नाड़ी कहते हैं।

वे कहते हैं कि एक तीसरी नाड़ी और है; जैसे त्रिवेणी में गंगा, यमुना तो दिखाई देती हैं, सरस्वती दिखाई नहीं देती, ठीक इसी प्रकार ये इंगला, पिंगला नाड़ी के बीच में एक सुषुम्ना नाड़ी है। समाधि में वहां से श्वांस चलती है, अत्यंत सूक्ष्म, अत्यंत धीमी, करीब–करीब ठहरी हुई। इसलिए समाधि में करीब–करीब मरने जैसा लगता है।

सच पूछो तो समाधि अहंकार की मृत्यु है, लेकिन आत्मा का परम जीवन है। उसी समाधि के दिशा में पतंजलि के साथ हम एक–एक कदम उठा रहे हैं। धन्यवाद!!

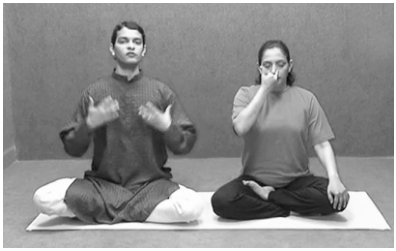

सूक्ष्म प्राणायाम

साधनपाद : 50

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।

चौथा प्राणायाम सूक्ष्म है, भीतर से संबंधित है;
प्रथम तीन के पार, वह भिन्न अनूठा अद्भुत है।

प्राणायाम का चौथा प्रकार आंतरिक है, सूक्ष्म है, भीतर से संबंधित है। ओशो समझाते हैं कि गौतम बुद्ध ने इसी को अनापानसतीयोग नाम दिया है।

मुल्ला नसरुद्दीन से किसी ने पूछा कि गर्मी लगने पर आप क्या करते हैं? मुल्ला ने कहा कि आसान है, कूलर के सामने जाकर बैठ जाता हूं। उस आदमी ने पूछा कि मान लो तब भी गर्मी लगे तो क्या करते हैं? मुल्ला ने कहा कि तब मैं कूलर का बटन ऑन कर लेता हूं।

अभी तक पतंजलि प्राणायाम की जो विधियां बता रहे थे, उन्होंने कूलर के सामने लाकर बैठाया। आज के सूत्र में अब कूलर का बटन ऑन करना सिखा रहे हैं, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। उन्होंने तीन प्रकार की विधियां कहीं – रेचक, पूरक और कुंभक। कुंभक के तीन प्रकार– भीतर रोकना, बाहर रोकना, अचानक रोकना। अब कहते हैं कि इनके भी पार असली प्राणायाम है। इतना ही कहकर उन्होंने छोड़ दिया है, इस संबंध में बताया नहीं कि वह चौथा प्राणायाम क्या होता है।

ओशो ने इसकी व्याख्या करते हुए इस प्रकार से समझाया है, गौर से सुनना–

पतंजलि कहते हैं प्राणायाम का चौथा आयाम आंतरिक होता है और वह प्रथम तीन के पार जाता है। इस चौथे प्रकार पर बुद्ध ने बहुत जोर दिया है, वे इसे कहते हैं अनापानसतीयोग। वे कहते हैं, कहीं भी श्वास को रोकने की कोशिश मत करना, बस, श्वास की पूरी प्रक्रिया को चुपचाप देखते रहना। श्वास भीतर जाती है देखना, एक भी

श्वास चूकना मत, श्वास बाहर जाती है तुम देखते रहना। फिर एक ठहराव आता है– जब श्वास भीतर जा चुकी तो पल भर के लिए रुकी है, उस रुकने को देखना, कुछ मत करना बस देखते रहना। फिर श्वास चली बाहर की यात्रा पर, देखते रहना। जब श्वास पूरी तरह बाहर चली गई, फिर क्षण भर के लिए ठहरती है, भीतर को मुड़ती है, उस मोड़ को देखना।

फिर श्वास भीतर आई, फिर बाहर गई, फिर भीतर आई, फिर बाहर गई तुम चुपचाप इसे देखते रहना, निरीक्षण करते रहना, यह निरीक्षण करना ही चौथा प्रकार है। केवल देखते रहने से ही तुम श्वास से अलग हो जाते हो। जब तुम श्वास से अलग हो जाते हो तब तुम विचारों से भी अलग हो जाते हो।

असल में शरीर में श्वास की प्रक्रिया और मन में विचारों की प्रक्रिया, दोनों समानांतर चलती है। विचार चलते हैं मन में, श्वास चलती है देह में। वे समानांतर प्रक्रियाएं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पतंजलि भी इसकी ओर संकेत करते हैं, यद्यपि उन्होंने जोर नहीं दिया है, चौथे प्राणायाम पर। वे केवल संकेत करते हैं इसकी ओर।

लेकिन बुद्ध ने तो अपना पूरा ध्यान चौथे प्राणायाम पर ही केन्द्रित कर दिया है। वे प्रथम तीन की बात ही नहीं करते, संपूर्ण बौद्ध ध्यान–पद्धति चौथे प्राणायाम पर आधारित है। प्राणायाम का चौथा प्रकार जो कि वास्तव में साक्षी होना है, आंतरिक होता है और वह प्रथम तीन के पार जाता है।

पतंजलि ने इसकी विस्तार से चर्चा क्यों नहीं की?

ओशो समझाते हैं कि संभवतः पतंजलि जिस जन–समूह से बात कर रहे थे, वे बहुत विकसित चेतना के लोग नहीं थे। उन्हें गौण बातें ही बताई जा सकती थीं। बुद्ध जिन शिष्यों से बात कर रहे थे उनकी समझ ज्यादा विकसित थी, उन्हें और सूक्ष्म बात बताई जा सकती थी कि श्वास की विधि में मत उलझना, ये लेना, छोड़ना, रुकना, इससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है– साक्षीभाव से श्वास को देखना। श्वास को बदलने की कोशिश मत करना।

सामान्यतः योगाचार्य जिस प्रकार की विधियां सिखाते हैं, उसमें विधि पर जोर होता है, क्रिया पर जोर होता है जबकि जाना है निष्क्रिय जागरूकता में। इसलिए बुद्ध ने क्रियाओं की बात ही नहीं की। उन्होंने कहा श्वास जैसी चल रही है नैसर्गिक, प्राकृतिक, स्वाभाविक, उसे चलने दो, उसमें कोई भी छेड़खानी करने की जरूरत नहीं। तुम तो चुपचाप उसके द्रष्टा बन जाओ, बस असली बात हो गई।

श्वास के द्रष्टा बनते ही भीतर तुम विचारों के भी द्रष्टा बन जाते हो। मन ठहर जाता है। सारी चेतना श्वास को देखने में लग गई और तब एहसास होता है कि मैं श्वास से भिन्न हूं और जब तुमने स्वयं को श्वास से भिन्न जान लिया, क्योंकि जिस चीज को तुम जान रहे हो, देख रहे हो, निश्चित ही तुम उससे भिन्न हो।

तुम एक वृक्ष को देखते हो तो तुम एक वृक्ष तो नहीं हो, तुम एक पहाड़ को देखते हो तो निश्चित ही तुम पहाड़ से अलग हो, वर्ना तुम पहाड़ को देखते कैसे, जब तुम श्वास को देखने

वाले बन गए, तुम श्वास से पृथक अपनी सत्ता को महसूस करोगे। श्वास शरीर का हिस्सा है, इसलिए जब तुम श्वास के साक्षी हो गए, तुम शरीर के भी साक्षी हो गए, मन के भी साक्षी हो गए, क्योंकि तन और मन आपस में जुड़े हुए हैं। एक साइकोसोमैटिक फेनौमेना है, वे दोनों अलग-अलग नहीं हैं।

जब तुम तन-मन दोनों के साक्षी हो गए तो फिर तुम हो क्या?

तुम चेतन हो। न तुम तन हो, न तुम मन हो, तुम वह चेतन हो जो इन दोनों को जान रहा है। श्वास के माध्यम से इस दिशा में जाना बहुत ही आसान है। जो लोग श्वास की विधि में अटक जाते हैं, कुछ करने में लग जाते हैं, वे फिर कर्ताभाव में, अहंकारभाव में चले जाते हैं, आत्मा को जानने से चूक जाते हैं। इसलिए बुद्ध ने बात ही छोड़ दी कि कैसी श्वास लेना।

तो पतंजलि ने भी इस तरफ इशारा किया है, लेकिन विस्तार से इसको नहीं समझाया। अगर इस चौथी विधि को समझना हो जो कि वास्तव में अविधि है, नाममात्र की ही विधि है, इट इज ए नो-टेकनिक, तो जैसा जापान के झेन फकीर कहते हैं, सिटिंग सायलेंटली डूइंग नथिंग, कुछ न करो बस यूं ही बैठे रहो, जागरूक, होश से भरे, श्वास को देखते हुए और तब श्वास, शरीर और मन, इन सबसे पृथक, तुम अपनी आत्मसत्ता को पहचान लेते हो।

एक बार विचित्तर सिंह मुझसे पूछ रहे थे कि मैं कुछ असंभव काम करके दिखाना चाहता हूं, आई वॉन्ट टू डू समथिंग इंपॉसिबल। स्वामीजी आप कुछ सलाह दीजिए। मैंने कहा बिल्कुल! मैं आपको एक असंभव काम करने की तरकीब बताता हूं, यू कैन डू समथिंग इंपॉसिबल। मैंने विचित्तर सिंह से कहा कि तुमने कहावत तो सुनी ही होगी कि नथिंग इज इंपॉसिबल। वे कहने लगे हां सुनी है। मैंने कहा बस डोंट डू एनीथिंग जस्ट डू नथिंग, यू विल डू द इंपॉसिबल, बिकॉज नथिंग इज इंपॉसिबल।

जिसे हम ध्यान करना कह रहे हैं, साक्षी होना कह रहे हैं, वास्तव में वह 'कुछ नहीं' करना है। लेकिन शब्द में 'करना' कहना पड़ेगा। ध्यान करो, लेकिन इससे भ्रम पैदा हो जाता है कि जैसे ध्यान ही कोई क्रिया है। नहीं, ध्यान क्रिया नहीं है, ध्यान 'कुछ नहीं' करना है। सिटिंग सायलेंटली डूइंग नथिंग- यही है ध्यान का अर्थ। तो अनापानसतीयोग वास्तव में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पतंजलि उसे चौथा प्रकार कह रहे हैं।

यहां पर मैं जिक्र करना चाहूंगा विज्ञान भैरव तंत्र का, जिसमें भगवान शिव ने पार्वती देवी को श्वास की नौ विधियां कहीं। प्रत्येक विधि में किसी खास बिंदु पर ध्यान देने के लिए कहा गया है। किसी विधि में कहा गया है कि जब श्वास भीतर प्रवेश कर रही है, किसी में कहा गया है जब श्वास पेट तक पहुंची, किसी में कहा गया है मुड़ने के पहले, किसी में कहा है मुड़ने के पश्चात्, किसी में कहा है जब श्वास बाहर गई है और क्षण भर को रुकी है, इन खास-खास बिंदुओं पर ध्यान दो। किसी विधि में कहा गया है कि आज्ञा चक्र पर श्वास के साक्षी बनो, किसी पर कहा है कि सहस्रार पर प्रकाश बरस रहा है और श्वास को देखो,

इस सबमें भी लोग उलझ गए। इसको भी उन्होंने एक क्रिया बना लिया। गौतम बुद्ध ने अद्‌भुत किया, उन्होंने सारी क्रियाओं से मुक्ति दिला दी। उन्होंने कहा श्वास के साथ जरा भी छेड़खानी करने की जरूरत नहीं, बस तुम तो श्वास के साक्षी बन जाओ।

असली सूत्र साक्षीभाव है, द्रष्टा होना है, यू बिकम द वॉचर ऑफ योर ब्रीदिंग प्रोसेस ऐण्ड वॉच द वॉचर। यह कौन है जो श्वास को देख रहा है, उसके प्रति भी जागरूक बनो और तुम पाओगे तुमने अपनी आत्मसत्ता को जान लिया। इससे ज्यादा सरल और कुछ भी नहीं हो सकता! ओशो कहते हैं पतंजलि के ऊपर दी गई प्रवचनमाला का नाम उन्होंने रखा है, योगा द अल्फा ऐण्ड द ओमेगा... अल्फा यानी 'ए', ओमेगा यानी 'जेड'। पतंजलि ने शुरुआत से लेकर अंत तक योगशास्त्र का पूरा विज्ञान दे दिया।

ओशो कहते हैं पश्चिम में अरस्तू हुआ जिसने तर्कशास्त्र का पूरा विज्ञान दिया। अरस्तू को हुए दो हजार साल हो गए, आज तक तर्कशास्त्र में कुछ जोड़ा या घटाया नहीं जा सका। लेकिन ओशो कहते हैं कि अरस्तू से भी हजारों गुना महत्त्वपूर्ण चेतना का विज्ञान योगशास्त्र पतंजलि ने दिया और शुरू से लेकर अंत तक जो भी कहा जा सकता है सब कुछ कह दिया, कुछ भी छोड़ा नहीं। एक शब्द इसमें घटाया नहीं जा सकता, एक शब्द बढ़ाया नहीं जा सकता, अपने आप में संपूर्ण विज्ञान है यह।

यद्यपि चौथे प्राणायाम की विस्तार से चर्चा नहीं की, लेकिन जिक्र कर दिया। कुछ भी छूटा नहीं है, पतंजलि के शास्त्र में। अध्यात्म के बारे में भीतर जाने की जो भी विधि हो सकती है, उसमें से कोई हिस्सा छूटा नहीं है। इसमें कुछ जोड़ा नहीं जा सकता।

मैंने सुना है एक चुटकुला, एक भक्त ने जाकर शंकरजी के मंदिर में प्रार्थना की कि हे भोलेनाथ! मुझे दर्द दे, मुझे पीड़ाएं दे, दुनिया भर के दुख मुझमें डाल दे, असहनीय कष्ट दे, कष्टों का पहाड़ मेरी छाती पर पटक दे, हे प्रभु मुझे संताप की सरिता में डुबा दे, मेरे पीछे चुड़ैल लगा दे, मेरी खोपड़ी में डिप्रेशन और टेंशन भर दे। शंकरजी ने अपना त्रिशूल उठाया और गुस्से में कहा कि अरे बकवासी भक्त इतनी लंबी–चौड़ी बकवासें क्यों करता है, एक लाइन में बोल न कि तुझे बीबी चाहिए!

जैसे एक शादी ही सारी बरबादी का कारण है, एक पत्नीदेवी या एक पतिदेव काफी हैं सारे दुखों के लिए। ठीक वैसे ही मैं आपसे कहना चाहता हूं, एक अनापानसतीयोग ही काफी है, सारे सुखों के लिए। भीतर के उस परमानंद को जानने के लिए, पतंजलि का चौथा प्राणायाम पर्याप्त है। इससे ज्यादा और किसी चीज की जरूरत नहीं है।

और इसे विधि मत बनाना, यह कोई विधि नहीं है, यह अविधि है।

सहज, स्वाभाविक, श्वास के प्रति जागरूक रहना, बस....!

और तुम खजानों का खजाना अपने भीतर पा लोगे।

धन्यवाद!!

तमसो मा ज्योतिर्गमय

साधनपाद : 51

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

सूर्य ढंका हो बादल से, वैसा आत्म–प्रकाश है;
जब हट जाता आवरण, तो खुलता आकाश है।

पतंजलि आगे बताते हैं कि उस आवरण का विसर्जन हो जाता है, जो प्रकाश को ढंके हुए है।

खुद को देखा है, हां आज खुद को देखा है, खुद को एक बार फिर से देखा है।
यूं तो देखा था पहले भी कभी, आज जानो–जिगर से देखा है।
खुद को देखा था उनकी आंखों से, अबकी अपनी नजर से देखा है।
जहां खो जाते हैं राहें–मंजिल, भर नजर उस रहगुजर से देखा है।
इधर से देखी थी सीढ़ियों पर धूप, उधर से चांदनी को देखा है।
मन में देखा था एक शब्दों का सनम, एक चुप्पी को मुखर देखा है।
एक खुशबू जो इस जहां की नहीं, गुले दिल को खुशबू से तर देखा है।
सम्हाले चलते रहे एक छलकता सागर, ये अपने पांव सर से देखा है।
आंखों से पी है अंदर की मय, और शायद अधर से देखा है,
ये आंखें जब होने लगीं खाली, तब स्वयं को आंख भर के देखा है।

जब आंखे बाहर के प्रतिबिंबों से भरी हों, तब हम स्वयं को नहीं देख पाते। जब भीतर की आंख खाली हो जाती है, भीतर देखने की घटना घटने लगती है। खुद को देखा था शहर की भीड़ में... हमने सदा दर्पणों में ही खुद को देखा था, आइनों में अपनी छवि देखी थी, सीधे–सीधे खुद को नहीं जाना था।

खुद को देखा था शहर की भीड़ में, अब मुझे मेरे घर में देखा है,
चांद को देखा था जमीं से बहुत, जमीं को चांद पर से देखा है।
हरा है वादियों का अंधेरा भी, रोशनी के शिखर से देखा है,

डुबाने वाले हैं अकसर साहिल हीं, ये नजारा लहर से देखा है।

कितने नाजुक हैं हकीकतों के महल, ख्वाब के कांचघर से देखा है,

यूं तो देखा है घड़ी भर को सही, पर लगे उम्र भर से देखा है।

जब खुद की पहली–पहली झलक मिलनी शुरू होती है तो भ्रम खड़ा हो जाता है कि शायद हमने पूरा देख लिया। लेकिन याद रखना अभी–भी पूरी बात नहीं बनी है, बस झलक ही है।

यूं तो देखा है घड़ी भर को सही, पर लगे उम्र भर से देखा है।

लंबी पहचान दी है कुछ यूं ताजी, जो प्यार की पहली नजर से देखा है,

जल रहे हर तरफ चिरागों पे चिराग, ऐसा जलवा और किधर देखा है।

इश्क में बुझके भी जलने की अदा, हमने पतंगों के पर से देखा है,

लफ्जों के दायरे हैं कितने छोटे, ये लफ्जों से गुजर के देखा है।

हम भला देखते कैसे खुद को, उनके महरो असर से देखा है।

योगी को जब आत्मदर्शन की पहली–पहली झलक मिलती है, प्रभु की कृपा का एहसास होता है कि हम स्वयं तो यह कार्य न कर पाते!

हम भला देखते कैसे खुद को, उनके महरो असर से देखा है,

हां, एक बार फिर से देखा है, यह जो तन की सीमा रेखा है, उसके पार खुद को देखा है।

योगी धीरे–धीरे शरीर से दूर हटने लगता है, प्राणायाम के पश्चात् ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम अपने घर आ गए। पतंजलि कहते हैं कि फिर उस प्रकाश के ऊपर ढंके हुए आवरण का विसर्जन हो जाता है। लेकिन याद रखना, अभी भी पूरी बात नहीं हुई। अभी तो हम योग के चौथे अंग पर पहुंचे हैं, प्राणायाम पर। अगर यहीं पूरी बात बन जाती तो फिर प्रत्याहार, ध्यान, समाधि की आवश्यकता ही क्या थी!

अकसर ऐसा होता है, यदि बहुत अहंकारी व्यक्ति हो, जब तक वह अहंकार से लड़ रहा है, उस आवरण को हटाने की कोशिश कर रहा है, तब तक तो वह साधनारत रहता है। एक बार उसे लगने लगे कि पहुंच गया अपने घर, पहुंच गया अपने भीतर, भ्रम खड़ा हो जाता है कि हमने अपनी मंजिल पा ली। और तब आगे की उसकी अंतर्यात्रा रुक जाती है।

बहुत से योगी प्राणायाम पर रुक जाते हैं, समाधि तक नहीं पहुंच पाते... उसका कारण है कि उन्हें बड़ी प्रीतिकर अनुभूति होने लगती है।

स्वयं को शरीर जाना था सदा, अब तन की सीमारेखा के पार स्वयं को देखा है।

बहुत सुंदर अनुभव होता है, लेकिन यह सुंदर अनुभव ही सबकुछ नहीं है, अभी तो हमने आधी यात्रा की है। अभी मंजिल पर नहीं पहुंचे, अभी आधी यात्रा और करनी है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र चंदूलाल से कह रहा था कि मेरे मुहल्ले में कुत्तों का जमघट है। रात भर इतनी बार भौंकते हैं, भौं–भौं मची ही रहती है। मेरा सोना हराम हो गया है। कई महीनों से मैं ठीक से सो नहीं पाया हूं। चंदूलाल ने कहा अरे! इसमें मुसीबत की क्या बात है, एक नींद की गोली भीतर और समस्या गायब! चैन से सोओ। हफ्ते भर बाद फिर

चंदूलाल और नसरुद्दीन की बात हुई। चंदूलाल ने पूछा, गोलियों ने अपना असर दिखाया? चैन से सोने लगे? नसरुद्दीन ने कहा नहीं भाई! अरे मैं तो और मुसीबत में फंस गया। मैं नींद की गोलियां लिए–लिए कुत्तों के पीछे दौड़ता हूं, उन्हें पकड़ भी लेता हूं लेकिन समझ में नहीं आता उनको खिलाऊं कैसे, वे खाते ही नहीं!

सीधी सी बात को भी गलत समझ सकते हैं! खुद गोली खाने के बजाय कुत्तों के पीछे पड़ सकते हैं, तब नींद और भी नष्ट हो जाएगी। ठीक यही दुर्घटना घट जाती है, कुत्तों को पकड़ना एक बात है, कुत्तों को गोली खिलाना दूसरी बात है। 'पकड़ना' केवल आधी बात है।

प्राणायाम में योगी को बहुत सुंदर अनुभूतियां होने लगती हैं और जहां से सुंदर अनुभव शुरू होते हैं, वहीं से खतरा भी शुरू होता है। कहीं ऐसा न हो कि हम इसी को यात्रा का पूर्ण विराम समझ लें। इस सूत्र को समझाते हुए परमगुरू ओशो कहते हैं–

प्राणायाम के बाद पतंजलि कहते हैं, फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है जो प्रकाश को ढंके हुए है। इस सूत्र में गहरे उतरना है, एक–एक शब्द पर ध्यान देना है और समझना है, क्योंकि बहुत सी बातें निर्भर करेंगी इस सूत्र पर। पतंजलि यह नहीं कह रहे कि प्राणायाम के बाद ही तीव्र प्रकाश पा लिया जाता है। पतंजलि के बहुत से व्याख्याकारों ने गलत दृष्टि अपनायी। वे सोचते हैं कि यह सूत्र कहता है कि आवरण हट जाता है और व्यक्ति प्रकाश को उपलब्ध हो जाता है। वास्तव में ऐसा नहीं है! यदि ऐसा होता तो फिर धारणा, ध्यान, समाधि कि क्या जरूरत पड़ती?

यदि तुम प्रत्याहार में ही अपने लक्ष्य तक पहुंच गए होते, अपने अंतर्तम केन्द्र को स्पर्श कर लिया होते, उसके तीव्र प्रकाश को जान लिया होता तो फिर धारणा का, ध्यान का, समाधि का क्या उपयोग! फिर करने के लिए बचता ही क्या है। नहीं, पतंजलि का यह अर्थ नहीं हो सकता, यह सूत्र बहुत स्पष्ट है। पतंजलि कह रहे हैं, आवरण का विसर्जन, प्रकाश की उपलब्धि नहीं। ये दोनों अलग बाते हैं। आवरण का हटना एक नकारात्मक उपलब्धि है, वह प्रकाश पाने की संभावना निर्मित करती है। लेकिन आवरण का हटना अपने–आप में प्रकाश की उपलब्धि नहीं है, और करने को बहुत सारी चीजें अभी शेष रह गई हैं।

उदाहरण के लिए तुम आंखें बंद किए जीते रहे, जन्मों–जन्मों तुम्हारी आंखों ने सूरज की रोशनी न देखी, पलकों ने आवरण का काम किया, आंखों पर। कई जन्मों के बाद तुम अपनी आंखें खोलते हो। अब आवरण तो नहीं है, पलक उठ गई, लेकिन तुम प्रकाश को न देख पाओगे। क्योंकि आंखें अंधेरे की अभ्यस्त हो गई हैं। सूरज तुम्हारे सामने मौजूद होगा, कोई आवरण भी न होगा, लेकिन फिर भी तुम उसे न देख सकोगे। आवरण हट गया, लेकिन अंधकार का लंबा हिस्सा तुम्हारी आंखों का हिस्सा बन चुका है।

सील आवरण तो हट गया लेकिन एक सूक्ष्म आवरण, अंधकार की आदत का, अभी भी तुम्हें घेरे हुए है। जन्मों–जन्मों जिए हो, एक संस्कार पड़ गया है। सूरज की रोशनी तुम्हारी आंखों के लिए बहुत ज्यादा चमकदार होगी। आंखें चौंधिया जाएंगी, वे इतनी तेज रोशनी बरदाश्त न कर पाएंगी। बरदाश्त करने की भी एक आदत बनानी होगी, तब जाकर असली

अंधकार मिटेगा। इस बात को ख्याल रखना। आवरण का हट जाना ही सबकुछ नहीं है। जैसे कोई व्यक्ति बीमार है, डॉक्टर उसका इलाज करते हैं और ब्लड की रिपोर्ट कहती है कि अब यह व्यक्ति बिल्कुल ठीक है। डॉक्टर कहते हैं कि तुम ठीक हो घर जा सकते हो, लेकिन अभी वह व्यक्ति पूरा ठीक हुआ नहीं। भीतर से उसे स्वास्थ्य महसूस नहीं हो रहा। यद्यपि लैबोरेट्री के सारे जांच बता रहे हैं कि अब बीमारी नहीं रही, बीमारी के कीटाणु नष्ट हो गए। बीमारी का हट जाना एक बात है और स्वास्थ्य का प्रगट होना दूसरी बात है। हां, बीमारी का हट जाना भूमिका का रोल अदा करेगा। लेकिन अभी पॉजिटिव स्वास्थ्य के आने में समय लगेगा।

बीमारी का हट जाना निगेटिव है, जरूरी है, लेकिन वहीं स्वस्थ हो जाना नहीं है। स्वास्थ्य की अपनी एक पॉजिटिव फीलिंग होती है।

याद रखना प्राणायाम तक योगी को खूब–खूब सुंदर अनुभव होने लगते हैं, लेकिन इसके बाद अभी भी कुछ शेष रह गया है। कुछ यात्रा बाकी रह गई है, अटक मत जाना। मेरे देखे बहुत से योगी प्राणायाम पर अटक जाते हैं। लगता है कि आ गई मंजिल, शरीर के पार स्वयं की सूक्ष्म अनुभूति, ऊर्जा के एक पुंज जैसा स्वयं को महसूस करने लगे, उसका कोई रूप नहीं है, उसका कोई आकार नहीं है, लगता है कि आ गए, यही है वह निराकार जिसे हम खोज रहे थे। पदार्थ के पार स्वयं के होने को महसूस करने लगे। लगता है कि आदिशक्ति को जान लिया। जो है वह बहुत सुंदर है, लेकिन रुकने जैसा नहीं है, इसे अटकाव मत बना लेना।

मैंने सुना है, विचित्तर सिंह की पत्नी लंदन जा रही थी। विचित्तर सिंह बड़े शौकिया मिजाज के मंजनू टाइप के आदमी थे। पत्नी ने पूछा कि लंदन से आपके लिए क्या गिफ्ट लाऊं? विचित्तर सिंह बोले, एक अंग्रेज लड़की मेरे लिए लेकर आना। चार महीने बाद उनकी पत्नी लंदन से वापस लौटी। विचित्तर सिंह ने कहा, पूछा कहां है मेरा गिफ्ट? पत्नी ने पेट पर अपना हाथ फेरते हुए कहा, थोड़ा धीरज रखिए जी। नौ महीने बाद आपकी गिफ्ट आपको डिलीवर कर दूंगी!

वहीं मैं कहना चाहूंगा कि थोड़ा इंतजार करना। अभी गिफ्ट डिलीवर होना बाकी है, समय लगेगा। छोटी–छोटी चीजों में भी समय लगता है। एक बच्चे के पैदा होने में भी नौ महीने का समय लग जाता है, बीज के अंकुरित होने में समय लग जाता है। बीज अंकुरित हो जाए, पौधा बन जाए फिर भी समय लगता है। पानी सींचते जाना, खाद डालते जाना और प्रतीक्षा करना, इंतजार करना। जब बसंत का मौसम आएगा, तब इस पौधे में फूल लगेंगे। अभी तक जो हमने किया है– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, उन सब से भूमिका निर्मित हो गई, अंकुरण भी हो गया लेकिन यही सबकुछ नहीं है। अभी फूल आने बाकी हैं।

अभी मत कहने लगना की हां, मैंने देखा है, खुद को जानो–जिगर से देखा है, बस इतना ही कहना कि सिर्फ शुरुआत हुई है, शुभारंभ हुआ है। आगे और, आगे और... बुद्ध अपने शिष्यों से सदा कहा करते थे– करीब–करीब हर प्रवचन में कहा करते थे– चरैवेति–चरैवेति, चलते चलो, चलते चलो। अध्यात्म की यात्रा अनंत यात्रा है, कहीं भी रुक मत जाना।

प्राणायाम के बाद वाले बिंदुओं पर हम बाद में विचार करेंगे। धन्यवाद!!

एकाग्रता

साधनपाद : 52

धारणासु च योग्यता मनसः।

जब सुखदायी थिर आसन, प्राणायाम सध जाता;
तब मिट जाती चंचलता, एकाग्र मन हो पाता।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम के पश्चात्, मन गर्भ के समान, धारण–योग्य बनता है।

जिन्होंने है तुझे देखा, नैन वे और होते हैं,
जो बनते वंदना के छंद, क्षण वे और होते हैं। जिन्होंने है तुझे देखा...
यहां गुलजार गुलशन क्या अजब सब फूल तेरे हैं,
लगे पर जो गले तेरे सुमन वे और होते हैं। जिन्होंने है तुझे देखा...
नहीं दिखता मुझे जब सत्य भी मेरे लिए सपना,
कि जो हक में हकीकत के स्वप्न वे और होते हैं। जिन्होंने है तुझे देखा...
अगन जाए न बुझ बहते रहे आंसू किसी हद तक,
उठाते जो लपट ऊंची नमन वे और होते हैं। जिन्होंने है तुझे देखा...
मरण भी लोग जीवन के लिए आदर्श पर अर्पित,
तुझे जिनके शकल जीवन मरण वे और होते हैं। जिन्होंने है तुझे देखा...
गहनवन गर्त खाई देख चलना है मुनासिब पर,
तुझे ही देखते चलते मगन वो और होते हैं। जिन्होंने है तुझे देखा...

कुछ लोगों के भीतर वह एकाग्रता की धारणा की क्षमता होती है कि वे बस अपने अंतर्तम पर नजर रखते हुए चलते चले जाएं। तुझे ही देखते चलते मगन वे और होते हैं। सामान्य आदमी का मन बड़ा ही चंचल है। पतंजलि कहते हैं, देह की स्थिरता सध गई, प्राणायाम सध गया, अब बारी आती है मन को साधने की। इस चंचल मन को भी निश्चल करना सीखना होगा। यह जो विभिन्न दिशाओं में यहां–वहां भटकता है, यह भटकना छोड़ दे, तब यह धारणा के योग्य बन

सकेगा। धारणा की पूरी बात तो हम बाद में करेंगे, विभूतिपाद में। अभी साधनपाद के समापन की तरफ चलते हुए पतंजलि बस इतना ही कहते हैं कि धारण करने की योग्यता मिल जाए, इतना ही बहुत है। चंचलता मिटे। मैं देखता हूं स्त्रियों में और पुरुषों में भेद। पुरुषों का मन ज्यादा चंचल है, स्त्रियों के बजाय। और इसलिए स्त्रियां जब ध्यान में, समाधि में डूबने की तरफ चलती हैं तो ज्यादा सुगमता से यात्रा कर पाती हैं। पुरुषों के लिए अध्यात्म ज्यादा कठिन है, स्त्रियों के लिए ज्यादा सरल है। पुरुषों के लिए राजनीति सरल है। पुरुषों के लिए विज्ञान सरल है।

मनुष्य का मन अगर देखो तो डारविन का सिद्धांत सही समझ आता है। डारविन ने कहा कि मनुष्य बंदरों से विकसित हुआ है। देखते हो न बंदरों को, कैसे उछल-कूद मचाते हैं, एक डाल से दूसरी डाल, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर छलांग भरते रहते हैं। जरा सी देर के लिए भी थिर हो नहीं सकते। बड़ी चंचलता है बंदरों में! आदमी की देह तो मैं कह नहीं सकता वास्तव में बंदरों से विकसित हुई कि नहीं, लेकिन मन निश्चित रूप से बंदरों से ही विकसित हुआ है। सदा चलायमान, यहां से वहां उछल-कूद करता हुआ। किसी को किसी स्त्री से प्रेम हो जाता है, उससे विवाह होता है। विवाह होते ही किसी दूसरी स्त्री पर नजर पड़ जाती है।

एक कार खरीदनी थी। सालों-साल मेहनत की, धन कमाया, जिस दिन कार आकर गैरेज में खड़ी होती है, उस दिन से उस कार पर नजर पड़नी बंद हो जाती है। पड़ोसी की कार दिखाई पड़ने लगती है कि वह ज्यादा ठीक है, अब दूसरी कार खरीदनी है। एक पद के लिए दीवाने थे, किसी भांति उस पद पर पहुंच गए, जैसे ही पहुंचे वह पद व्यर्थ हो गया। आगे दूसरा और बड़ा पद दिखाई देने लगा। मंत्री बन गए, अब मंत्री बनने से काम न चलेगा, अब मुख्यमंत्री बनना है। अब मुख्यमंत्री बन गए तो भी काम न चलेगा, अब प्रधानमंत्री बनना है।

आदमी का मन लगातार यहां से वहां छलांग भरता जाता है। पांच लाख कमाने का सोचा था, पांच लाख कमा लिए, तुरंत दस लाख का टारगेट खड़ा हो गया। ऐसा नहीं है कि दस लाख को पाकर तृप्ति मिल जाएगी! दस लाख के आते ही तुरंत बीस लाख की सोचने लगेंगे। आदमी का मन निरंतर बंदर की भांति कूदता रहता है, छलांग लगाता रहता है।

मैं एक चुटकुला पढ़ रहा था कि शादी एक रेस्टोरेंट में जाने जैसी स्थिति है। आप अपने पसंद की चीज ऑर्डर करते हैं, किन्तु जब भोजन आता है तब आपकी नजर बगल में बैठे सज्जन की थाली पर पड़ती है और दिल कहता है काश! मैंने भी वही चीज ऑर्डर की होती।

आदमी का चंचल मन, जो उसे मिल जाए उससे तृप्ति नहीं होती। जो दूसरों के पास है उसपर नजर पड़ती है। किसी चीज से तृप्त होता ही नहीं। ऐसा मन ध्यान में नहीं डूब सकेगा। ऐसा मन धारणा के योग्य नहीं है, यह एकाग्र न हो सकेगा।

विचित्तर सिंह 15 अगस्त के दिन अपने घर में तिरंगा झंडा फहराने के लिए झंडा खरीदने बाजार गए। एक दुकान पर उन्होंने कई प्रकार के तिरंगे झंडे देखे। छोटी साइज के, बड़ी साइज के, लेकिन उन्हें कोई जंचा नहीं। बाद में उन्होंने दुकानदार से कहा कि भाई साहब मुझे कुछ पसंद नहीं आ रहा, दूसरे अच्छे रंगों के झंडे दिखाइए न। अब तिरंगा भी दूसरे रंग का चाहिए!

आदमी का मन बड़ा विचित्र है, वह सोचता ही नहीं। धारण करने की क्षमता उसमें नहीं

है। इस सूत्र की व्याख्या अकसर की जाती है इस प्रकार से एकाग्रता की तरह। तो एकाग्रता भी ठीक, लेकिन ओशो ने इसकी और गहन व्याख्या की है, सुनो गौर से–

धारणाषु च योग्यता मनसा। और तब मन धारणा के योग्य हो जाता है। धारणा केवल एकाग्रता नहीं है, एकाग्रता में धारणा की थोड़ी सी झलक है। लेकिन धारणा एकाग्रता से बहुत बड़ी बात है। तो इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है। भारतीय शब्द 'धर्म' भी धारणा से आता है। धर्म का अर्थ है धारण करने वाला, धारण करने की क्षमता, गर्भ बनने की पात्रता।

जब प्राणायाम के साथ तुम समग्र के साथ लयबद्ध हो जाते हो तो तुम गर्भ बन जाते हो, धारण करने की विराट क्षमता बन जाते हो। तुम समाहित कर सकते हो समग्र को स्वयं के भीतर। तुम इतने विराट हो जाते हो कि सबकुछ तुममें समा सकता है। लेकिन धारणा का अनुवाद अकसर एकाग्रता की भांति क्यों किया जाता रहा है? क्योंकि इसमें एकाग्रता की थोड़ी झलक मिलती है। एकाग्रता क्या है? एक ही विचार के साथ लंबे समय तक बने रहने की क्षमता। एक ही विचार को या भाव को लंबे समय तक धारण किए रहना एकाग्रता है।

मैं तुमसे कहूं कि बंदर के विचार पर एकाग्र होओ, कोशिश करो कि बंदर का ही विचार मन में रहे, तो तुम्हारे मन में बस बंदर का ही चित्र नहीं रह पाएगा। बड़ा कठिन होगा तुम्हारे लिए। हजारों दूसरे ख्याल, दूसरे चित्र मन में आ जाएंगे। असल में बंदर को छोड़ न जाने क्या–क्या स्मरण आएगा, बंदर बार–बार खो जाएगा। बड़ा कठिन है मन के लिए किसी चीज पर एकाग्र रहना। मन बड़ा संकुचित है, बड़ा चंचल है। वह किसी चीज के साथ केवल कुछ क्षणों के लिए ही हो सकता है, फिर वह उससे हट जाता है। वह बार–बार अपना विषय बदलता है।

मन विराट नहीं है, वह लंबे समय तक किसी एक विषय के साथ नहीं रह सकता। यह मनुष्यता की गहरी से गहरी समस्याओं में से एक है। जो भी चीज हमें मिल जाती है हम उससे ऊब जाते हैं और तुरंत ही हम नए विषय की प्रतीक्षा करने लगते हैं। हमारा चित्त कहीं और चला जाता है। इस चंचल चित्त को लेकर धारणा में न जा सकेंगे, ध्यान तो दूर की बात है। तो आसन सध गया, देह निश्चल हो गई, प्राणायाम सध गया, अस्तित्व के साथ लयबद्धता आ गई, अब धारण करने योग्य बनना है। जैसे हम जमीन में बीज को दबाते हैं, पृथ्वी गर्भ बन जाती है बीज के लिए और तब पौधा अंकुरित होता है, ठीक ऐसे ही अपने मन को बनाना होगा। एक विचार के साथ, एक भाव के साथ टिकना सीखो।

भारत में एक पतिव्रता का या एक पत्नीव्रता का जो इतना महत्त्व कहा गया है, वह किन्हीं नैतिक कारणों से नहीं, बल्कि आध्यात्मिक कारणों से। जो व्यक्ति एक के साथ रहने में सक्षम है, जो एक में रस लेने लगा केवल वही व्यक्ति धारणा और ध्यान में सफल हो पाएगा। जिस व्यक्ति का रस अनेक में है, वह अपने भीतर न डूब पाएगा। यद्यपि एकाग्रता स्वयं ध्यान नहीं है, लेकिन ध्यान में ले जाने में सहयोगी होगी। जो व्यक्ति एकाग्र भी नहीं हो पाता, वह फिर ध्यान में तो डूब ही नहीं पाएगा। एकाग्रता को धारणा की तरफ जाने के लिए एक स्टेपिंग स्टोन की भांति समझना। तो धारणा और एकाग्रता पर्यायवाची तो नहीं हैं, किन्तु फिर भी एकाग्रता बहुत उपयोगी है धारणा को विकसित करने में। धारणा यानी कंटेंप्लेशन। उसकी योग्यता और

क्षमता अर्जित करनी होगी, भीतर की चंचलता को विदा करना होगा। जिस व्यक्ति ने अपने शरीर को निश्चल कर लिया, वह मन को भी निश्चल करने में सफलता हासिल कर लेगा। पतंजलि बड़े वैज्ञानिक हैं, एक–एक कदम से शुरू करते हैं। जो व्यक्ति देह को भी थिर नहीं कर पा रहा है, वह मन को कैसे थिर कर पाएगा। शरीर है स्थूल, मन है बहुत सूक्ष्म, लेकिन जिसने शरीर पर सफलता पा ली अब संभावना बनती है कि वह मन पर भी सफलता पा सकेगा।

एक बार बुद्ध के सामने कोई आदमी प्रवचन सुनने के लिए बैठा था, उसके पैर का अंगूठा हिल रहा था। बुद्ध अचानक प्रवचन देते–देते रुक गए और उससे पूछा कि मेरे भाई, तुम्हारे पैर का अंगूठा क्यों हिल रहा है? जैसे ही उससे प्रश्न पूछा उसका अंगूठा हिलना बंद हो गया। बुद्ध ने कहा अरे! तुम्हारे पैर का अंगूठा हिलना बंद हो गया, कारण क्या है? उसने कहा क्षमा करें, मुझे तो पता ही नहीं था कि पहले अंगूठा हिल रहा था और अब अंगूठा हिलना बंद हो गया। आपने पूछा तो ख्याल आया। बुद्ध ने कहा हद हो गई, तुम होश में हो कि बेहोश हो? तुम्हारे पैर का अंगूठा और तुम्हें ही नहीं मालूम कि वह हिल रहा है और जिस आदमी को अपने पैर के हिलने का पता नहीं चल रहा उसे और किस चीज का पता चलेगा?

इसके भीतर क्रोध सरकेगा, इसके भीतर लोभ हिलेगा, इसके भीतर कामवासना इसे कंपित कर जाएगी, इसे पता ही नहीं चलेगा, वे तो और भी सूक्ष्म हैं। पैर तक का जिसे होश नहीं है, पैर स्वतः ही हिल रहा है, बिना इसकी मर्जी के, इसका मन फिर इसकी मर्जी से कैसे चलेगा! तुम होश में हो कि बेहोश हो, यह तन और मन तुम्हारा है कि किसी और का है, यह किसकी आज्ञा से चल रहा है? तो बुद्ध ने उस व्यक्ति से कहा कि अपनी देह पर संयम साधो। निश्चल होना सीखो और निश्चल होने के बाद तब तुम अपने मन को भी निश्चल कर पाओगे। कई लोग सीधे मन की चंचलता को रोकने की कोशिश करते हैं और वे सदा इसमें असफल हो जाते हैं। नहीं, मन से शुरुआत मत करना। शुरुआत सदा शरीर से करना।

स्वीमिंग पूल या नदी में तैरना सीखने जाते हैं तो पहले उथले पानी में तैरना सीखते हैं, घुटने–घुटने पानी में कोई खतरा नहीं है। जब थोड़ा सध गया तब थोड़ा और गहरे पानी में जाते हैं, कमर–कमर पानी में। जब वहां हाथ–पैर फेंकने की कला आ गई तब थोड़ा गले–गले पानी में जाते हैं, अंततः एक दिन हम तैरना सीख जाते हैं। फिर ससे फर्क नहीं पड़ता कि पानी कितना गहरा है। तैरने वाले को तो ऊपर सतह पर तैरना है, नीचे दस फुट गहरा पानी है कि दस मीटर कि दस किलोमीटर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन शुरुआत में तो फर्क पड़ता है।

तुम सीधे समुद्र में कूदकर तैरना सीखने चले तो तैरना तो न सीख पाओगे, शायद अपनी जान ही गवां बैठो। वह भूल न करना। उथले पानी से तैरना शुरू करना। तो यम, नियम, आसन, प्राणायाम– अभी तक हम उथले पानी में तैरना सीख रहे थे।

धर्म भी तैरने के समान एक कला ही है। अब हम थोड़े और गहरे चलते हैं, मन के धारण करने की क्षमता को अर्जित करते हैं। धीरे–धीरे धारणा, ध्यान, समाधि के योग्य हम होते चलेंगे। ये तीनों योग के अंतरंग कहलाते हैं। ये अंतरंग वही साधक साध पाएगा, जिसने बहिर्अंग साध लिए। तो पतंजलि के साथ एक–एक कदम आगे बढ़ते चलना। धन्यवाद!!

प्रत्याहार : रिटर्निंग टू द सोर्स

साधनपाद : 54

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्त स्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार।

प्रत्याहार में इन्द्रियाँ उद्गम पर लौट आतीं;
विषयों से विमुख होकर वे अन्तर्मुखी हो जातीं।

योग का पांचवा अंग है 'प्रत्याहार' यानी स्रोत पर पुनः लौट आना। महावीर इसे 'प्रतिक्रमण' और झेन फकीर 'रिटर्निंग टू द सोर्स' कहते हैं।

तू पास नहीं मेरे तो कुछ पास नहीं है,
तेरी जो नहीं आस कोई आस नहीं है।
लब पर हंसी है तेरे तो सबकुछ मुझे पसंद,
रंजीदा अगर तू है तो कुछ रास नहीं है।
बस तेरी तमन्ना को ही दिल में छुपाए हूं,
दुनिया की कोई दौलत मेरे पास नहीं है।
सुन लेते हैं तो हो जाती है तसल्ली मेरे दिल को,
मेरे इश्क की चाहत कुछ खास नहीं है।
तुमसे नहीं जुड़ी है मेरी कौन सी उम्मीद,
कहने को मुझे तुमसे कोई आस नहीं है।

सामान्य आदमी की हालत ऐसी है। उसकी सारी आशा, उसकी सारी उम्मीदें, उसकी सारी तमन्नाएं दूसरों के पास गिरवी रखी हुई हैं। हम स्वयं से बाहर निकल गए हैं। हमारा जीवन स्वयं में केन्द्रित नहीं है, दूसरे हमारे जीवन के केन्द्र बन गए हैं।

आपने बचपन में राजाओं–महाराजाओं की कहानियां पढ़ी होंगी। वे अपने प्राण किसी तोते में छुपा कर रख देते थे, सुरक्षा के लिए। वह तोता दूर कहीं जंगल में सुरक्षित है। इस राजा को तलवार से काटो फिर थी ये कटेगा नहीं, इसे मारो ये मरेगा नहीं। जब तक उस तोते की

गरदन न मरोड़ी जाए, ये राजा मरने वाला नहीं। इसके प्राण उस तोते में सुरक्षित हैं। ये कहानियां प्रतीकात्मक हैं, हम सब करीब–करीब ऐसी ही दुर्गति में हैं। हमने अपने प्राण किन्हीं आशाओं में, किन्हीं तमन्नाओं में, किन्हीं वासनाओं में रख दिए हैं।

किसी पति ने अपनी पत्नी में रख दिए हैं, किसी बाप ने अपने बेटे में रख दिए हैं, किसी ने धन–दौलत में रख दिए हैं, किसी ने राजनीति में रख दिए हैं, किसी ने विज्ञान की खोज में रख दिए हैं, किसी ने ज्ञान में, शास्त्र में, ग्रंथों में रख दिए हैं। हमारे प्राण बस हममें नहीं हैं, हमसे बाहर कहीं और हैं। हम दूसरे विषयों में इतने उलझ गए हैं कि अपने तक लौट आना भूल गए हैं।

पतंजलि के आज के सूत्र प्रत्याहार के सूत्र हैं। प्रत्याहार यानी स्वयं पर वापस आना। हमारी चेतना का भी मूल उद्गम है, मूल स्रोत है, वापस उस बिंदु पर पहुंचना। जहां से हमने यात्रा शुरू की थी और बहिर्मुखी हुए थे फिर वहीं पहुंच जाना, अपने घर की ओर वापसी। जापान के झेन फकीर कहते हैं 'रिटर्निंग टू द सोर्स', मूल स्रोत पर वापसी। ओशो ने अपनी एक किताब का शीर्षक रखा है 'रिटर्निंग टू द सोर्स' अर्थात् प्रत्याहार।

पतंजलि जिसे प्रत्याहार कह रहे हैं, महावीर ने इसके लिए प्रतिक्रमण शब्द का उपयोग किया है। उसे समझना आसान होगा। अतिक्रमण हम सब जानते हैं, आक्रमण अर्थात् दूसरे पर हमला, अतिक्रमण यानी दूसरे की जमीन–जायदाद पर कब्जा। कहते हैं न लोगों ने अपना घर एक्सटेंड कर लिया है, सरकारी जमीन पर अतिक्रमण कर लिया है, फिर नगर निगम वाले अतिक्रमण हटाते हैं, मकान तोड़ देते हैं, सड़क को चौड़ी कर लेते हैं। तो अतिक्रमण का ठीक उल्टा है, प्रतिक्रमण। अतिक्रमण अर्थात् अपनी सीमा से बाहर चले जाना, स्वयं से दूर हट जाना और प्रतिक्रमण का अर्थ है स्वयं पर वापस लौट आना। जो वास्तव में हमारा होना है, उस पर वापस लौट आना। मुझे याद आता है एक पुराना फिल्मी गीत –

तुम्हें जिंदगी के उजाले मुबारक, अंधेरे हमें आज रास आ गए हैं,
तुम्हें पा के हम खुद से दूर हो गए थे, तुम्हें छोड़ के अपने पास आ गए हैं।

सचमुच में ऐसा ही होता है, तुम्हें पा के हम खुद से दूर हो गए थे... वह दूसरा क्या है इससे फर्क नहीं पड़ता। जब भी हम दूसरे में उलझे, स्वयं से भिन्न किसी अन्य विषय की चाहत में पड़े, हम स्वयं से दूर चले गए। तुम्हें छोड़ के अपने पास आ गए हैं। प्रत्याहार का बस यही अर्थ है– सारे बाह्य विषयों को छोड़कर स्वयं पर वापस लौट आओ। विषय से विषयी की ओर, फ्रॉम ऑब्जेक्ट्स टू द सब्जेक्ट। वह जो तुम्हारी सब्जेक्टिविटी है, तुम्हारा जो होना है अपने भीतर, उस पर ध्यान देना शुरू करो, वही प्रत्याहार है। याद रखना, विषयों से, इंद्रियों की चाहत से, चाहत का छुटकारा कैसे होगा? यह किसी प्रतिज्ञा से, संकल्प से नहीं हो सकता।

कई लोग कसम खा लेते हैं, संकल्प ले लेते हैं कि अब मैं इस चीज में रस नहीं लूंगा कि मैं धन में रस नहीं लूंगा कि राजनीति को छोड़ दूंगा कि स्त्री में रस नहीं लूंगा। लेकिन याद रखना, संकल्प लेने से, कसम खाने से बात न बनेगी। कसम तुम किसके खिलाफ खा रहे हो, इस प्रकार स्वयं तक न लौट सकोगे। केवल एक ही उपाय है स्वयं तक लौटने का, बाहर के विषयों को होशपूर्वक अनुभव करो, भोग के साथ योग को जोड़ दो, भोग के साथ जागरूकता को जोड़

दो, साक्षी होकर भोग में उतरो, उससे समझ विकसित होगी। तो प्रत्याहार में संकल्प काम नहीं आएगा। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि मैं मन को उस दिशा में जाने से रोकूंगा, वह मन नहीं रुकेगा। उल्टा ही होगा! अगर तुमने कसम खाई कि मैं मन को इस दिशा में जाने से रोकूंगा, मन वहीं–वहीं बारंबार जाएगा।

मैंने सुना है एक फकीर के बारे में। एक युवक उसके पास आता था और कहता था कि मुझे चमत्कार का राज सिखाइए, आप तो चमत्कारी पुरुष हैं। कुछ सूत्र मुझे भी दीजिए। उस फकीर ने कई बार समझाया कि बेटा, मेरे पास चमत्कारी मंत्र नहीं है, तुम व्यर्थ समय खराब न करो, बार–बार आकर तुम वही बात कहते हो, लेकिन वह युवक मानता ही नहीं था। यही हमारे मन की टेंडेंसी है, जिस चीज के लिए मना किया जाए उस चीज के लिए और आकर्षित होता है। उस फकीर ने जितना इंकार किया, युवक उतने ही और–और चक्कर लगाने लगा।

अंत में एक दिन उससे पिंड छुड़ाने के लिए उस फकीर ने कहा कि ठीक, आज मैं तुम्हें वह सीक्रेट, वह राज बता ही देता हूं। एक छोटा सा मंत्र है। रात 12 बजे स्नान करके, ताजे कपड़े पहन कर अंधेरे कमरे में बैठ जाना और इस मंत्र का सौ बार उच्चार कर लेना। मंत्र सिद्ध हो जाएगा और फिर तेरे पास चमत्कारी शक्ति आ जाएगी। जो भी तू चाहेगा वही हो जाएगा।

वह युवक तो धन्यवाद देना भी भूल गया। मंत्र लेकर भागा, फकीर ने कहा अरे भाई रुक तो, कम से कम धन्यवाद तो दे। और पूरी बात तो सुन ले, अभी मेरी बात ही खत्म नहीं हुई। एक चीज का ख्याल रखना, जब तू इस मंत्र का जाप करे, बंदर का ख्याल तेरे मन में नहीं आना चाहिए। उस युवक ने कहा आप चिंता न करें, आज तक मुझे कभी बंदर का ख्याल नहीं आया, आज क्यों आएगा? बंदरों से मेरा क्या लेना–देना। माना कि डार्विन ने कहा कि वे हमारे पूर्वज रहे, लेकिन पूर्वजों में वैसी मेरी कोई खास उत्सुकता नहीं है। आप बिल्कुल चिंता न करें, आज ही रात मंत्र को सिद्ध कर लूंगा।

लेकिन मुसीबत हो गई! जैसे–जैसे रात के 12 बजने को हुए, बंदर का थोड़ा–थोड़ा ख्याल आने लगा। जब वह स्नान कर रहा था तब उसे लगा कि बाथरूम के बाहर खिड़की में से जैसे किसी बंदर ने थपकी दी। उसने टॉर्च जलाकर देखा बाहर कोई बंदर है क्या, कोई नहीं था। उसने स्नान किया, नए कपड़े पहने, कमरे में आकर बैठा, कमरे को अंधेरा कर लिया और तभी उसे लगा कि बंदर की आवाज सुनाई पड़ी। अब मन बंदर की कल्पना करने लगा। जिस चीज का निषेध करो, उसे आमंत्रण मिल जाता है। विपरीत परिणाम का नियम, जिसे तुम चित्त से हटाना चाहोगे, उसी–उसी से और ज्यादा ग्रसित होते जाओगे। रात भर वह युवक परेशान होता रहा। उसने सोचा कि शायद ठीक से शुद्धिकरण नहीं हुआ है, पुनः स्नान करूं, दूसरे कपड़े पहन लूं, बेचारा बहुत परेशान हुआ। दो–चार बार ही मंत्र बोल पाए कि बंदर सामने आकर खड़ा हो जाए! और फिर तो ऐसा लगने लगा कि पूरे कक्ष में चारों तरफ बंदर ही बंदर मौजूद हैं!

एक बार तो लगा कि कोई कंधे पर चढ़कर बैठ गया। उसने धक्का मारा और देखा कुछ भी नहीं। रात भर सो न सका, सुबह फकीर के पास आया। सूजी हुई लाल आंखें, फकीर ने कहा क्या हुआ? मंत्र सिद्ध हुआ? उसने कहा नहीं, बड़ी मुसीबत हो गई। वह बंदरों से छुटकारा नहीं

हुआ। आपने मंत्र तो दिया, बड़ी कृपा की। अब कोई उपाय दें कि बंदरों से कैसे छुटकारा हो।

फकीर ने कहा भाई ये समस्या तेरी है तू जान। तू क्यों बंदरों की याद करता है, मत कर। उसने कहा मैंने बहुत कोशिश की याद नहीं करने की। लेकिन याद रखना, जिसे तुम भूलने की कोशिश करोगे वह और–और याद आएगा! जिन्हें हम भूलना चाहें वे अकसर याद आते हैं। तो ये प्रत्याहार कैसे होगा इस बात को खूब अच्छे से समझ लेना।

संकल्प से नहीं, मन के साथ संघर्ष करने से नहीं होगा, कसमें खाने से नहीं होगा कि अब मैं स्त्रियों में रस न लूंगा कि फलां विषय में कोई उत्सुकता न लूंगा। तुम जितनी कसम खाओगे तुम्हारा मन उतना ही उसी–उसी तरफ दौड़ेगा। फिर कैसे होगा? अनुभव से होगा।

होशपूर्वक संसार में जिओ, संसार की व्यर्थता तुम्हें खुद ही समझ में आ जाएगी। होश की कमी की वजह से तुम अनुभवों की व्यर्थता को पकड़ नहीं पा रहे हो। तो जरूरत जागरूकता को साधने की है।

ओशो ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है–

योग का पांचवा अंग है प्रत्याहार, स्रोत पर लौट आना। यह मन की उस क्षमता की पुर्नस्थापना है जिससे बाह्य विषयजनित विक्षेपों से मुक्त हो इंद्रियां वश में हो जाती हैं। जब तक तुम बाहरी चीजों से होने वाले चित्त विक्षेपों से नहीं छूटते, तुम भीतर नहीं जा सकते क्योंकि वे चीजें तुम्हें बार–बार बुलाती रहेंगी। यह ऐसा ही है जैसे तुम ध्यान कर रहे हो किन्तु तुमने अपने ध्यान कक्ष में टेलीफोन रख लिया है। वह बार–बार बजता है तो तुम ध्यान कैसे कर पाओगे?

तुम्हें टेलीफोन हटा देना होगा और यह कोई एक टेलीफोन की बात नहीं है। तुम्हारे आस–पास लाखों–लाखों चीजें चल रही हैं, सैकड़ों टेलीफोन बज जा रहे हैं। जब ध्यान करने की कोशिश कर रहे हो, तुम्हारे मन का एक हिस्सा कहता है कि ये क्या कर रहे हो? यह समय बाजार जाने का है, यही वक्त है ग्राहकों के आने का। क्या यहां खाली बैठे–बैठे अपना समय नष्ट कर रहे हो। मन का दूसरा हिस्सा कुछ और कहता है, तीसरा हिस्सा कुछ और कहता है।

हजारों बातें चल रही हैं, विभिन्न दिशाओं में तुम्हारा मन खिंचा जा रहा है। वे सब बातें तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने का प्रयास कर रही हैं। अगर यही चलता रहा तो फिर प्रत्याहार संभव नहीं है, फिर ध्यान और समाधि कैसे संभव होगी? कैसे तुम जा पाओगे अपने भीतर के केन्द्र में? तुम्हें परिधि के लगाव, बाहर के भटकाव छोड़ने होंगे, केवल तभी लौटना संभव होगा।

पतंजलि कहते हैं, योग का पांचवा अंग है प्रत्याहार, अर्थात् स्रोत पर लौट आना। यह मन की उस क्षमता की पुर्नस्थापना है, जिससे बाह्य जनित विक्षेपों से मुक्त हो इंद्रियां वश में हो जाती हैं। इन शब्दों को ठीक से समझना– इंद्रियां वश में हो जाती हैं। यह अनुभव से होता है, होशपूर्ण अनुभव से होता है। इसके अतिरिक्त न कोई उपाय कभी था, न है, न कभी होगा। जोर–जबरदस्ती से, संकल्प से, स्वयं के साथ संघर्ष करने से यह नहीं होगा।

बाहर के विषयों से विरस केवल एक ही प्रकार से हो सकता है, होशपूर्वक भोगो। तब तुम्हें उनकी व्यर्थता नजर आएगी और तब तुम्हारा चित्त वहां से हटकर स्वयं पर वापस लौटेगा, प्रत्याहार होगा। धन्यवाद!!

इन्द्रियों की गुलामी से मुक्ति

साधनपाद : 55

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।

सभी इंद्रियों का स्वामी जब योगी बन जाता;
धारणा, ध्यान, समाधि का तब दरवाजा खुल जाता।

साधनपाद का अंतिम सूत्र है कि प्रत्याहार द्वारा समस्त इंद्रियों पर मालकियत पैदा हो जाती है।

अब इस लानत को दुनिया से मिटा देने का वक्त आया,
मालिक को गुलामों से बचा लेने का वक्त आया।
खफा है झोपड़ी से जिंदगी की रोशनी अब तक,
अंधेरे में नई शमाएं जला देने का वक्त आया।
दीवारों पे लिखी है वीरानी की कहानी,
अब इस उजड़े हुए घर को बसा देने का वक्त आया।
ये नफरत, ये कत्ले आम कब तक?
हर एक दर पे मोहब्बत की सदा देने का वक्त आया।
अब इस लानत को दुनिया से मिटा देने का वक्त आया,
मालिक को गुलामों से बचा लेने का वक्त आया।

बड़ी मुश्किल है, जो इंद्रियां हमारी गुलाम होनी चाहिए हम उनके ही गुलाम हो गए हैं! आत्मा जो कि मालिक है, वह अपनी मालकियत की घोषणा नहीं कर रही और बहिर्मुखी इंद्रियां मालकियत की घोषणा कर रही हैं। गुलाम मालिक बन गया है, मालिक गुलाम बन गया है। इस स्थिति को प्रत्याहार के द्वारा पलटना होगा।

आज हम पतंजलि के साधनपाद के अंतिम सूत्र को लेते हैं। पतंजलि कहते हैं कि जब

प्रत्याहार के द्वारा व्यक्ति की चेतना आत्मकेंद्रित हो जाती है, तब समस्त इंद्रियों पर वश हो जाता है। ओशो इसको समझाते हुए कहते हैं – फिर समस्त इंद्रियों पर पूर्ण वश हो जाता है। पतंजलि कहते हैं– न केवल इंद्रियों पर, उन इंद्रियों के विषयों पर भी। केवल प्रत्याहार के द्वारा! जब तुम्हारी जिंदगी में आत्मज्ञान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है और कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं बचता, जब तुम्हारे अपने आत्मज्ञान के लिए, तुम्हारी अंतःसत्ता के लिए हर चीज छोड़ी जा सकती है, तब राज मूल्यहीन हो जाते हैं। यदि तुम्हें अपने आंतरिक राज और बाहरी राज के बीच चुनना हो तो तुम आंतरिक राज चुनोगे। उस क्षण पहली बार तुम गुलाम नहीं रहते, तुम मालिक हो जाते हो।

भारत में संन्यासियों के लिए हम 'स्वामी' शब्द का प्रयोग करते रहे हैं। स्वामी का अर्थ होता है मालिक, इंद्रियों का मालिक... वरना तो सभी गुलाम हैं। और गुलाम हैं मुर्दा चीजों के, गुलाम हैं भौतिक संसार के। जब तक तुम मालिक नहीं बन जाते, तुम सुंदर नहीं हो सकते। तुम कुरूप हो और तुम कुरूप ही रहोगे। जब तक तुम मालिक नहीं बन जाते, तुम नरक में ही रहोगे। स्वयं का मालिक होना है, स्वर्ग में प्रवेश करना... वही एकमात्र मोक्ष है। प्रत्याहार तुम्हें मालिक बना देता है। प्रत्याहार का अर्थ है अब तुम चीजों के पीछे नहीं भटक रहे, चीजों के पीछे नहीं भाग रहे, चीजों की खोज में नहीं हो। वही ऊर्जा जो संसार में भटक रही थी, अब केन्द्र पर लौट आती है। जब ऊर्जा केन्द्र में स्थित होती है, तब रहस्यों पर रहस्य खुलते चले जाते हैं। तुम पहली बार स्वयं के सामने प्रकट होते हो और तुम जानते हो कि तुम कौन हो। और यह जानना कि मैं कौन हूं, तुम्हें परमात्मा बना देता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा उठती है।

कैसे हम इंद्रियों की गुलामी में पड़ गए?... निश्चित रूप से एक भ्रांति ही होगी, एक मूर्च्छा ही होगी, बहुत गहरी निद्रा होगी। मालिक खो गया। मैंने सुनी है पुराने जमाने की एक कहानी जब तीर्थयात्रा करना बड़ा मुश्किल होता था। लोग बुढ़ापे में तीर्थयात्रा पर जाते थे, बहुत कम लोग वापस लौटते थे। गांव के लोग तीर्थयात्री को इस प्रकार विदा करते थे, जैसे वह अंतिम यात्रा पर ही जा रहा हो। मैंने सुना है एक अमीर व्यक्ति के बारे में, वह तीर्थयात्रा पर गया। उसके परिवार में कोई और नहीं था, सिर्फ पांच नौकर थे। वह उन्हें काम दे गया कि किसको क्या करना है, किसको क्या–क्या ड्यूटी करनी है, कैसे घर सँभालना है। उसने कहा हो सकता मैं साल भर बाद, डेढ़ साल बाद, दो साल बाद लौटूं, चारों धाम की यात्रा पर जा रहा हूं। मालिक तो चला गया। थोड़े दिन तो घर की व्यवस्था ठीक–ठाक चली, महीने–दो महीने, नौकर–चाकर भूल ही गए कि नौकर–चाकर हैं। हर नौकर अपने को मालिक समझने लगा, सब अपनी दादागिरी दिखाने लगे। और कोई उम्मीद तो थी नहीं कि मालिक वापस आएगा। तीर्थयात्रा से कब कौन वापस लौटा है, मालिक तो बूढ़ा है, रास्ते में ही कहीं समाप्त हो जाएगा! दो तीन साल की यात्रा है। साल बीतते–बीतते तो वे बिल्कुल ही भूल गए कि उनका कोई मालिक भी कहीं है और आने की कोई संभावना भी है।

वे घर में ऐसे रहने लगे जैसे उन्हीं का राज्य है। बड़ी खींचा–तानी आपस में क्योंकि पांच नौकर, कोई भी दूसरे को मालिक मानने को तैयार नहीं, सब अपनी रंगदारी दिखा रहे। बड़ी अव्यवस्था, बड़ी अराजकता छा गई। और ढाई साल बाद ऐसा हुआ कि मालिक वापस आया। और जैसे ही मालिक ने घर की देहली के भीतर कदम रखा, अचानक पांचों नौकर अपनी–अपनी जगह पर आ गए, अपना–अपना काम करने लगे।

हमारी स्थिति ऐसी ही है! हम बहिर्मुखी हो गए हैं, हम तीर्थयात्रा पर नहीं गए, हम संसार की यात्रा पर चले गए। और हमारी पांच इंद्रियां, हमारे पांच गुलाम, वे हमारे मालिक बन बैठे हैं। लेकिन जैसे ही मालिक प्रत्याहार करके, प्रतिक्रमण करके वापस अपने भीतर कदम रखता है, अंतर्यात्रा करता है, अचानक इंद्रियां माल्कियत छोड़ देती हैं। नौकर को अपनी स्थिति का एहसास हो जाता है। तो इंद्रियों को वश में करने का अर्थ ऐसा मत समझना कि किसी हिंसक उपाय के द्वारा, कि इंद्रियों के दमन के द्वारा, कि जैसा कहा जाता है कि सूरदास ने सौंदर्य देखकर आंखें फोड़ ली थीं ताकि आंखें भटकाएं नहीं, ये सब व्यर्थ की बातें हैं, इस प्रकार इंद्रियों पर वश नहीं होगा। केवल एक ही विधि है इंद्रियों पर वश करने की, मालिक का अपने घर के भीतर वापस आ जाना, कुछ और करना नहीं पड़ता। वे नौकर जो अपने आप को मालिक समझने लगे थे, वे तुरंत ही फिर गुलाम हो जाते हैं। वे गुलाम थे ही, वे अपनी ड्यूटी फिर से निभाने लगते हैं।

मैंने सुना है एक डॉक्टर ने एक महिला से पूछा कि आपके परिवार में कभी कोई मानसिक रोग से ग्रस्त हुआ है? वह महिला बोली हां, मेरे पति को कभी–कभी पागलपन का दौरा पड़ता है। लेकिन दवाई की जरूरत नहीं पड़ती, मैं घरेलू नुस्खे से ही उनकी तबियत चार–छः घंटे में ठीक कर देती हूं। डॉक्टर को उत्सुकता हुई। उसने कहा कि वे पागलपन के दौरान सामान्यतः क्या–क्या हरकतें करते हैं? वह महिला बोली डॉक्टर साहब, वे अपनी औकात भूलकर अपने को घर का बॉस समझने लगते हैं। हमारी इंद्रियां मालिक बन गई हैं, अपने आप को बॉस समझने लगी हैं। उन्हें उनकी स्थिति में वापस लौटाना होगा। कैसे होगा यह? वस्तुओं के प्रति भी हमारी इच्छाएं हैं, वासनाएं हैं, जिस कारण वस्तुएं हमारी मालिक बन गई हैं, इंद्रियों की तो छोड़ो, वस्तुएं मालिक बन गई हैं।

ओशो ने वर्णन किया है कि उनके एक बूढ़े प्रोफेसर थे। उनके पास बड़ी पुरानी, टूटी–फूटी एक साइकिल थी। घंटी छोड़ के उसमें सबकुछ बजता था और ब्रेक छोड़ के सब कुछ लगता था। आधा किलोमीटर दूर से आवाज आती थी उनकी साइकिल की, कोई घंटी की जरूरत भी नहीं थी। ओशो ने कई बार उनसे कहा कि आप साइकिल बदल लें, सब लोग हंसते हैं, युनिवर्सिटी में सब लोग मजाक उड़ाते हैं। कोई स्कूटर से आ रहा है, कोई कार से आ रहा है। साइकिल ही चलाएं तो कम से कम नई साइकिल खरीद लें। लेकिन वे नहीं मानते थे, वे कहते थे बड़ा मोह, बड़ा लगाव है मुझे इस साइकिल से, छोड़ूंगा नहीं। महाकंजूस थे वे। ओशो ने सोचा कि उनका जन्मदिन आने वाला है, अगले जन्मदिन पर एक

सुंदर साइकिल उनको भेंट कर दी जाए। उन्होंने वैसा ही किया, लेकिन उसका भी कुछ लाभ नहीं हुआ। प्रोफेसर महोदय ने तो उस नई साइकिल को अपने घर में ऐसे सजा के रख ली, जैसे वह कोई संग्रह की वस्तु हो। और उपयोग तो वे अपनी टूटी, पुरानी साइकिल का ही करते रहे। हां, नई साइकिल की बड़ी हिफाजत करते, रोज उसको झाड़ते-पोंछते, गीले कपड़े से साफ करते, उसकी धूल-धमास निकालते। वह एक दर्शनीय वस्तु बन गई, उपयोग की वस्तु न रही। इसको मैं कह रहा हूं, वस्तु मालिक बन गई और मालिक उसका दास हो गया। प्रोफेसर का कुल इतना ही काम है कि झाड़ू-पोंछा लगाते रहें, साफ-सफाई करते रहें, गेयर में तेल डालते रहें। हम इस बात को भूल ही जाते हैं कि कौन नौकर है और कौन मालिक, किसका उपयोग करना है और कौन उपयोग करने वाला है। जरा अपने जीवन में गौर से देखना, तुमने भी किसी न किसी प्रकार से इसी प्रोफेसर जैसी स्थिति अपने जीवन में भी बना ली है।

जो चीजें तुम्हारे उपयोग के लिए हैं, तुम उनकी सेवा में जुटे रहते हो। लोग मकान की साफ-सफाई ऐसे करते हैं, मकान की देख-रेख ऐसे करते हैं, जैसे मकान इनके लिए नहीं, ये सज्जन मकान के लिए बने हैं। कार को जरा सी खरोंच लग जाती है तो इनको इतनी तकलीफ होती है कि जितनी तकलीफ इनको खुद को भी खरोंच लगने पर नहीं होती। अपने शरीर से ज्यादा कार कीमती हो गई। कार एक साधन थी तुम्हारे उपयोग के लिए, लेकिन तुमने उसको मालिक का दर्जा दे दिया। और कारण तुम्हारे भीतर मालिक मौजूद नहीं है, तुम्हारी सारी चेतना कार पर लगी हुई है। काश तुम्हारी चेतना स्वयं में स्थित हो सके! तब जाकर तुम मालिक बनोगे और कार एक साधन बनेगी। साध्य तुम स्वयं हो, इस बात को जानो।

मैंने सुना है मारवाड़ी चंदूलाल जब जवान हुए पच्चीस साल के, मारवाड़ियों को तो प्रेम-व्रेम होता नहीं, उन्होंने किताबों में पढ़ा कि पच्चीस साल की उम्र में प्रेम करना चाहिए। वे एक लड़की के पास गए और उससे निवेदन किया कि 'आई लव यू' और ऐसा कहते ही धड़ाम से जमीन पर गिर पड़े। वह लड़की घबड़ा गई, उसने कहा कि यह क्या कर रहे हो? अरे साष्टांग दंडवत् करने की जरूरत नहीं, मैं तुम्हारी ही उम्र की हूं। चंदूलाल बोले कि मैंने किताबों में पढ़ा है, 'फॉल इन लव', मैं तुम्हारे प्रेम में गिर गया हूं। शाब्दिक अर्थ पकड़ लिया। लेकिन जब भी हम इंद्रियों के गुलाम बनते हैं, याद रखना 'वी आर फॉलिंग, वी आर फॉलिंग फ्रॉम आवर स्टेट'। हम अपनी स्थिति से नीचे गिर रहे हैं। वह जो मालिक था अब गुलाम बन रहा है। नहीं, गिरना नहीं है ऊपर उठना है। तुम्हें अपने सिंहासन पर स्थापित होना है और ये इंद्रियां जो हैं, तुम्हें विक्षिप्त कर देंगी, क्योंकि ये तुम्हें विभिन्न दिशाओं में खींचती हैं। ये पांच इंद्रियां पांच अलग-अलग दिशाओं में एक साथ खींच रही हैं।

एक बार नसरुद्दीन मुझसे पूछ रहा था कि बड़ी मुश्किल है। दो लड़कियों ने विवाह प्रस्ताव रखा है मैं किससे शादी करूं? मैंने कहा जो तुम्हें पसंद हो उससे कर लो। उसने

कहा कि इतना आसान मामला नहीं है। एक लड़की बहुत सुंदर है किंतु गरीब है और दूसरी लड़की कुरूप है लेकिन बहुत धनवान है, बाप की इकलौती बेटी है। बड़ी दुविधा में हूं। देखते हैं, धन की आकांक्षा एक दिशा में खींच रही है, सौंदर्य की आकांक्षा दूसरी दिशा में खींच रही है और बेचारे नसरुद्दीन की हालत क्या हो गई, समझ सकते हो। इससे शादी करोगे तो भी पछताओगे और उससे शादी करोगे तो भी पछताओगे। मालिक, मालिक नहीं है, इंद्रियों की खींचातानी में पड़ गया है।

मैंने सुना है, नसरुद्दीन ग्रीटिंग कार्ड खरीदने गया। ग्रीटिंगकार्ड की दुकान में उसने दुकानदार से कहा कि कोई भावनात्मक, कोई इमोशनल कार्ड दिखाइए, मुझे अपनी प्रेमिका को भेजना है। दुकानदार ने एक कार्ड दिखाया और कहा कि यह आपको जरूर पसंद आएगा। इसमें लिखा हुआ है कि मेरी इकलौती प्रेमिका मैं केवल तुम्हें, सिर्फ तुम्हें, सचमुच में केवल तुम्हें ही प्रेम करता हूं। जिंदगी में न कभी किसी से प्यार किया और न कभी फिर दुबारा किसी से प्यार करूंगा। नसरुद्दीन ने कहा कि ठीक, इसी की एक दर्जन प्रतियां दे दीजिए, सबको यही भेज दूंगा।

ऐसी हमारी हालत है, सब इंद्रियां हमें यहां–वहां खींच रही हैं और हम नष्टभ्रष्ट हो गए हैं, टूट गए हैं। जैसे एक बैलगाड़ी में पांच दिशाओं में पांच बैल जोड़ दिए जाएं, सब अलग–अलग दिशाओं में खींचे, उस बैलगाड़ी की क्या दुर्गति होगी? इन पांच इंद्रियों की खींचातानी में हमारी भी ऐसी ही दुर्गति हुई है। इससे बचने का उपाय है? हां, बैलगाड़ी का जो मालिक है, बैलगाड़ी चलाने वाला, वह अपनी सीट सँभाले। अगर वह अपनी सीट पर है तो फिर वो बैलों को खुद संचालित करेगा और उन्हें उस दिशा में ले जाएगा जहां गाड़ी को जाना चाहिए। वास्तव में हमारे जीवन की गाड़ी को किधर जाना चाहिए?.....धारणा, ध्यान, समाधि की तरफ। अपने प्राणों के अंतर्तम केन्द्र की तरफ। अपनी मालकियत की घोषणा करो और तुम्हारे घोषणा मात्र से यह हो जाएगा। क्योंकि वास्तव में तुम मालिक हो, केवल सो गए हो। तुम जाग जाओ, तुम उठ बैठो। गुलाम, पुनः गुलाम हो जाएंगे मालिक के घर लौटते ही। साधनपाद के इस अंतिम सूत्र पर विशेष ध्यान देना। इसके बाद हम विभूतिपाद शुरू करेंगे। उसमें धारणा, ध्यान, समाधि की चर्चा करेंगे। न केवल चर्चा, बल्कि वह तुम्हारे जीवन का अनुभव भी बने, ऐसा प्रयास करेंगे।

धन्यवाद!!

धारणा

विभूतिपाद : 1

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा

मन को एकाग्र करना, और ध्येय से बांधना;
विषय में सीमित होना ही, कहलाता है धारणा।

पतंजलि योगसूत्र के विभूतिपाद का प्रथम सूत्र है कि ध्येय में चित्त को बांधना धारणा कहलाता है। धारणा यानी एकाग्रता, जिससे विज्ञान का जन्म होता है।

रहता है बस ख्याल ही तेरे बगैर, जीने का एक सहारा है तेरे बगैर।
अब वह जमाले गांव निशाते शहर कहां, दुनिया से कर लिया है किनारा तेरे बगैर।
तू रूठकर चला मगर इतना मुझे बता, किससे करूंगी मैं शिकवा तेरे बगैर?
बेनूर हैं सभी बहारें मेरी निगाह में धोखा है अब हर एक नजारा तेरे बगैर।
आ और आके छीन ले रूहे हयात भी, मैं क्या करूंगी जीके भी तनहा तेरे बगैर?

जब मन एक विषय के ऊपर ऐसा एकाग्र हो जाए कि वही जीवन–मरण बन जाए, तब जानना एकाग्रता घटी। सामान्यतः हमारा मन बहुत खंडों में बंटा हुआ है, टुकड़ों–टुकड़ों में विभाजित है और यही हमारे दुख का कारण है। हम बहुचित्तवान हैं, मल्टीसाइकिक। आज से ढाई हजार साल पहले महावीर ने इस शब्द का प्रयोग किया था कि मनुष्य बहुचित्तवान है। उसके भीतर एक चित्त नहीं है, हजारों खंड हैं– विपरीत दिशाओं में खींचते हुए और यही हमारे दुख का कारण है। हम अन्य कारणों को मिटाने की सोचते हैं किन्तु दुख समाप्त नहीं होता, क्योंकि मूल कारण हमारे भीतर है। हमारे भीतर एक व्यक्ति नहीं है, कई व्यक्ति जी रहे हैं। एक पूरी–की–पूरी भीड़ है हमारे भीतर। अगर दुख मिटाना है तो सबसे पहले तो धारणा को पैदा करना होगा, धारणा का अर्थ है कि अब सिर्फ एक चित्त पैदा हुआ। सुनो इस सूत्र की व्याख्या करते हुए ओशो कहते हैं –

अपने भीतर देखो तुम दुखी हो क्योंकि तुम एक नहीं हो, अनेक हो। जो पहली बात है

करने जैसी वह है धारणा। मन में बहुत सी चीजें पड़ी हैं, एक बड़ी भीड़ है। उन सभी बातों को एक–एक करके गिरा देना, अपने मन को सिकोड़ते जाना और सिकोड़ते–सिकोड़ते वहां तक ले जाना जहां केवल एक ही विषय शेष रहे। क्या तुमने किसी एक चीज पर एकाग्रता को साधा है? एकाग्रता, कंसेन्ट्रेशन का अर्थ है कि पूरा का पूरा मन एक ही जगह केन्द्रित हो जाए। मान लो किसी गुलाब के फूल पर मन को एकाग्र किया। ऐसे तो गुलाब के फूल हमने कई बार देखे हैं फिर भी कभी पूरा ध्यान गुलाब के फूलमात्र पर ही केन्द्रित नहीं हुआ। अगर गुलाब के फूल पर दृष्टि एकाग्र हो जाए तो वह फूल ही सारा संसार बन जाता है। मन सिकुड़ता जाता है, सिकुड़ता जाता है टॉर्च की रोशनी की तरह, बस एक ही जगह पर सारा प्रकाश केन्द्रित हो जाता और वह गुलाब का फूल बड़े से बड़ा होता चला जाता है। जब गुलाब अन्य हजारों–लाखों विषयों में से कोई एक चीज था तुम्हारे लिए, तब वह बहुत छोटा सा था, अब वही गुलाब का फूल सब कुछ है, तुम्हारे लिए सारा संसार है। जिस व्यक्ति को अध्यात्म की तरफ यात्रा करनी है उसे यह कला सीखनी होगी। वैज्ञानिक इस कला को जानते हैं, धारणा में जीना, एकाग्रता में जीना।

एक बार ऐसा हुआ कि महान् वैज्ञानिक लुईस पाश्चर अपने माइक्रोस्कोप में देखते हुए कुछ काम कर रहे थे। कोई व्यक्ति उनसे मिलने आया, वह कोई आधे घंटे, पौन घंटे से खड़ा था। एक घंटा बीत गया, डेढ़ घंटा बीत गया, लुईस पाश्चर ने निगाह उठाकर भी नहीं देखा। पाश्चर को पता ही न चला कि कोई घर में आया हुआ है। दो घंटे बाद जब सिर उठाकर देखा, पूछा आप कब आए? उसने कहा मैं तो दो घंटे से आपके सामने खड़ा हूं। पाश्चर ने कहा कि तुमने मुझे आवाज क्यों न दी? उस व्यक्ति ने कहा मैं गौर से देख रहा था, आप अपने माइक्रोस्कोप में इस प्रकार से एकाग्रचित्त थे, इतनी एकाग्रता तो मैंने चर्च में प्रार्थना करने वालों में भी नहीं देखी। मैं कैसे आपको डिस्टर्ब कर सकता था। आप तो प्रार्थना भाव में थे। लुईस पाश्चर ने कहा कि तुमने बिल्कुल ठीक बात पकड़ी। चर्च से भी ज्यादा मैं अपनी गहराई में डूब जाता हूं, जब माइक्रोस्कोप पर बैठा हुआ होता हूं। पाश्चर ने कहा जब कभी मेरा मन अशांत होता है, बेचैन होता है तो मैं अपने माइक्रोस्कोप पर काम करने लगता हूं और ऐसी एकाग्रता सधती है अद्भुत आनंद आ जाता है।

विभूतिपाद के तीन सूत्र हम लेने जा रहे हैं– पहला सूत्र धारणा से संबंधित, दूसरा ध्यान से संबंधित और तीसरा समाधि से संबंधित। धारणा वैज्ञानिक भी जानते हैं, ध्यान कलाकार जानते हैं, संगीतकार जानते हैं, चित्रकार जानते हैं और समाधि आध्यात्मिक व्यक्ति जानते हैं। लेकिन याद रखना, अध्यात्म तक वही पहुंच पाएगा जो धारणा और ध्यान से गुजरा है। इन तीन बातों को पतंजलि ने योग के अंतरंग कहा– धारणा, ध्यान और समाधि। और इसलिए उन्होंने इन तीनों को विभूतिपाद में अलग से गिनाया है। साधनपाद को समाप्त कर दिया प्रत्याहार पर जाकर, अब असली योग की बात है। बुद्ध, महावीर और पतंजलि कोई दार्शनिक नहीं हैं, वे कोई तत्व–मीमांसा की चर्चा नहीं करते, वे तो सीधी–सीधी चेतना के विज्ञान की बात करते हैं। उनकी शब्दावली भी वैज्ञानिक है। पतंजलि कह रहे हैं, देश बंधः चित्तस्य धारणा। देश में बांध देना चित्त को, एक विषय पर एकाग्र कर देना। यह देश शब्द भी समझने जैसा है। पिछली सदी में अलबर्ट आइंसटीन और उनके बाद के वैज्ञानिकों ने जो खोज की उससे एक

बात स्पष्ट हुई कि समय और स्थान जिन्हें पहले अलग–अलग माना जाता था, वे वास्तव में अलग–अलग नहीं हैं। स्पेस के, स्थान के तीन आयाम माने जाते थे, एक–दूसरे से 90 डिग्री का कोण बनाते हुए। आइंसटीन ने कहा कि समय स्पेस का ही चौथा आयाम है, द फोर्थ डायमेंशन ऑफ द स्पेस इज टाइम। वे दो अलग–अलग बातें नहीं हैं और तब से विज्ञान में एक नए शब्द का उपयोग शुरू हुआ– 'स्पेस्योटाइम'। हिन्दी में हम अगर उसको अनुवाद करें तो कहना होगा दिग्काल।

हमारे भीतर तीन तत्व हैं, तन, मन और चेतन। तन गति करता है स्थान में। अभी आप एक जगह बैठे हैं, वहां से उठकर आप दूसरी जगह जा सकते हैं। तो पदार्थ की गति स्थान में है, स्पेस में है। मन की जो गति है वह टाइम में है। आप एक ही जगह बैठे–बैठे भूत या भविष्य में जा सकते हैं, समय में गति कर सकते हैं। तो तन और मन की गति स्पेस्यो– टाइम में है और तीसरा तत्व, जो तन और मन का द्रष्टा चेतन है, वह अगतिमान है। न वह देश में गति करता, न काल में।

पतंजलि ने देश और काल दो शब्द उपयोग नहीं किए, बड़ी गहरी और पैनी समझ है उनकी। पतंजलि उस बात को पहले ही जानते थे जिसे आइंसटीन ने हजारों साल बाद खोजा। देश और काल अलग–अलग नहीं हैं, स्पेशियो–टाइम, दोनों ही गति रुक जाएं। जब हमने आसन की बात की थी, तब पतंजलि ने कहा था–'स्थिर सुखम् आसनम्', शरीर का स्थिर हो जाना। अब धारणा में चित्त का स्थिर हो जाना, एक विषय पर केन्द्रित हो जाना।

ओशो के एक प्रोफेसर थे। जब ओशो विद्यार्थी थे, पहली बार दर्शनशास्त्र की क्लास में, पोस्टग्रेजुएशन की क्लास में गए। वे दार्शनिक महोदय, प्रोफेसर इतने उबाऊ तरीके से समझा रहे थे कि ओशो फिर दुबारा उनकी क्लास में नहीं गए। वे काफी नाराज रहे, साल भर चिढ़े हुए रहे और सोचते रहे कि यह विद्यार्थी अवश्य फेल हो जाएगा। और परीक्षा का जब परिणाम आया तो ओशो को 95 प्रतिशत अंक मिले। प्रोफेसर महोदय बहुत हैरान हुए! रास्ते में उन्होंने ओशो को पकड़ लिया और कहा कि सच बताओ तुमने मेरी केवल एक क्लास अटेंड की है, यह 95 प्रतिशत अंक कैसे मिले? ओशो ने कहा हुजूर आपकी कृपा से। वे थोड़े हैरान हुए और बोले कि तुम तो केवल एक बार मेरी क्लास में आए, मेरे कारण 95 प्रतिशत। ठीक–ठीक बताओ तुम्हारा अर्थ क्या है? ओशो ने कहा आप विस्तार से न पूछें तो अच्छा होगा, बताऊंगा तो आप दुखी हो जाएंगे। बस यही समझें कि आपके कारण 95 प्रतिशत मिले। वे कहने लगे बताना ही पड़ेगा। ओशो ने कहा फिर सुन लीजिए अगर वो एक दिन मैं आपकी क्लास में नहीं आया होता तो मुझे 100 प्रतिशत मिले होते। जो 5 प्रतिशत कट गए हैं वह आपकी वजह से, आपने कन्फ्यूज कर दिया था, मेरे मन को थोड़ा विचलित कर दिया था। नहीं तो मैं अपने विषय को पूर्णतः जानता था, आपने थोड़ा सा भटका दिया। ओशो ने मजाक में यह बात की लेकिन बात सही है।

हमारा मन जो यहां–वहां बंटा हुआ है, वह एक विषय पर ऐसे केन्द्रित हो जाए जैसे कांच के लेंस से गुजरकर सूरज की किरणें एक बिंदु पर फोकस हो जाती हैं। जब चित्त ऐसा हो जाता है, तब धारणा की क्षमता पैदा हुई। मैंने सुना है सरदार विचित्तर सिंह के बारे में। बता रहे थे हवाई जहाज में यात्रा करते हुए कि मेरे पिताजी पायलट हैं और मेरी माताजी एयर होस्टेस हैं और अक्सर दोनों ही यात्रा में रहते हैं। अभी भारत में, तो दो घंटे बाद बंग्लादेश में, तो छः घंटे बाद

लंदन में, तो कभी जर्मनी में, सदा यात्रा में रहते हैं। साथ बैठे हुए सहयात्री ने उनसे पूछा कि आपका जन्म कहां हुआ था? विचित्तर सिंह ने कहा पंजाब में। उस सहयात्री ने पूछा कि कौन सा हिस्सा? विचित्तर सिंह ने कहा हिस्सा नहीं, मैं पूरा का पूरा ही पंजाब में पैदा हुआ था। लेकिन हमारी स्थिति ऐसी है। एक अंग कहीं, दूसरा अंग कहीं, तीसरा अंग कहीं, हमारा मन बिल्कुल बंटा हुआ है। एक पुराना फिल्मी गाना था न, दिल के टुकड़े हजार हुए, कोई इधर गिरा, कोई उधर गिरा, वैसी हमारी दुर्गति है। इस सबको एक में बांधना होगा, देश बंधः चित्तस्य धारणा। 'स्पेशियो-टाइम' में, दिग्काल में चित्त को बांधना ही धारणा है। धारणा के कारण ही भीतर वह क्षमता उत्पन्न होती है, धारण करने की क्षमता। और उसका अर्थ है जैसे कोई स्त्री गर्भस्थ होती है, गर्भवती होती है उसने कुछ धारण किया। जैसे जमीन में कोई बीज पड़ता है, जमीन ने बीज को धारण किया अब वह भीतर पल्लवित हो सकेगा, पौधा बन सकेगा। ठीक ऐसे ही चित्त की एक अवस्था धारणा की है। जब तक वह पैदा न हो जाए, तब तक धर्म में आगे गति संभव नहीं है।

पश्चिम में मनोविज्ञान जो कार्य कर रहा है, याद रखना वह योग के कार्य से बिल्कुल भिन्न है। पश्चिम का विज्ञान मन के खंड-खंड टुकड़ों का विश्लेषण कर रहा है, उन्हें समझने की कोशिश कर रहा है। उसका कोई लाभ नहीं है। योग कह रहा है जुड़ो, योग का अर्थ ही जोड़ना होता है। जैसे हम कहते हैं न कि दो और दो का योग चार होता है। तुम्हारे भीतर सबकुछ एकजुट हो जाए। उन टुकड़ों का विश्लेषण करने से कुछ लाभ न होगा, इसलिए पश्चिम का मनोवैज्ञानिक और मरीज एक ही नाव पर सवार हैं, उनमें कुछ खास फर्क नहीं है।

प्रसिद्ध नागरिक विलियम जेम्स एक बार पागलखाने घूमने गया था, वहां से लौटकर बहुत दुखी हो गया। किसी ने उससे पूछा कि आप इतने उदास और चिंतित क्यों हैं? जेम्स ने कहा कि मैं परेशान इसलिए हूं कि पागलों को देखकर मुझे एक बात समझ में आ गई कि मैं उनसे ज्यादा भिन्न नहीं हूं। वे मुझसे एक-दो कदम आगे बढ़ गए हैं। मेरा चित्त भी बड़ा चंचल है, उनका थोड़ा और ज्यादा। सिर्फ डिग्रीज का भेद है। किसी भी क्षण मैं भी पागल हो सकता हूं। शायद आपको जानकर आश्चर्य होगा कि पश्चिम में मनोवैज्ञानिक प्रोफेशनल वर्ग में, जो कि पागलों का इलाज करते हैं, सबसे ज्यादा पागल पैदा होते हैं किसी भी अन्य प्रोफेशन के बजाय। हालांकि ऐसा होना तो नहीं चाहिए था। भारत में ऋषि हुए, योगी हुए, मुनि हुए। ... शांत, आनंदित, प्रफुल्लित, उन्होंने भी हजारों लोगों पर काम किया, उन्हें धर्म की दिशा दी लेकिन स्वयं कभी उस गढ्ढे में न गिरे, वे सदा ही उनके पार थे, उनका अतिक्रमण कर रहे थे। तो पश्चिम का मनोविज्ञान और भारत का योग दोनों भिन्न हैं। कई बार लोग मुझसे ऐसे सवाल पूछते हैं कि क्या मनोविज्ञान योग का रिप्लेसमेंट हो सकती है? कभी नहीं, क्योंकि मनोविज्ञान धारणा तक से चूक रही है, ध्यान और समाधि तो बहुत दूर की बातें हैं। धारणा को साधो, देश बंधः चित्तस्य धारणा। और तब तुम पाओगे तुम एकजुट हुए। उस एक परमात्मा से मिलने चले, पहले तुम तो एक हो जाओ। अगर तुम ही खंड-खंड हो तो कैसे 'उस एक' से मिलोगे? अंततः अद्वैत में जाना है जहां दो न रह जाएं। तो धीरे-धीरे सिमटो, सिकुड़ो, एक बनो, ... यही धारणा है।

धन्यवाद!!

ध्यान क्या है?

विभूतिपाद : 2

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।

निरंतर विषय की ओर, मन का बहना ध्यान है;
ध्येय का अहसास है, ध्याता का भी भान है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं– ध्येय की ओर मन का सतत प्रवाह ध्यान है। ध्यान यानी तल्लीनता, प्रेमभाव से ओतप्रोत जानने की ऊर्जा, जिससे कला उत्पन्न होती है।

ध्यान को समझने के पहले हमारे मन की सात अवस्थाओं को समझ लें। एक अवस्था हमारे मन की सामान्य अवस्था, जिसे हम कहते हैं चंचलता। कभी इस तरफ मन जा रहा है, कभी उस तरफ मन जा रहा है, बार–बार दिशा बदल रहा है, बार–बार विषय बदल रहा है, यह हमारी सामान्य चंचलता है। यदि चंचलता और अधिक बढ़ जाए तो मन की दूसरी अवस्था पैदा होती है, जिसे हम कहें व्याकुलता, व्यग्रता। उदाहरण के लिए क्रोध के क्षणों में, लोभ या ईर्ष्या के क्षणों में या बहुत ज्यादा खुशी और उत्साह के क्षणों में हम इस व्यग्रता की दशा से गुजरते हैं। कभी गुस्से में, कभी बहुत ज्यादा प्रेम में। दोनों में ही हमारा चित्त बहुत ज्यादा चंचल हो जाता है। हमारा तथाकथित प्रेम .... वास्तव में वह प्रेम नहीं है जिसकी चर्चा बुद्धपुरुष करते हैं, वह भी एक प्रकार का पागलपन ही है, क्षणिक पागलपन। हमारा क्रोध भी एक प्रकार का क्षणिक पागलपन है, घृणा भी।

'मैनियक डिप्रेसिव साइकोसिस' नाम की एक बीमारी होती है, आपने नाम सुना होगा, जिसे 'बाईपोलर डिसीज' कहते हैं। व्याकुलता में जीने वाला व्यक्ति कभी एक छोर पर, कभी दूसरे छोर पर। कभी वह मैनियक हो जाता है, अत्यधिक ऊर्जा, उमंग, उत्साह से भरा हुआ, अतिआशावादी, तो कभी कुछ महीनों के लिए डिप्रेशन में चला जाता है, निराश और हताश हो जाता है। फिर मन की तीसरी अवस्था है, विक्षिप्तता। जब मन बिल्कुल ही

खंड–खंड हो गया, पारे की भांति बिखर गया, पागल हो गया। जब व्याकुलता स्थाई रूप से जीवन का हिस्सा बन जाती है तो वह पागलपन हो जाती है। तो चंचलता सामान्य अवस्था है, थोड़ी देर के लिए अस्थायी पागलपन आए, जैसा कि क्रोध में आता है, ईर्ष्या में आता है ...उसका नाम है व्याकुलता। फिर वापस हम अपनी नॉर्मल चंचलता में लौट आते हैं और अगर ऐसा हो जाए कि वह व्यग्रता सदा–सदा के लिए स्थाई हो जाए, तब वह विक्षिप्तता हो जाती है। मन की ये तीन अवस्थाएं हैं। अब इसके बाद अगर चंचलता कम हो तो क्या होगा इसे समझना। चंचलता कम हो तो चौथी अवस्था आएगी, वह होगी एकाग्रता की, धारणा की। पिछले सूत्र में हमने उसी की चर्चा की। जैसे लेंस से प्रकाश की किरणें एक बिंदु पर फोकस्ड हो जाएं। एक बिंदु पर केन्द्रित होना धारणा कहलाता है। वैज्ञानिक इस चित्त की अवस्था को भलीभांति जानते हैं। कभी–कभार सामान्य आदमी के जीवन में भी एकाग्रता के पल होते हैं। कभी कोई सुंदर दृश्य को देखकर, किसी अद्भुत संगीत को सुनकर, प्रेम के किन्हीं क्षणों में, कभी स्वादिष्ट भोजन का स्वाद लेते हुए चित्त अचानक एकाग्र हो जाता है। हम समझते हैं यह आनंद उस दृश्य से, सौंदर्य से, संगीत से, प्रेम से या स्वाद से आया। वास्तव में यह आनंद आपके भीतर एकाग्रता घट जाने से आया।

मन की पांचवी अवस्था है तल्लीनता। कवि इसे जानते हैं, संगीतकार इसे जानते हैं, चित्रकार इसे जानते हैं। तल्लीनता की छोटी–मोटी झलक कभी–कभी सामान्य व्यक्ति को भी मिलती है। कुछ ऐसे कार्य होते हैं जिसमें आप तल्लीन हो जाते हैं। बचपन में तल्लीनता को हम सब ने जाना है। कभी खेल खेलते हुए, कभी दौड़ते हुए, कभी तितलियों के पीछे भागते हुए, कभी नदी के किनारे रेत के घर बनाते हुए हमने तल्लीनता को जाना है। बच्चे आसानी से किसी भी विषय में तल्लीन हो जाते हैं। अभी उनका चित्त बंटा हुआ नहीं है। धीरे–धीरे जैसे–जैसे वे बड़े होंगे, उनका भी चित्त खंड–खंड में बंटने लगेगा और खंडित–मानसिकता वाले होते जाएंगे। हमारी सभ्यता, हमारे शिक्षा–संस्कार, बड़ी कीमत चुका कर हमें मिलते हैं। तल्लीनता को कलाकार जानते हैं, संगीतकार जानते हैं, कवि जानते हैं। भारत में कवि के लिए दो शब्द प्रयोग किए जाते हैं, कवि और ऋषि। दोनों में थोड़ा सा भेद है। कवि ऐसा व्यक्ति है जो तल्लीनता तक गया है, ध्यान का जिसे एहसास हुआ है। जैसा मैंने कहा कि वैज्ञानिक धारणा को जानता है, कलाकार तल्लीनता को जानता है। तल्लीनता अर्थात् ध्यान। जब न केवल विषय की ओर मन निरंतर बह रहा है बल्कि उस बहने वाली ऊर्जा के प्रति भी सतर्कता है।

ऐसा समझें जब लेंस से प्रकाश को हमने एक बिंदु पर फोकस किया तो वह धारणा हुई और वह प्रकाश जो फोकस बन रहा है, वह प्रकाश क्या है? वह है ध्यान। ध्यान यानी अटेंशन, वहीं अटेंशन तो फोकस बना। अगर अटेंशन होता ही नहीं, ध्यान होता ही नहीं तो फोकस भी कैसे बनता? तो धारणा में वह आफब्जेक्ट इंपार्टेंट है जहां पर फोकस बना और ध्यान में वह चैतन्यता ज्यादा महत्त्वपूर्ण है जो ऑब्जेक्ट की तरफ रही है। और फिर एक

अद्भुत घटना घटती है। एक तरफ ऑब्जेक्ट है, दूसरी तरफ सब्जेक्ट है और बीच में चैतन्यता का यह प्रवाह है। यह बीच का जो प्रवाह है, वह ध्यान है। तो अगर ऑब्जेक्ट महत्त्वपूर्ण हो गया तो तुम वैज्ञानिक हो पाओगे अगर यह ध्यान ही महत्त्वपूर्ण हो गया, तब तुम कलाकार हो पाओगे। इसलिए विज्ञान जिन विषय की खोज करता है वह बाह्य जगत से संबंधित होती हैं और कलाकार जिन चीजों का सृजन करता है, उसके अंतर्तम से आती हैं। इन दोनों के भेद को समझना, एक कवि की कविता या एक चित्रकार का चित्र उसके भीतर से प्रगट होता है, बाहर से नहीं। विज्ञान वस्तुनिष्ठ है, ऑब्जेक्टिव है और कला सब्जेक्टिव है। वह भीतर से बाहर की ओर प्रगट होती है। जैसे किसी वृक्ष में रसधार बहती है और भीतर से कली खिलती है और फिर फूल बनती है। इसके आगे समाधि की बात, उसे समझना और भी कठिन बात होगी। उसके पहले समझना मन के छठवें तल को, सल्लीनता को। शायद, यह आपके लिए एक नया शब्द होगा शायद जनपारिभाषिक टर्मिनोलॉजी में महावीर ने इसका उपयोग किया है।

सल्लीनता का अर्थ है, सब्जेक्टिविटी में ही पूरी तरह लीन हो जाना। एकाग्रता में विषय बाहर था, जिसमें हम डूब रहे थे, तल्लीनता में हम मध्य में आए, सल्लीनता में हम स्वयं के भीतर डूबे। अब कोई विषय नहीं है, जानने वाला स्वयं के भीतर ही डूब रहा है और इसका अंतिम परिणाम है, चेतना की आखिरी अवस्था, जिसे हम कहें एकता। भीतर ऑब्जर्वर और ऑब्जर्व्ड एक ही हो गए, दो न बचे। दुइ मिट गई। यही समाधि की अवस्था है। तो धारणा और समाधि के बीच में है ध्यान। इसे पतंजलि ने योग के इन तीन अंतरंगों को बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से ठीक क्रम में जमाया है ... धारणा, ध्यान, समाधि। पहले धारणा को साधो, फिर ध्यान में डूबो और तब समाधि घटित हो सकेगी। एक–एक कदम, एक–एक कदम आगे चलते चलो।

मुझे याद आता है मुल्ला नसरुद्दीन का एक लतीफा। तीन दोस्त थे, नसरुद्दीन, विचित्तर सिंह और चंदूलाल। तीनों का ही लकी नंबर तीन था। गरीबी से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने सोचा कि कुछ नया धंधा किया जाए। तो सन् 2003 में तीसरे महीने मार्च की तीन तारीख को दोपहर तीन बजे उन्होंने एक गैरेज खोली। लेकिन धंधा बिल्कुल नहीं चला, क्योंकि उन्होंने गैरेज तीसरी मंजिल पर खोली थी। तब उन्होंने सोचा कि अब हेयर कटिंग सैलून खोलें। बड़ी मेहनत से सुंदर सैलून बनवाया, लेकिन एक भी ग्राहक नहीं आया। कारण, उन्होंने अमृतसर में ठीक स्वर्ण–मंदिर के सामने सरदारों के मुहल्ला नंबर तीन में, बिल्डिंग नंबर तीन में, कमरा नंबर तीन में हेयर कटिंग सैलून खोला और रात को तीन बजे वे दुकान खोलते थे। और सरदारों के मोहल्ले में, वो भी हेयर कटिंग सैलून! यह धंधा भी नहीं चला। फिर उन्होंने सोचा कि यह भी अपने वश का नहीं है। चलो, चूंकि तीन लकी नंबर है, इसलिए थ्रीव्हीलर ऑटोरिक्शा चलाते हैं। एक महीने मेहनत करते रहे एक भी पैसा नहीं कमा पाए, क्योंकि एक सामने बैठकर ड्राइविंग करता था, दो पीछे बैठे रहते थे। तब उन्हें

बहुत झुंझलाहट हुई और गुस्सा आया। उन्होंने कहा कि अब इस ऑटोरिक्शे को फेंक दिया जाए। नदी के किनारे गए और खींच के ऑटोरिक्शा को नदी में फेंकने की कोशिश की लेकिन वो तीनों उसमें भी असफल रहे, क्योंकि तीनों मित्रों ने एक–एक चाक को पकड़कर अपनी–अपनी दिशा में खींचा। रिक्शा टस से मस नहीं हुआ। हर कार्य में असफलता मिली। कारण, हमारे भीतर वे जो तीन गुण हैं– सत्व, रजस और तमस, वे हमें तीन पृथक दिशाओं में खींच रहे हैं।

धारणा के बाद, एकाग्र होने के बाद ध्यान को समझना आसान होगा। ध्यान को समझाना बड़ा कठिन है, कैसे समझाएं कि ध्यान क्या है? करो तभी जान सकोगे। इसलिए मैं समझाने पर उतना जोर नहीं दे रहा हूं। मेरा समझाना ऐसे समझना कि यह बस एक आमंत्रण है, आओ और ध्यान सीखो। ध्यान में तुम डूब सकते हो, जान सकते हो, मामला बड़ा सरल है। अनुभव कराना आसान है लेकिन समझाना बहुत कठिन है।

मुझे याद आता है नसरुद्दीन जब छोटा था स्कूल में पढ़ता था। बायलॉजी के शिक्षक ने एक दिन उससे पूछा कि एमफीबीएन का एक उदाहरण दो। एमफीबीयन अर्थात् ऐसे प्राणी जो पानी में भी रहते हों और जमीन पर भी। नसरुद्दीन ने कहा सर मैं बताऊं, मेंढक। सर ने कहा बिल्कुल ठीक। एक और उदाहरण दो, नसरुद्दीन ने फिर हाथ उठाया और कहा कि एक और मेंढक। शिक्षक ने कहा कि एक नया उदाहरण दो। नसरुद्दीन ने कहा एक और नया मेंढक। बस ऐसा ही है ध्यान के बारे में कुछ बोलना। तुम मुझसे कितना भी पूछो कि ध्यान क्या है? मैं कहूंगा ध्यान बस ध्यान है। तुम कहो कि और थोड़ा विस्तार से कहो तो मैं और लंबा कहूंगा, ध्यान.....। कुछ कहना बड़ा मुश्किल है, समझाना बड़ा कठिन है, लेकिन प्रयोग करना आसान है। तो मैं तुम्हें निमंत्रित करता हूं, आओ और ध्यान में डूबो। पतंजलि के इस सूत्र पर ओशो के अमृतवचन सुनो–

"दूसरा चरण ध्यान का, कला का मार्ग है। इसलिए कई बार कलाकारों को रहस्यदर्शियों जैसी झलकें मिलती हैं। इसलिए कई बार काव्य वह कह देता है जिसे गद्य में कभी नहीं कहा जा सकता, जिसे कहने का कोई उपाय नहीं है। कई बार पेंटिंग्स ऐसी झलकें दे देती हैं जिसे प्रगट करने का और कोई उपाय नहीं। किसी धार्मिक व्यक्ति की अपेक्षा एक कलाकार ऋषि के ज्यादा निकट होता है।

अगर कोई व्यक्ति कवि होने पर ही रुक गया तो उसका विकास थम गया। कवि को तो सतत् बहना है, ...और, और आगे बढ़ना है। पहले एकाग्रता से ध्यान तक और फिर ध्यान से समाधि तक। उसे तो चलते ही जाना है, बढ़ते ही जाना है। ध्यान विषय की ओर बहते हुए मन का अविछिन्न प्रवाह है। थोड़ा इसे अनुभव करना और अच्छा होगा कि ध्यान के लिए कोई ऐसा विषय चुनना जिसे कि तुम प्रेम करते हो। तब बड़ी आसानी से ध्यान में उतरना संभव हो सकेगा। अक्सर साधु–महात्माओं ने ऐसे विषय पर ध्यान करने के लिए कहा, जिससे तुम्हारा लगाव नहीं है, प्रेम नहीं है। "

ओशो की इस बात पर विशेष रूप से गौर करना। वे कह रहे हैं ऐसी बात पर ध्यान करो, जिसका तुम्हारे मन में सहज आकर्षण है। पतंजलि के साधनपाद के सूत्र में भी यह बात आई थी कि जहां तुम्हारा सहज आकर्षण हो वहां ध्यान को लगाना, यह आसान होगा। कई लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि हम ध्यान की बड़ी कोशिश करते हैं, लेकिन मन टिकता नहीं। कारण, वे गलत विषय पर ध्यान लगा रहे हैं। ध्यान लगेगा ही नहीं, धारणा भी नहीं बन पाएगी। मन यहां से वहां भागेगा। तो धारणा के लिए ऐसा विषय चुनना जिससे तुम्हारा लगाव है और तब ध्यान को समझना बहुत आसान होगा। वह ऊर्जा, वह शक्ति जो विषय की ओर बह रही है, वही ध्यान है।

ध्यान को समझाते हुए मैं एक बात और आपको बताना चाहूंगा कि परमगुरु ओशो ही पहले व्यक्ति हैं इस धरती पर जिन्होंने सामूहिक रूप से ध्यान शिविर लेने आरंभ किए और बड़े पैमाने पर लोगों को ध्यान के विषय पर बताना और उसका प्रयोग कराना आरंभ किया। तो आज के इस सत्र में एक छोटी सी कविता के माध्यम से ओशो के प्रति अपना अहोभाव व्यक्त करता हूं –

एक ओशो क्या मिल गए, जिंदगी ये नमन हो गई,
जिंदगी थी एक हादसा, अब तो चैनो अमन हो गई।
थे भटकते हवाओं के संग, सूखे पत्तों के मानिंद हम,
वो जो आए तो आई बहार, जिंदगी गुलचमन हो गई।
एक अंधेरी गुफा से निकल, आ गए सूर्य के गांव में,
उनसे मिल के लगा जिंदगी, रोशनी का जश्न हो गई।
जिंदगी बस हमारे लिए, शोरगुल का बस नाम थी,
उनसे मिल के जो सरगम छिड़ा, जिंदगी एक नज्म हो गई।
ये न पूछो अहम ने हमें कैसे–कैसे दिखाए थे दिन,
जब इबादत में सिर झुक गया, जिंदगी यह भजन हो गई।

ओशो की महान कृपा है! लाखों–लाखों लोगों को वे ध्यान की दिशा में मोड़ सके। उन्हें बहुत–बहुत धन्यवाद सहित मैं अहोभाव अर्पित करता हूं!!

समाधिः व्याधियों से मुक्ति

विभूतिपाद : 3

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

ध्यान जब स्वरूप से, शून्यवत् हो जाता है;
समाधि में मन–विषय, एकरूप हो जाता है।

समाधि में मन विषय के साथ एकरूप हो जाता है। सद्गुरु ओशो समझाते हैं– समाधि यानी समस्त व्याधि का मिटना, समस्याओं का समाधान होना, दृश्य व द्रष्टा का एकात्म होना, अनुभव के पार अकथनीय अवस्था।

ध्यान के बारे में ही समझाना अति कठिन है, समाधि के बारे में समझाना तो करीब–करीब असंभव है। करीब–करीब कह रहा हूं। कुछ इशारे किए जा सकते हैं, कुछ संकेत किए जा सकते हैं, बस। मैंने कहा धारणा का अर्थ है बाहर एकाग्रता, विषय महत्त्वपूर्ण है। ध्यान में सब्जेक्टिविटी महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों के पार एक तीसरी अवस्था है– बाहर और भीतर के द्वंद्व से मुक्ति। कहना चाहिए अ–मनी दशा, उन्मनी अवस्था। झेन फकीर इसे कहते हैं 'द स्टेट ऑफ नो माइण्ड'। यह मन की परमदशा भी कही जा सकती है और अ–मनी दशा भी कही जा सकती है। चूंकि वहां जानने वाला मन ही नहीं रहता, दृश्य और द्रष्टा एक हो जाते हैं, अद्वैत फलित होता है, इसलिए फिर उसका वर्णन भी कैसे हो! वर्णन करने वाला मन स्वयं भी वहां नहीं बचता।

मैंने सुना है शराबी नसरुद्दीन और उसका शराबी दोस्त विचित्तर सिंह, दोनों घर से बाहर बगीचे में बैठकर शराब पी रहे थे। चार पैग चढ़ाने के बाद विचित्तर सिंह ने कहा कि नसरुद्दीन तुमने कहा था कि तुमने आज ही एक नया मोबाइल फोन खरीदा है। अरे फोन का कुछ उपयोग करो। जरा मेरे घर फोन करके पता लगाओ कि मैं घर में हूं कि नहीं। नसरुद्दीन उठा और पता लगाने के लिए उसके घर जाने लगा। विचित्तर सिंह ने कहा अरे

नालायक जाने की क्या जरूरत है, फोन करके पूछ ले। घर के भीतर होना क्या है, घर के बाहर होना क्या है, ये दोनों बातें तो फिर भी समझी जा सकती हैं, लेकिन याद रखना तुम्हारा होना न बाहर है, न भीतर है। सामान्यतः हम नए–नए साधकों से कहते हैं अपने भीतर डूबो, याद रखना वह केवल शुरुआत की बात है। वहां भी अटक मत जाना। कुछ लोग हैं जो बाहर अटके हुए हैं, भीतर नहीं जा सकते, कुछ लोग हैं जिनको भीतर पकड़ लेता है फिर वे बाहर नहीं आ सकते। मुक्त कौन है? जो न भीतर से बंधा है और न बाहर से बंधा है। समाधि वह अवस्था है।

ऐसा समझो ठंड के दिन हैं और तुम्हें ठंड लग रही है। तुम बाहर बगीचे में कुर्सी डालकर धूप में बैठ गए। फिर थोड़ी देर में धूप तेज हो गई तो उठकर भीतर चले गए। न तुम बाहर से बंधे हो न भीतर से बंधे हो। उस आदमी को क्या कहें जो अपने घर के भीतर ही नहीं जा पा रहा है। बाहर धूप में परेशान है, गर्मी में पसीना–पसीना हो रहा है। वह बाहर से बंध गया है, भीतर जाने का द्वार उसे याद ही नहीं है। और उस आदमी को क्या कहोगे जो जनवरी की तेज ठंड में अपने घर के भीतर है। कह रहा है कि धूप में आना चाहता हूं मगर नहीं आ सकता। यह आदमी भीतर से बंध गया। दोनों ही मुक्त नहीं हैं। असल में परम कैवल्य को उपलब्ध वही है जो भीतर–बाहर के बंधन से मुक्त हो गया।

समाधि के इस सूत्र को समझाते हुए हमारे परमगुरू ओशो ने कहा है – वस्तुनिष्ठता, ऑब्जेक्टिविटी बाह्य संसार है और आत्मनिष्ठता, सब्जेक्टिविटी भीतरी संसार है। जब कि तुम न तो बाहर हो और न भीतर, तुम दोनों के पार हो। इसे समझना बहुत कठिन है। क्योंकि साधारणतः कहा जाता है कि अपने भीतर जाओ जब कि वह भी एक अस्थाई अवस्था है। उसके भी पार जाना है, उसके भी बियॉन्ड गति करनी है, बाहर और भीतर दोनों के पार। तुम वह हो जो बाहर जा सकता है और जो भीतर आ सकता है। तुम वह हो जो इन दोनों ध्रुवों के भीतर गतिमान हो सकते हो। तुम उन दोनों के पार हो, तुम तीसरी अवस्था हो। जब मन विषय के साथ एकरूप हो जाता है, तब वह समाधि है, ऐसा कहते हैं पतंजलि। जब दृश्य विलीन हो जाता है द्रष्टा में और द्रष्टा विलीन हो जाता है दृश्य में। जब न तो कोई देखने वाला बचा, न कोई देखा जाने वाला। जब द्वैत नहीं बचा तब एक अद्भुत शांति और मौन घटित होता है। तब यह नहीं बताया जा सकता कि क्या बचा। क्योंकि यह कहने बताने वाला भी नहीं बचा। समाधि के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि समाधि के बारे में कुछ भी कहना न कहने जैसा ही होगा। उस बारे में जो भी कहा जाए वह या तो वैज्ञानिक होगा अथवा काव्यात्मक होगा।

धर्म के बारे में सटीक वक्तव्य नहीं दिया जा सकता, वह अकथनीय है, अनिर्वचनीय है। कुछ लोग हैं जिन्होंने वैज्ञानिक ढंग से धर्म की व्याख्या की। उदाहरण के लिए स्वयं महर्षि पतंजलि, भगवान महावीर, भगवान बुद्ध, ये वैज्ञानिक चित्त के लोग हैं, तर्कनिष्ठ और बुद्धिजीवी हैं जो भीतर की उस अकथनीय बात को भी बौद्धिक तरीके से समझाते हैं। फिर

दूसरे प्रकार के संत हुए हैं, काव्यात्मक। उदाहरण के लिए चीन के संत लाओत्सु, ईसा मसीह, संत मीराबाई, सहजोबाई, चरणदास, दादूदयाल, कबीर साहब, गुरुनानक देव; इन्होंने कलात्मक तरह से, काव्यात्मक तरीके से भीतर की बात को समझाया। तो जब भी उसे व्यक्त किया जाएगा या तो वैज्ञानिक तरीके से कहना होगा या भावुक तरीके से कहना होगा... दो ही उपाय हैं। लेकिन याद रखना जो कहा जा रहा है वह इन दोनों के ही पार है। वहां भीतर क्या घटता है कहना बड़ा मुश्किल है। ऐसा समझो वहां अंतस और बाहर के पार, वह जो तीसरी अवस्था है, वहां पहुंचकर अखिल बह्म के साथ एकात्म घट जाता है। जिसके साथ हम होते हैं, उसी के समान हो जाते हैं। ऋषियों का यह वचन कि 'अहं ब्रह्मास्मि', मंसूर की यह घोषणा कि 'अनलहक'... ऐसा मत सोचना कि ये कोई exaggerated, अतिशयोक्तिपूर्ण वक्तव्य हैं। ये परमात्मा के साथ एक हो गए। शुरू-शुरू में जब समाधि होती है तो वह एकात्मीयता थोड़ी देर के लिए होती है, फिर-फिर समाप्त हो जाती है।

और इसलिए संत विरह के गीत गाते हैं, मीराबाई आंसू बहाती हैं। वे कहती हैं, अंसुअन जल सींच-सींच प्रेम बेल होई। क्या होता है, कभी समाधि लगती है, कभी समाधि नहीं लगती। कभी परमात्मा के साथ एक हो जाते और कभी-कभी फिर दुइ पैदा हो जाता। इसलिए शुरुआत की समाधि को सवितर्क समाधि, सविचार समाधि कहा जाता है। अभी विकल्प मौजूद है, समाधि से भिन्न अवस्था में भी वापस लौटना होता है। सुनो यह गीत –

दुनिया ही बदल जाती है मेरी जब तू की इनायत होती है
मिट जाते हैं दिल के गम सारे राहत ही राहत होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है।
आते हैं सब नजर अपने ही फिर कोई गैर नहीं होता,
सब दिल की नफरत मिटती है उल्फत ही उल्फत होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है।
कुछ ऐसा अपनी आंखों में बस जाता है नूरे हुस्न अजल,
हर वक्त निगाहों में रक्शां मोहिनी सूरत होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है।
दुख है तो यही मस्ती अपनी कायम सी नहीं रह पाती है,
एहसासे दुइ जब होता है बेहद ही उल्फत होती है,
ये कैसी मोहब्बत होती है।

समाधि लगती है, टूट जाती है। भक्त बड़ी पीड़ा से गुजरता है। उसके संताप को समझना मुश्किल है... कि मीराबाई क्यों रो रही हैं, आंसू बहा रही हैं? इन्होंने परमानंद को जाना है, लेकिन परमात्मा के साथ बिछुड़ना हो जा रहा है, सदा एक नहीं रह पा रहीं। फिर धीरे-धीरे निर्वितर्क, निर्विचार और निर्बीज समाधि की तरफ यात्रा होती है। फिर सदा-सदा के लिए समाधिस्थ अवस्था हो जाती है। फिर उस भगवत्ता में ही जीना होता है,

चौबीसों घंटे उसी में डूबना होता है। फिर कोई विकल्प नहीं बचा इसलिए उसको निर्विकल्प कहते हैं। अब कामना के कोई बीज नहीं बचे, इसलिए उस दुइ से छूटना, फिर दुइ में दुबारा गिरना नहीं होगा। एक बार डूबे सो डूबे सदा–सदा के लिए डूब गए। ओशो ने अपना नाम जब ओशो चुना, उसके अर्थ को समझना।

ओशो का अर्थ है जिसे Oceanic Experience हुआ... जैसे कोई बूंद सागर में गिर जाए और सागर ही हो जाए। अब बूंद अलग बची ही नहीं, वापस लौटने का कोई उपाय न बचा। ठीक ऐसे ही अस्तित्व की भगवत्ता के साथ जो ओत–प्रोत हो गया, जो एक हो गया, जिसकी अलग से अब कोई सत्ता न बची, वह निर्बीज समाधि में प्रवेश कर गया। और निश्चित रूप से जिसके संग हम हैं, जिसके साथ हम जुड़ गए, उसी के साथ हमारा तादात्म्य हो जाता है। संसार में भी ऐसा होता है; जो तुम्हारे मित्र हैं, जो तुम्हारे परिचित हैं, जिनके बीच तुम उठते–बैठते हो, उनके साथ तुम्हारा तादात्म्य हो गया। तुम हिन्दू परिवार में पैदा हुए, तुम अपने आप को हिन्दू मानने लगे। भारतीयों के बीच में तुम रह रहे हो, तुम्हारे मन में धारणा बन गई कि तुम भी भारतीय हो, जबकि तुम्हारी चेतना न हिन्दू है न मुसलमान, न भारतीय है न चीनी। तुम कोई भी नहीं हो, लेकिन संग–साथ का असर है। जैसे दर्पण के सामने कोई चीज गुजरे तो उसका प्रतिबिंब दर्पण में बनता है और दर्पण इस भ्रम में पड़ जाता है कि यही मैं हूं। दर्पण को माफ किया जा सकता है, लेकिन हम अपने बोध से च्युत होकर भ्रांति में उलझ जाते हैं, यह क्षम्य नहीं है।

मैंने सुना है छोटे विचित्तर सिंह से क्लासटीचर ने पूछा कि तुम किस खानदान से ताल्लुक रखते हो? आठ वर्षीय विचित्तर सिंह ने कहा कि सर जानवरों के खानदान से! शिक्षक ने पूछ क्या मतलब? विचित्तर सिंह बोला सर, मम्मी मुझे उल्लू का पट्ठा कहती है, पिताजी गधा कहकर डांटते हैं, दादाजी सुअर की औलाद कहते हैं, मेरी अधिक ऊंचाई होने के कारण पड़ोसी बच्चे मुझे ऊंट पुकारते हैं। डार्विन के सिद्धांत के मुताबिक मेरे पूर्वज बंदर थे लेकिन जहां तक मैं अपनी समझ से समझता हूं मैं एक पिल्ला हूं! शिक्षक ने आश्चर्य से कहा! पिल्ला। तुम्हें कैसे पता चला कि तुम एक पिल्ले हो? विचित्तर सिंह ने कहा सर, मेरे मम्मी–पापा का अक्सर झगड़ा होता है, तब मम्मी पापा से अक्सर गुस्से में कहती हैं कि तुम कुत्ते हो और पापा मम्मी से कहते हैं कि तुम कुत्ती हो। इसी से मैंने निष्कर्ष निकाला कि मैं पिल्ला हूं! जब कुत्ता और कुत्ती के साथ रहोगे तो स्वाभाविक निष्कर्ष है कि तुम पिल्ले हो! इसलिए सत्संग की इतनी महिमा कही जाती है। उन जाग्रत पुरुषों के साथ रहो, तुम ध्यानी, समाधिस्थ लोगों के साथ रहो जिन्होंने ब्रह्म को जाना है। उनके साथ रहते–रहते तुम्हारे पुराने तादात्म्य टूटेंगे और तुम अपने भीतर–बाहर दोनों के पार उस परम चैतन्य को जानोगे। क्योंकि तुम्हारा व्यक्तिगत चैतन्य भी नहीं है। जब हम कहते हैं कि भीतरी चेतना, तब उसमें एक इंडीविजुएल्टी है, इसलिए ध्यान में एक इंडीविजुएल्टी का, निजता का एहसास होता है। एक सूक्ष्म अस्मिता रह जाती है, एक 'हूं

पन', 'ऐम' की फीलिंग रह जाती है। समाधि में वह भी समाप्त हो जाती है, 'हूं पन' भी गया। सिर्फ 'है पन' रह जाता है, 'इज़नेस'। तो एक तो है बिल्कुल बाहरी अहंकार, व्यक्तित्व के तल पर, पर्सनाल्टी के तल पर, जिसे हम कहें अहंकार, मैं, इगो। फिर भीतरी तल पर अस्मिता, ऐमनेस और समाधि में फिर वह भी नहीं रह जाती। इज़नेस, सिर्फ होनापन। वह कौन है, वह क्या है, उस पर कोई लेबल नहीं लगाया जा सकता, मैं और तू भी नहीं कहा जा सकता।

संतों ने भांति–भांति से कहने का प्रयास किया है, लेकिन याद रखना ये सभी शब्द सटीक नहीं हैं। किसी ने कहा कि बस मैं ही मैं हूं, दूसरा कोई नहीं। ये कहने का एक तरीका है। किसी संत ने कहा कि बस प्रभु तू ही तू है, मैं बचा ही नहीं, किसी तीसरे ने कहा कि अब मैं तू हो गया है, तू मैं हो गया है। लेकिन बात बड़ी कंट्राडिक्ट्री हो गई, समझ नहीं आएगी। किसी ने कहा है न 'तू' है, न 'मैं' है बस एक शून्यता है। किसी ने कहा है कि बस एक पूर्णता है, भगवत्ता है। ये कहने के अलग–अलग अंदाज हैं। ये सब कहके ये बता रहे हैं कि हम उसके बारे में कुछ कह नहीं पाएंगे जिसके बारे में तुम सुनना चाह रहे हो।

तो प्यारे मित्रों आप से निवेदन करूंगा, ध्यान के बारे में, समाधि के बारे में जो मैंने आपसे कहा, मैं खुद ही आपसे कह रहा हूं कि वह ठीक–ठीक नहीं है, जो कहा जाना चाहिए वह मैं नहीं कह पाया और जो मैंने कहा है वह सटीक, एक्युरेट नहीं है। जाना जा सकता है, बताया नहीं जा सकता, ये ऐसी बात है। तो पतंजलि के ऊपर इस व्याख्यानमाला को बस एक निमंत्रण समझना, आमंत्रण समझना। आओ ध्यान में डूबो, समाधि का स्वाद चखो तुम सबको आमंत्रित करता हूं।

धन्यवाद!!

अष्टांग योग : एक विहंगम दृष्टि

आओ जानें हम, अब अनुशासन योग का;
चित्त से वियोग का, आत्मा से योग का।।

पतंजलि के साथ एक अद्‌भुत, अनूठी यात्रा पर हम चले। आओ एक बारे पीछे मुड़कर पुनरावलोकन करें साधनपाद के उत्तरार्ध का और विभूतिपाद के प्रथम तीन सूत्रों का।

सबसे पहले पतंजलि ने अष्टांग योग की बात की। आष्टांगिक है योग जिसके प्रथम चार आयाम – यम, नियम, आसन और चौथा प्राणायाम। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, के बाद समाधि घटती है, आठ चरण में योग की यात्रा पूरी होती है... सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सूत्रों में से एक। इस एक बीज वाक्य में अध्यात्म का पूरा सार संक्षेप आ गया। फिर एक–एक करके पतंजलि ने विस्तार से समझाया। सबसे पहले यम के बारे में कहा। यम अर्थात् वे पांच बातें जो तुम्हें समाज के साथ नहीं करनी हैं– हिंसा, चोरी, संग्रहवृत्ति, झूठ और कामुकता। यम का अर्थ है इन पांचो में उत्सुकता न होना। साधक को सबसे पहले समाज के साथ, परिवार के साथ, इस जगत के साथ शांति को साधना होगा, तभी वह अपने भीतर जा सकेगा। जब यम पूरे हो जाएं उसके बाद नियम–

जाति समय, स्थान, स्थिति की सीमा के पार यम के पंच महाव्रत हैं,
हर साधक के श्रृंगार शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान
ये पांच हैं नियम शुद्ध कर देते तन–मन प्राण।

इन पांच बातों की सभी धर्मों में महत्ता कही गई है। भगवान महावीर ने जैन धर्म में भी इन्हें पंच महाव्रत कहा है। इन्हें पूरा करना ही होगा, तभी कोई व्यक्ति स्वयं के भीतर प्रवेश कर सकेगा। नकारात्मक चिंतन से यदि मन हो कभी अशांत, उल्टे सकारात्मक भावों से हो

जाता वह शांत। लोभ, क्रोध या मोह जनित हिंसा से पीड़ा मिलती, उल्टे सद्भावों से ही फिर इनसे मुक्ति मिलती। एक बड़ी सरल विधि ओशो ने दी है। जब भी कोई निगेटिव इमोशन्स, नकारात्मक विचार, भाव तुम्हारे भीतर हो पूरी श्वास बाहर छोड़ देना। भाव करना वह निगेटीविटी बाहर चली गई, श्वास को बाहर रोक लेना। इसका ठीक विपरीत भी किया जा सकता है। जिन सद्भावों को तुम चाहते हो कि तुम्हारे भीतर आएं, भीतर आती श्वास के साथ भाव करना कि तुम प्रेमपूर्ण हो रहे हो, करुणावान हो रहे हो, मंगलकामना से भर रहे हो और भीतर कुछ क्षण श्वास को रोकना। शीघ्र ही तुम पाओगे तुम्हारे भीतर सद्भावों की वृद्धि होने लगी। जब कभी कोई नकारात्मक विचार पकड़े, उसके उल्टे, विपरीत विचार पर मनन करना। जब क्रोध पकड़े करुणा का स्मरण करना, जब घृणा उत्पन्न हो प्रेम के भाव से भरना। ओशो की एक किताब है 'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया'। उसमें यम-नियम के बारे में खूब विस्तार से उन्होंने समझाया है।

पतंजलि आगे कहते हैं –

योगी जहां अहिंसा में पूर्ण प्रतिष्ठित होते,

वहां उनका सान्निध्य लोग सब बैर भाव खो देते।

अद्भुत घटना घटती है! जो व्यक्ति स्वयं अहिंसक हो गया, प्रेमल हो गया, उसके आस-पास प्रेम की तरंगे फैलने लगती हैं। जैसे घृणा से घृणा पैदा होती है, ठीक वैसे ही प्रेम से प्रेम ही पैदा होता है।

प्रेम की बात जमाने में निराली देखी,

प्रेम की प्रेम से फलती हुई डाली देखी,

प्रेम इंसान को इंसान बना देता है,

प्रेम पत्थर को भी भगवान बना देता है।

आगे कहते हैं पतंजलि –

सत्यनिष्ठ योगी जो कहता, क्या करता उद्योग,

वैसा ही फल आने लगता बन जाते संयोग।

सत्यनिष्ठ का अर्थ हुआ जो अस्तित्व की सत्ता के साथ, परम सत्य के साथ एक हो गया, अब वह जो करता है या कहता है, वह स्वयं नहीं कह रहा है, वह अस्तित्व का माध्यम बन गया। वह तो बांस की पोली पोंगरी के समान अस्तित्व की बांसुरी बन गया। इसलिए उसके कहे वचन सत्य होने लगते हैं, क्योंकि उसके वचन अब उसके नहीं हैं, अस्तित्व की ही प्रेरणा से आए हैं।

जो ईमान का पालन करता है अपने जीवन में,

रत्न जवाहर मोती बरसें उसके घर-आंगन में।

जिस व्यक्ति के भीतर अचौर्य और अस्तेय को प्रतिष्ठा मिल गई, अब जो दूसरों के प्रति ईर्ष्यालु नहीं है, महत्वाकांक्षी और प्रतियोगी नहीं है, उसे अपने भीतर का खजाना

दिखाई पड़ने लगता। ऐसा नहीं है कि मोती बरसने लगते हैं। बरस ही रहे थे सदा–सदा से, लेकिन चूंकि हमारी नजर चोर की थी, हम दूसरों की चीजों पे नजर रखे हुए थे, इसलिए हमें अपने आंतरिक खजाने का पता नहीं चल रहा था।

बह्मचर्य में उर्ध्वगमन कर जो योगी जीता है,
बीजवान होकर जीवन का वह अमृत पीता है।

ब्रह्मचर्य का विराट अर्थ लेना, ब्रह्म जैसी चर्या, प्रभु जैसा आचरण। बह्मचर्य को सिर्फ काम से मुक्ति मत समझना, वह तो उसका एक छोटा सा हिस्सा है। ब्रह्मचर्य बड़ी विराट घटना है, बह्म जैसा आचरण।

अपरिग्रह में जब योगी पूर्ण प्रतिष्ठित होता,
अपनी महा–जिंदगी का तब ज्ञान उसे है होता।

जिस व्यक्ति की नजर वस्तुओं से हटी, संग्रहवृत्ति जिसकी छूटी अब उसकी ऊर्जा कहां जाएगी? स्वयं पर आएगी। और तब उसे स्वयं का ज्ञान होगा, मैं कौन हूं, मैं कहां से आया, कैसे आया, क्या है मेरा गंतव्य, क्या है मेरे जीवन का लक्ष्य! आत्मज्ञान घटना शुरू होगा।

शौच ज्ञान से अपने तन का मैलापन दिखता है,
राग दूसरे के शरीर से फिर न कभी बनता है।

पतंजलि ने जुगुप्सा शब्द का प्रयोग किया है। पुराने जमाने में इसका अर्थ था, अनुत्सुकता, इनडिफरेंस, उपेक्षा भाव। समय के साथ भाषा और अर्थ बदल जाते हैं। आज की भाषा में जुगुप्सा का अर्थ घृणा हो गया। ओशो कहते हैं नहीं, पतंजलि का अर्थ घृणा नहीं है। योगी को अपने शरीर से घृणा नहीं होती। योगियों के सुंदर शरीर होते हैं, देखो महावीर का शरीर, बुद्ध का शरीर, कितने सुंदर, उनसे और ज्यादा सुंदर कौन हुआ! अपनी काया को गहन प्रेम करते हैं। लेकिन अब राग नहीं बचा, उसके साथ मोह और आसक्ति नहीं रही। पतंजलि आगे कहते हैं,

मन की शुद्धि से आती इन्द्रिय विजय की क्षमता,
प्रफुल्लता एकाग्रता व आत्मज्ञान की योग्यता।

ये तीन बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं– एकाग्रता, प्रफुल्लता और आत्मज्ञान की योग्यता। और इनका सूत्र क्या है? मन की शुद्धि। यह मन की शुद्धि कैसे हो? मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा ओशो की एक किताब ध्यानसूत्र अवश्य पढ़ें या ध्यानसूत्र के प्रवचन सुनें। उसके कैसेट और एम.पी.थ्री. भी उपलब्ध हैं। अद्‌भुत है यह प्रवचनमाला। मन की शुद्धि, विचारों की शुद्धि, भावों की शुद्धि, शरीर की शुद्धि, इसे बहुत विस्तार से ओशो ने समझाया है।

साधक को संतोष से अनुपम सुख मिलते हैं,
अहोभाव में जीने से सारे दुख मिटते हैं।

दो ढंग हैं जीने के– एक है शिकायत भाव में जीने का, एक है अहोभाव में जीने का। जो शिकायत में, कंप्लेनिंग नेचर में जी रहा है, वह दुख ही दुख पाता है। जो धन्यवाद भाव में, अनुग्रह में जीने लगा उसके जीवन में सुख ही सुख हो जाता है, संतोष घटित होता है। यहां संतोष का अर्थ लाचारी नहीं, मजबूरी नहीं, प्रफुल्लता और आनंद से परिपूर्ण एक अवस्था, जहां व्यक्ति पूरी तरह तृप्त हो गया, परितुष्ट हो गया।

तप से मिटे अशुद्धियां, शुद्ध होती हैं इंद्रियां
फिर जाग्रत हो जाती हैं भीतर सोई शक्तियां।

तप का भावार्थ ओशो ने सरलता और सहजता से किया है। एक सहज जीवन जियो, इससे बड़ा और कोई तप नहीं। तप को और विस्तार से समझने के लिए मैं साधकों को रिकमेंड करूंगा ओशो की किताब 'महावीर वाणी भाग–1' पढ़ें। इसमें बारह प्रकार के तप उन्होंने समझाए हैं। बहुत विस्तार से चर्चा की है। पतंजलि कहते हैं–

योगी के जीवन में जब स्वाध्याय घटित होता है
दिव्यता के संग तब एकत्व फलित होता है।

कई विद्वानों ने इसका अर्थ किया है कि देवताओं के साथ, दिव्य चेतनाओं के साथ बातचीत होती है, वार्तालाप होता है, देवता उतरते हैं आकाश से। ओशो कहते हैं नहीं, ऐसे कहीं देवता नहीं उतरते, लेकिन दिव्यता के साथ अपने ही भीतर जो भगवत्ता है उसके साथ एकत्व फलित होता है। पता चलता है कि यही हूं मैं। और स्वाध्याय के संबंध में ओशो कहते हैं, स्वयं का अध्ययन, शास्त्र का अध्ययन नहीं। पश्चिम में जो मनोविश्लेषण चलता है वह नहीं, वह तो मन के कूड़े–कचरे का, ऊपर पड़ी गंदगी का विश्लेषण है। स्वयं का अध्ययन तो तभी होगा जब मन शुद्ध हो जाए। इसलिए पतंजलि के सूत्र में मनोशुद्धि की बात पहले आई, स्वाध्याय बाद में।

जो साधक ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित होता है,
वही समाधि की सिद्धि से आलोकित होता है।

किसी ने पूछा है ओशो से कि क्या पहले जो यम, नियम, संयम कहे गए वे जरूरी नहीं, अगर समर्पण से ही सबकुछ हो जाएगा? ओशो कहते हैं समर्पण हो ही तब पाएगा जब तुमने पहले पूरी भूमिका निर्मित कर ली। समर्पण कोई क्रिया नहीं है जो हम कर सकें, समर्पण एक घटना है जो अपने आप घटती है। उसके पहले की भूमिका हमें बनानी होगी। पतंजलि आगे कहते हैं–

तन का सुखपूर्वक होना, स्थिर होना आसन है,
सहज तनाव रहित होना, यही योग का साधन है।

आसन के बारे में बड़ी भ्रांतियां फैली हैं। तथाकथित योगीगण एक से एक विचित्र सर्कस की तरकीबें सिखाते हैं। उल्टे–सीधे आसन सिखाते हैं, जिनमें न तो कोई स्थिर हो सकता है, न कोई सुखपूर्ण हो सकता है। और पतंजलि की परिभाषा है 'स्थिर सुखम्

आसनम्'– जिसमें स्थिर हो जाओ और सुखपूर्वक रह सको, वही आसन है।

यत्न छोड़ दो शिथिल हो रहो कुछ भी नहीं करो,

रखो ध्यान असीम पर तुम आसन सिद्ध करो।

शरीर निश्चल हो जाए और मन भी ठहरने लगे। और मन को ठहराने की बड़ी सरल सी तरकीब है– असीम और अनंत पर ध्यान दो। मन क्षुद्र के साथ, सीमित के साथ आसानी से चलता है। जैसे ही तुम अनंत, असीम और अनादि का ख्याल करते हो, मन ठहर जाता है, अवाक हो जाता है।

आसन सिद्ध होने पर द्वंद्व सभी मिट जाते हैं,

तब साधक के जीवन में शांति के फल आते हैं।

हमारे तन और मन जुड़े हुए हैं। एक पुराना गीत आपने सुना होगा–

तन डोले मेरा मन डोले, मेरे दिल का गया करार रे,

अब कौन बजाए बांसुरिया।

तन और मन आपस में जुड़े हुए हैं। जिस व्यक्ति का तन स्थिर नहीं है, उसका मन भी स्थिर नहीं होगा। या इसका विपरीत जिसका मन डोल रहा है उसका तन भी चंचल हो जाएगा, गतिमान होगा। तो आसन के द्वारा अपने तन को स्थिर करना सीखो और फिर उसके बाद अपने मन को स्थिर करना सीखो। फिर चैन की बांसुरी बज सकेगी।

निश्चल आसन में बैठो फिर साधो प्राणायाम को,

रेचक, कुंभक या पूरक श्वास हमेशा थाम लो।

पतंजलि ने प्राणायाम के चार प्रकार कहे– रेचक, पूरक, कुंभक, आगे चौथे की चर्चा की।

रेचक, पूरक, कुंभक की अवधि एवं आवृत्ति,

देशकाल व संख्या के अनुसार है घटती–बढ़ती।

चौथा प्राणायाम सूक्ष्म है भीतर से संबंधित है,

प्रथम तीन के पार वह भिन्न अनूठा अद्‌भुत है।

इस चौथे प्राणायाम को गौतम बुद्ध ने अनापानसतीयोग कहा है।

रेचक, पूरक, कुंभक में हमने श्वास को एक खास व्यवस्था दी, एक खास ढंग से लिया, खास देर तक रोका। अनापानसतीयोग में हमने श्वास को बिल्कुल सहज, स्वाभाविक छोड़ दिया, अपनी तरफ से कुछ भी नहीं किया, केवल जागरूक रहे।

प्राणायाम के बाद सूर्य ढका हो बादल से वैसा आत्मप्रकाश है,

जब हट जाता आवरण तब खुलता आकाश है।

अब नए आयाम में प्रवेश होना शुरू हुआ।

जब सुखदायी थिर आसन प्राणायाम सध जाता,

तब मिट जाती चंचलता, एकाग्र मन हो पाता।

यहां एकाग्रता का अर्थ है – धारण करने की क्षमता, गर्भ की योग्यता।

प्रत्याहार में इंद्रियां उद्गम पे लौट आतीं,

विषयों से विमुख होकर वे अंतर्मुखी हो जातीं।

रिटर्निंग टू द सोर्स, जहां से चली थीं चेतना अपने घर वापस लौट आए।

सभी इंद्रियों का स्वामी योगी बन जाता जब,

धारणा, ध्यान, समाधि का दरवाजा खुल जाता तब।

याद करना मैंने वह कहानी कही थी, एक अमीर और उसके पांच नौकरों की। वे नौकर जो मालिक बन गए थे, लेकिन दो साल बाद जब मालिक तीर्थयात्रा से वापस आया, अचानक नौकर, नौकर हो गए। ठीक इसी प्रकार हमारी इंद्रियां, हमारी स्वामी बन गई हैं। भीतर वह चैतन्यरूपी मालिक प्रगट हो तो इंद्रियां फिर गुलाम हो जाती हैं।

मन को एकाग्र करना और ध्येय से बांधना,

विषय में सीमित रहना ही कहलाता है धारणा।

वैज्ञानिक एकाग्रता को साधते हैं। कलाकार, संगीतकार तल्लीनता को साधते हैं, ध्यान को साधते हैं।

निरंतर विषय की ओर मन का बहना ध्यान है,

साक्षी में ध्येय का एहसास है और ध्याता का भी भास है।

ध्यान में डबल ऐरोड कॉन्शासनेस हो गया। ऐसा समझो डंडे के दो छोर हैं– एक तरफ ऑब्जेक्ट है, एक तरफ सब्जेक्ट। दोनों का ध्यान है, दोनों का भान हो रहा है, दोनों का एहसास हो रहा है।

ध्यान जब स्वरूप से शून्यवत हो जाता है,

समाधि में मन विषय एकरूप हो जाता है।

इस ट्रिनिटी को ऐसा समझो जैसे स्टूल के तीन पैर होते हैं, वैसे ही धारणा, ध्यान, समाधि– ये योग के अंतरंग हैं।

तो पिछले सूत्रों में हमने योग के आठ अंगों की चर्चा की। शुरुआत के पांच अंग बहिर्अंग और धारणा, ध्यान, समाधि योग के अंतरंग हैं। मैंने सिर्फ समझाने के लिए आपसे बात नहीं की है, बल्कि आपको आमंत्रित किया है, प्रयोग करने के लिए, डूबने के लिए, समाधिस्थ होने के लिए।

धन्यवाद!!

संयम

शेष विभूतिपाद

महर्षि पतंजलि ने इस योगशास्त्र को चार खंडों में बांटा है। श्रेष्ठतम साधक के लिए समाधिपाद, मध्यम कोटि के साधक के लिए साधनपाद, निम्नतम कोटि के साधक के लिए विभूतिपाद... और कैवल्यपाद तो परिणाम है इस पूरी अंतर्यात्रा का। यह तो निष्कर्ष है, सारभूत निष्कर्ष।

आज हम संक्षेप में विभूतिपाद की चर्चा करेंगे। इसके तीन सूत्रों की चर्चा हम कर चुके हैं– धारणा, ध्यान और समाधि। चौथे सूत्र में पतंजलि कहते हैं इन तीनों का एकत्व सूत्र 'संयम' कहलाता है। संयम की अद्भुत परिभाषा की है। सामान्यतः हम संयमी व्यक्ति के बारे में नैतिक ढंग से सोचते हैं, उसके चरित्र के बारे में सोचते हैं।

पतंजलि कहते हैं जिसने धारणा, ध्यान, समाधि की इस त्रिवेणी को साधा, और याद रखना इस त्रिवेणी में गंगा, यमुना, सरस्वती की तरह सभी महत्वपूर्ण हैं, किसी को छोड़ा नहीं जा सकता। हां, अगर फिर भी चुनना हो तो ओशो ने बीच को चुना, ध्यान को। ध्यान को चुन लो, डंडे को बीच से पकड़ लो, दोनों छोर धारणा और समाधि तो हाथ में आ ही जाएंगे। ठीक इसी प्रकार पांचवे सूत्र में पतंजलि कहते हैं– इस संयम के सिद्ध होने पर उच्चतम चेतना का प्रकाश आविर्भूत होता है। वह व्यक्ति जिसने धारणा, ध्यान और समाधि साध लिया, वह प्रकाशित होने लगता है। उसके भीतर का अंधेरा मिटने लगता है।

कहते हैं पतंजलि कि संयम को क्रमशः चरण दर चरण संयोजित करना होता है। पतंजलि 'सडेन एनलाइटेनमेंट की बात नहीं करते। झेन फकीरों ने जापान में 'अचानक बुद्धत्व' की बहुत चर्चा की और उसकी वजह से मुश्किल खड़ी हो जाती है। साधक लोभ

और लालच से भर जाते हैं। पतंजलि मनुष्य के मन को ज्यादा गहराई से समझते हैं। वे कहते हैं– चरण दर चरण, एक–एक कदम चलना होगा, धीरे–धीरे। इसलिए साधक शुरुआत से ही धैर्य और प्रतीक्षा वाला बन जाता है। वह जल्दबाजी में नहीं होता, उसके भीतर फलासक्ति पैदा नहीं होती। फिर कहते हैं पतंजलि – प्रथम बताए गए पांच अंग अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिर्अंग हैं, उनकी तुलना में धारणा, ध्यान और समाधि– सबीज समाधि के अंतरंग हैं। किंतु फिर भी धारणा, ध्यान, समाधि निर्बीज समाधि के बहिर्अंग ही हैं। रिलेटीविटी की बात है। ये तीन अंग सबीज समाधि के तो अंतरंग हैं, किन्तु उसके भी आगे और है यात्रा, उसके हिसाब से फिर ये बहिर्अंग ही हैं। तो समाधि को ही अंतिम बात न समझ लें, उसके भी और आगे जाना है।

इसके बाद पतंजलि चार पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते हैं– निरोध परिणाम, निरोध संस्कार, समाधि परिणाम और एकाग्रता का परिणाम। शब्द थोड़े कठिन हैं, इसको आसानी से इस प्रकार समझ लें– जैसे–जैसे चित्तवृत्ति शांत होने लगती है, विचारों के बीच में अंतराल प्रगट होने लगता है, छोटे–छोटे गैप दिखाई पड़ने लगते हैं। क्रमशः मन और शांत होने लगता है, निर्विचार के अंतराल और बड़े होने लगते हैं। इन्हीं को इन चार शब्दों में व्यक्त किया गया है, क्रमिक रूप से विचारों की गति कम होने लगती है, निर्विचार अंतराल की अवस्था बढ़ने लगती है।

फिर पतंजलि कहते हैं कि उपरोक्त सूत्रों में कही गई बातें ही अन्य तथ्यों पर, इंद्रियों पर और उनमें होने वाले गुणधर्मोंपर और उनमें होने वाले रूपांतरण पर भी लागू होती हैं। ठीक इसी प्रकार इंद्रियों की वासना भी धीरे–धीरे कम होगी। अन्य दुर्गुण इसी प्रकार धीरे–धीरे भीतर से समाप्त होंगे। अन्य सब भाव धीरे–धीरे क्रमशः विकसित होंगे।

पतंजलि क्रमिक साधना में भरोसा करते हैं। कहते हैं उन परिणामों के अतीत, वर्तमान और भविष्य के गुणधर्म, चाहे वे प्रगट हों या अप्रगट, गुप्त हों या सक्रिय, वे सारे गुणधर्म आधार तत्वों में प्रविष्ट होते हैं। जैसे फूल का खिलना और मुरझना, इसकी कहानी बीज में ही लिखी होती है।

आज के आधुनिक विज्ञान की भाषा में हम कह सकते हैं, जैसे जेनेटिक इंजीनियरिंग वालों ने पता लगा लिया कि हमारे जींस में ही सारी कहानी लिखी है– कि वह प्राणी या पौधा कैसा होगा, क्या–क्या घटनाएं घटेंगी, सब कुछ पूर्वलिखित है, उसी के अनुसार सारी चीजें होंगी। और जिसे हम भूत और भविष्य कह रहे हैं, वास्तव में वह भी भूत और भविष्य नहीं है। शायद आपको पता हो कि हर लड़की जब अपनी मां के गर्भ से पैदा होती है, तब उसकी स्वयं की ओवरी में, अंडाशय में, वे सारे अंडे मौजूद होते हैं जो भविष्य में कभी बच्चे बनेंगे। एक भी नया ओवम, नया अंडा कभी पैदा नहीं होता। हां, हर महीने एक अंडा

परिपक्व होता है और गर्भाधान के लिए तैयार हो जाता है। किन्तु सारे के सारे अंडे जन्म से ही हर बच्ची लेकर आती है। उसकी मां जब जन्मी थी तब वह अपने भीतर ओवम लेकर ही आई थी और उसकी नानी जब जन्मी थी तब वह ओवम लेकर आई थी। इसका अर्थ यह हुआ कि आज जो मनुष्य जाति मौजूद है इन सबका बीज प्रथम व्यक्ति, प्रथम स्त्री के भीतर मौजूद था। नया कुछ भी नहीं है।

पतंजलि कह रहे हैं अतीत, भविष्य और वर्तमान के सारे गुणधर्म चाहे वे प्रगट हों या अप्रगट, वे मूल प्रकृति में अंतर्निष्ठ होते हैं, वे पहले से ही मौजूद होते हैं। क्रमों का भेद परिणामों के भेद के कारण है। आधारभूत प्रक्रिया में छिपी अनेकरूपता के द्वारा रूपांतरण में कई परिवर्तन घटित होते हैं। पतंजलि कह रहे हैं कि सब कुछ नियमानुसार हो रहा है। अगर कुछ बदलता हुआ नजर आता है, कुछ रूपांतरण हो रहा है, वह भी एक नियम से हो रहा है। यह फूल जो खिला है और मुरझाने लगा इसका भी एक नियम है। बादल आए और बरस गए इसका भी एक नियम है, गर्मी आई फिर बरसात आई इसका भी एक नियम है, सूरज उगा और डूबा इसका भी एक नियम है, सब चीजें नियमानुसार हो रही हैं। कोई बाल्याभील वाल्मीकि बन जाता है, ऋषि बन जाता है, कोई हत्यारा अचानक महात्मा बन जाता है, यह भी एक नियम के तहत है। चमत्कार जैसी कोई चीज नहीं है।

इसके पश्चात महर्षि पतंजलि सूत्र नंबर 16 से लेकर सूत्र नंबर 49 तक तथाकथित चमत्कारों का वर्णन करते हैं। इसलिए नहीं कि चमत्कारों के लोभ में पड़ो, लालच में पड़ो, बल्कि इसलिए कि इनसे सावधान रहो। ये सिद्धियां हैं जो अध्यात्म के मार्ग पर मिलती हैं किन्तु ये आध्यात्मिक नहीं हैं, ये मानसिक शक्तियां ही हैं। बड़ी विलक्षण, इनमें कुछ चमत्कार जैसी लग सकती हैं और इसी में खतरा है, अहंकार उत्पन्न हो सकता है।

मैं इन सिद्धियों का केवल जिक्र कर रहा हूं– अतीत और भविष्य का ज्ञान, शब्दों में छिपा हुआ भावार्थ का ज्ञान, पूर्व जन्म की जानकारी, दूसरों के मन में चल रहे विचारों का ज्ञान, योगी के शरीर का अदृश्य हो जाना, ध्वनि तरंगों का खो जाना, अपनी मृत्यु की घड़ी की पूर्व सूचना, मैत्रीभाव पर संयम करने से कुछ विशेष गुण की सक्षमता, हाथी बल पर संयम करने से हाथी जैसी शक्ति की प्राप्ति, पराभौतिक सूक्ष्म प्रच्छन्न और दुरुस्त तत्वों का ज्ञान, सौर ज्ञान, तारे–नक्षत्रों का ज्ञान, चंद्रगति का ज्ञान, अपनी देह रचना का ज्ञान, कंठ पर संयम करने से भूख–प्यास पर नियंत्रण, पूर्व नाड़ी पर नियंत्रण करने से श्वास पर नियंत्रण, उर्ध्वगामी ऊर्जा द्वारा दिव्य चेतनाओं से संपर्क, प्रतिभा का जन्म जो कि इंटेलिजेंस और इंट्यूशन दोनों के पार है, मन की प्रकृति और स्वभाव का ज्ञान, पुरुष का ज्ञान, अतींन्द्रिय ज्ञान, परकाया प्रवेश की क्षमता, गुरुत्वाकर्षण के पार निर्भार होने की शक्ति, पराभौतिक श्रवण की शक्ति, योगी का आकाशगामी होना, विदेह की अनुभूति और

अणिमा, ललिमा, महिमा इत्यादि आठ प्रकार की सिद्धियां और सर्वज्ञता। ये सारी विलक्षण प्रतिभाएं पैदा होती हैं, अध्यात्म के रास्ते में मिलती हैं। लेकिन पतंजलि इनका वर्णन इसलिए कर रहे हैं ताकि चुपचाप इन्हें देखते हुए गुजर जाओ। इनमें उलझने की जरूरत नहीं है। ये आकर्षित करेंगी, लेकिन याद रखना शक्तियां शक्तियां ही हैं, चाहे वे बाहर के जगत की हों या भीतर के जगत की।

एक बार जरा अपने भीतर सोचना कि तुम्हें शांति चाहिए कि शक्ति चाहिए। दोनों अलग–अलग बातें हैं।

ओशो ने इसकी बड़ी सुंदर व्याख्या करते हुए कहा है–

जब व्यक्ति को प्रतिभा की पहली–पहली झलक मिलती है तो वह इतना शक्ति–संपन्न हो जाता है, इतने विलक्षण ताकतों से भर जाता है, इतना बलशाली हो जाता है, एक ऐसी घड़ी आती है कि व्यक्ति फिर वहां से पतित हो सकता है। शक्ति उसे विकृत कर सकती है और इस कारण उसका पतन हो जाता है। जब व्यक्ति अपने को इतना अधिक बुद्धिमान समझने लगता है तो वह अहंकारी हो जाता है। वह उस शक्ति पर सवार होकर मजा लेना चाहेगा, फिर वह चमत्कार या इस प्रकार की कुछ मूर्खताएं करने लगेगा। सभी प्रकार के चमत्कार दिखाने वाले लोग एक तरह से मूढ़ और मूर्ख ही होते हैं, चाहे वे कहें कुछ भी। वे कह सकते हैं कि यह चमत्कार लोगों की मदद के लिए कर रहे हैं लेकिन वास्तव में वे किसी की सहायता नहीं कर रहे हैं, वे स्वयं को ही नुकसान और क्षति पहुंचा रहे हैं और अपने साथ दूसरों को भी भटका रहे हैं। क्योंकि इन चमत्कारों को दिखाने के चक्कर में और पार जाने के चक्कर में वे और–और नीचे गिरते जा रहे हैं। और तब पूरी की पूरी बात सिवाय चालाकी और धूर्तता के, कुछ भी नहीं रह जाती। पतंजलि कहते हैं –

ये वही शक्तियां हैं जो बहिर्मुखी मन के लिए तो सिद्धियों के समान हैं किन्तु समाधि के मार्ग पर बाधाएं हैं। इस वचन को खूब अच्छे से याद रखना। पतंजलि आगे कहते हैं– विवेक एवं प्रतिभा से वैराग्य होने पर दोषों के बीज नष्ट होते हैं और तब व्यक्ति मुक्ति की तरफ अग्रसर होता है। न तो अशुभ से बंधना, न शुभ से। महावीर ने कहा है– पाप लोहे की जंजीर जैसा है, पुण्य सोने की जंजीर जैसा। लेकिन जंजीर तो जंजीर है, पाप और पुण्य दोनों से मुक्त हो जाना। मूढ़ता और विवेक दोनों से मुक्त हो जाना। आगे पतंजलि और सावधान करते हैं कि देवताओं के द्वारा विभूतियों के प्रलोभन दिए जाएंगे, लालच दिया जाएगा और तब लालच में आने पर अथवा इन शक्तियों से लगाव करने पर या घमंड महसूस करने पर पुनः अनिष्ट हो जाएगा अर्थात् आध्यात्मिक पतन हो जाएगा। इन शक्तियों से भी मोह न रहने पर बंधन के बीज नष्ट होते हैं और तब व्यक्ति कैवल्य की तरफ आगे बढ़ता है।

52वां सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है, वर्तमान क्षण और उसके क्रमों में संयम करने से

वास्तविक विवेक उत्पन्न होता है। ओशो की मूल शिक्षाओं में से एक है वर्तमान में जियो, वर्तमान का यह क्षण ही सब कुछ हो। ऐसे जियो कि यही आखिरी क्षण है। मन का पेण्डुलम भूत–भविष्य में डोलता है, वह मध्य में ठहर जाए, वर्तमान में ठहर जाए, यही असली अध्यात्म है। जाति, लक्षण व देश से भेद का निश्चय न होने पर दो तुल्य वस्तुओं का विवेक से, ज्ञान से भेद तय होता है। सबसे महत्त्वपूर्ण भेद जो हमें करना है, वह 'स्व' और 'पर' का भेद है। इसी को नीर–क्षीर विवेक कहा गया है। एक काव्यात्मक प्रतीक बन गया हंस का कि मिश्रण में से हंस दूध और पानी को अलग–अलग कर लेता है इसलिए हम ज्ञानी को परमहंस कहते हैं। और सबसे बड़ी बात क्या है जो हमारे भीतर मिश्रित हो गई है? मेरा मूलतत्व, मेरा स्वभाव क्या है और बाहर के प्रभाव क्या हैं, वे सब मिश्रित हो गए हैं। इसको अलग करना सीख जाएं, महावीर ने इसे ही भेद विज्ञान कहा है यानी 'स्व' और 'पर' में भेद करना।

54वें सूत्र में पतंजलि कहते हैं कि ऐसी प्रभा अपने आप उत्पन्न होती है, सब उसके विषय होते हैं, वह किसी का विषय नहीं होती। एक क्षण में ही अतीत, वर्तमान और भविष्य का युगपत ज्ञान घटित होता है। और विभूतिपाद का अंतिम सूत्र है कि चित्त और पुरुष की शुद्धि समान होने पर कैवल्य घटित होता है। पुरुष शब्द आत्मा के लिए प्रयोग किया जाता है, पुर में रहने वाला, पुर यानी शहर जैसे कानपुर, नागपुर, जबलपुर, माधवपुर इत्यादि।

यह शरीर एक शहर है, पुर है, अरबों, खरबों कोशिकाओं से निर्मित और जिसके भीतर चेतना निवास कर रही है वह पुरुष है। और पुरुष जब स्वयं को चित्त से, शरीर से, संसार से भिन्न जान लेता है तब असली मुक्ति फलित होती है। ऐसा समझना चित्त है लहर जैसी और पुरुष है सागर जैसा। लहरों में मत उलझ जाना, सागर की खोज में और–और गहरे चलना। अंतिम बात मैं कहना चाहूंगा विभूति के बारे में। विभूति के दो अर्थ हैं, एक शक्ति और दूसरा राख। बड़े अद्‌भुत हैं वे ऋषि जिन्होंने यह शब्द गढ़ा।

ये सारी शक्तियां, ये चमत्कारिक विलक्षण प्रतिभाएं, ये सब राख के तुल्य हैं, ध्यानी के मार्ग पर इनका कोई मूल्य नहीं है। इसलिए मैंने विभूतिपाद को केवल संक्षिप्त में वर्णन किया है। सावधानी के तौर पर, यह बताने के लिए कि रास्ते में ये गड्ढे आएंगे, इनमें गिर मत जाना। इन शक्तियों में उलझ मत जाना। तुम्हें जाना है कैवल्य की ओर।

धन्यवाद!!

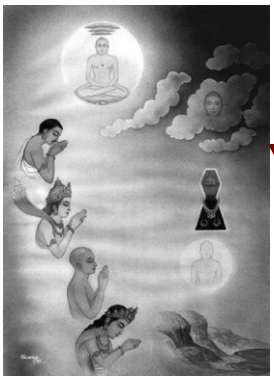

मोक्ष क्या है?

कैवल्यपाद

पश्चिम के महान दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र ने कहा है – द अदर इज हेल, दूसरा नर्क है। बड़ी गहरी बात उसने कहीं, सारे दुखों का कारण दूसरा है। लेकिन उसकी बात अधूरी है। भारत के ऋषियों ने इस बात को पूरा कहा है– उन्होंने कहा है स्वयं के एकान्त में डूब जाना स्वर्ग है। सांत्र इस बात से चूक गया। यह उसी का दूसरा पहलू है। वह बहुत विद्वान था लेकिन दूसरे पहलू को न देख पाया। आज हम कैवल्यपाद की चर्चा करने जा रहे हैं। कैवल्य का अर्थ है जहां केवल तुम ही रह गए, बस। परम एकांत में, परम मौन में दूसरा कोई नहीं बचा। और बड़े मजे की बात है कि जहां दूसरा नहीं बचा, वहां तुम भी नहीं बचे। क्योंकि मैं और तू रिलेटिव टर्म हैं, सापेक्ष शब्द हैं। जहां कोई दूसरा ही नहीं वहां तुम भी कहां बचे! उसका नाम है कैवल्य, उसका नाम है मोक्ष।

आओ पतंजलि के कैवल्यपाद की संक्षिप्त चर्चा करें, एक विहंगम दृष्टि से देख लें। विस्तार से चर्चा इसलिए नहीं कर रहा हूं क्योंकि इसकी कोई जरूरत नहीं है। कैवल्यपाद परिणामस्वरूप घटित होता है। आप साधनपाद और समाधिपाद की साधना करें, कैवल्यपाद अपने आप आ जाएगा। उसकी चर्चा की जरूरत नहीं है, सिर्फ एक विहंगम दृष्टि। पतंजलि कहते हैं–

विलक्षण सिद्धियां पांच प्रकार से प्राप्त होती हैं – जन्म से, औषधि से, मंत्र से, तप से और समाधि से। कुछ लोग जन्मजात ही विलक्षण शक्ति लेकर आते हैं। अभी थोड़े दिन पहले ही डिस्कवरी चैनल पर मैं देख रहा था कि बारह साल का एक बच्चा हिमाचल प्रदेश में पैदा हुआ, चंडीगढ़ में पढ़ता है। 6 साल की उम्र से ही उसने सर्जरी करनी शुरू कर दी और 12 साल की अवस्था में तो वह बड़े–बड़े कैंसर स्पेशलिस्ट्स से मीटिंग कर रहा है। लंदन में

उसकी मीटिंग थी उसका इंटरव्यू दिखाया जा रहा था। कैंसर के बड़े विशेषज्ञों को वह सलाह दे रहा था कि कैंसर का ऑपरेशन कैसे करना चाहिए, कैसे इलाज करना चाहिए। 12 साल का बच्चा! कुछ लोग जन्मजात विलक्षण प्रतिभा लेकर आए हैं, लेकिन इसमें भी कोई चमत्कार नहीं है। केवल पूर्व की स्मृतियों के कारण ऐसा होता है। पश्चिम का एक बहुत बड़ा संगीतकार चार वर्ष की ही उम्र में महान संगीतकार बन गया था, जग प्रसिद्ध हो गया था। तो जन्म से, औषधि से, मंत्र से, तप से और समाधि से सिद्धियां प्राप्त होती हैं। लेकिन याद रखना ये सिद्धियां अध्यात्म का लक्ष्य नहीं हैं। इस संबंध में पुनः परमगुरू ओशो के वचन पढ़कर सुनाऊं–

अंतर्विकास के मार्ग में बहुत सी बाधाएं भी आती हैं। भीतर के पथ पर प्रत्येक क्षण नया–नया अन्वेषण होता है। हर क्षण कुछ न कुछ घटता रहता है, तुम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते और तुमने उन चीजों की मांग भी न की थी। अंतर्यात्रा के रास्ते में अनेक भेंटें मिलती हैं लेकिन परमात्मा को वही उपलब्ध होता है जो इन भेंटों को वापस परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देता है। अगर उन भेंटों को तुम पकड़ने लगे तो तुम्हारा विकास रुक जाएगा और पतन शुरू हो जाएगा।

पतंजलि कहते हैं – अगर तुम्हें समाधि की आकांक्षा है, तुम्हें परम शांति, परम मौन, परम सत्य चाहिए तो किसी भी तरह की शक्ति से, उपलब्धि से जुड़ाव मत बनाना... फिर चाहे वह इस लोक की हो अथवा उस लोक की, मनोवैज्ञानिक हो या परामनोवैज्ञानिक हो, बौद्धिक हो या अंतर्बोधयुक्त हो... कुछ भी हो, किसी भी तरह की शक्ति के मोह में मत पड़ना। उसे परमात्मा के चरणों में समर्पित करते चले जाना। और बहुत कुछ घटेगा, तुम तो बस उसे प्रभु के चरणों में चढ़ाए चले जाना। जब व्यक्ति अपना सर्वस्व प्रभु के चरणों में चढ़ा देता है, यहां तक कि स्वयं को भी उसके चरणों में चढ़ा देता है, तब परमात्मा अवतरित होता है। जब सभी कुछ परमात्मा के चरणों में चढ़ा दिया गया, उसी परम को वापस कर दिया गया तो फिर परमात्मा अंतिम भेंट की तरह, अंतिम उपहार की तरह स्वयं चला आता है। परमात्मा अंतिम उपहार है, अंतिम भेंट है। इस सावधानी को स्मरण रखना।

आगे पतंजलि कहते हैं गुणों का एक प्रकार से दूसरे प्रकार में रूपांतरण भी प्राकृतिक संभावनाओं के कारण होता है। कई बार हमें विलक्षण चीजें दिखाई पड़ती हैं। कोई लड़की की तरह पैदा हुई थी और बड़ी होकर वह लड़का बन गई। लेकिन इसमें भी प्राकृतिक संभावनाएं थीं। यह भी कोई विचित्र और चमत्कारिक बात नहीं है। उसके हार्मोन्स में, उसके ग्लैंड्स में कुछ संभावनाएं छिपी थीं, इस प्रकार होने की।

पतंजलि कहते हैं– यह सब प्राकृतिक संभावनाओं के नियामानुसार ही होता है, चमत्कार जैसी कोई चीज नहीं है। वे कहते हैं निमित्त कारण नहीं है। बड़ा महत्त्वपूर्ण वचन है। अकसर हम अपने जीवन में बहुत से दुख इसलिए झेलते हैं, हम निमित्त को कारण समझते हैं। एक आदमी ने मेरा अपमान कर दिया और मैं क्रोधित हो गया। मैं समझता हूं कि यह

व्यक्ति कारण है मुझे क्रोध दिलाने का। जबकि वास्तविकता यह है कि क्रोध मेरे भीतर पहले से ही मौजूद था। यह व्यक्ति उसे प्रगट करने का केवल निमित्त बना।

मुझे याद आती है एक घटना, एक पश्चिमी आदमी भारतभूमि में आया। वह जिस देश से आया था वहां केला नहीं होता था। यहां पहली बार उसने केले का फल देखा। एक सब्जी की दुकान से उसने केला खरीदा, पूछा कि यह क्या है? उन्होंने कहा इसको केला कहते हैं। उसने पूछा इसे कैसे खाया जाता है? सब्जी बेचने वाले ने बताया कि इसका छिलका उतार देना और भीतर जो है उसे खा लेना, छिलका फेंक देना। वह आदमी ट्रेन से यात्रा करने जा रहा था, केले अपने साथ लिए। रास्ते में उसे भूख लगी, उसने केला बाहर निकाला, उसका छिलका छीला और जैसे ही उसने केला खाया, संयोग की बात उसी समय ट्रेन एक सुरंग में घुसी अंधेरा छा गया। वह व्यक्ति जोर से चिल्लाया कि अरे! बड़ा खतरनाक फल है, इसको चखते ही मैं अंधा हो गया हूं। निमित्त को हम कारण समझ लेते हैं!

पतंजलि चेता रहे हैं– वे कह रहे हैं कि खिड़की खोलने से सूर्य की किरणें भीतर आ जाती हैं, तुम यह मत सोच लेना कि खिड़की खोलने से सूरज उगा। और रुकावट हटा देने से पानी बह जाता है, चट्टान हटा देने से झरना फूट जाता है, यह भी निमित्त है झरने का, कारण नहीं है, पानी तो पहले से ही मौजूद था। सब चीजें निसर्ग के अनुसार हो रही हैं। अस्मिता के कारण मन जन्मता है। ऐसा समझना चेतना का सागर है, अस्मिता की हवा है और चित्त की तरंगे हैं। जब अस्मिता की हवा चलती है तो चित्त की तरंगें पैदा होती हैं। मन विविध प्रकार के होते हैं, किन्तु एक मौलिक मन से नियंत्रित होते हैं। यहां मौलिक मन से तात्पर्य है, सागर का। और विविध प्रकार के मनों से तात्पर्य है, तरंगों का। तो हर तरंग के पीछे सागर ही है और वही सबका नियंत्रण कर रहा है। ध्यान से उत्पन्न मौलिक मन कामनारहित होता है, निष्काम होता है। योग के कर्म निष्काम होने के कारण न तो शुक्ल कहे जाते हैं, न कृष्ण। जबकि सामान्यजनों के कर्म या तो पापयुक्त होते हैं या पुण्ययुक्त होते हैं अथवा मिश्रित होते हैं। सामान्यजनों के कर्म तीन प्रकार के होते हैं, लेकिन योगी इस परिभाषा में नहीं आते क्योंकि वे कामनारहित कर्म कर रहे हैं। उनके कर्म सहज हैं, ऊपर से देखने में बहुत भिन्न–भिन्न हो सकते हैं।

महावीर फूंक–फूंक कर कदम रखते हैं कि चींटी पर भी पैर न पड़ जाए, अहिंसा का इतना ख्याल! और कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मजे से युद्ध करो, कोई मरता ही नहीं! दोनों अमृत तत्व को जानते हैं, महावीर भी और कृष्ण भी। दोनों के कर्म बहुत भिन्न दिखाई पड़ेंगे। लेकिन दोनों की अंतर्आत्मा एक सी है, दोनों के ऊपर कर्म करने का कोई बंधन नहीं है।

पाप और पुण्य मिश्रित होते हैं, यह धारणा भी बड़ी अद्भुत है। पाप और पुण्य अलग–अलग नहीं हो सकते, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उदाहरण के लिए यदि तुम कहते हो कि दान देना पुण्य है और चोरी करना पाप है तो मुझे बताओ बिना चोरी किए दान दोगे

कैसे? जो आदमी आज धनी है वही तो दान कर पाएगा और उसने धन इकट्ठा कैसे किया? शोषण करके। शोषण करना पाप है और दान देना पुण्य है। लेकिन दोनों चीजें आपस में जुड़ी हुई हैं, एक के बिना दूसरा हो ही नहीं सकता, इसलिए मिश्रित प्रकार।

पतंजलि आगे कहते हैं कि अनुकूल परिस्थितियां पाकर ये तीनों प्रकार के कर्म, फल की वासनाओं में अंकुरित होने लगते हैं। हो सकता है एक योगी सालों गुफा में बैठा रहा हो और सोचता हो कि ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो गया लेकिन जब वह शहर में उतरता है, अपने जंगल, पहाड़ को छोड़कर तब स्थिति को देखकर उसके भीतर फिर वासना उत्पन्न हो सकती है। अनुकूल परिस्थितियां पाकर ये बीज फिर अंकुरित हो जाते हैं। भले ही जाति, देश, काल में अंतर पड़ जाए, किन्तु स्मृति और संसार में जड़ें जमाए हुए कर्मों के बीजों में भेद नहीं होता, वे ठीक मौसम की प्रतीक्षा करते हैं।

मैंने देखा ठंढे देशों में, अमेरिका में जहां बर्फ गिरती थी, चार महीने बर्फ जमी रहती थी, वहां गेहूं के बीज बर्फ गिरने के पहले ही बो दिए जाते हैं। फिर बर्फ गिरती है, चार महीने वे बीज दबे रहते हैं, छोटे–छोटे अंकुर बनकर। फिर चार महीने बाद जब बर्फ पिघलती है तब वे अंकुर फिर बढ़ना शुरू कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार हमारे चित्त में कर्म बीज संस्कार के रूप में मौजूद हैं, अवसर पाकर वे पुनः पुष्पित, पल्लवित होने लगते हैं। जीवेषणा सदा से है अतः वासना भी अनादि है। जीवेषणा, जीने की चाहत ही सब चीजों का कारण है। कार्य–कारण के सिद्धांतानुसार वासनाओं का कारण मिटने पर ही, वासनाएं नष्ट हो सकती हैं और कारण क्या है? जीने की वासना, जीवेषणा। भूत व भविष्य वर्तमान में मौजूद रहते हैं, किन्तु उनका एहसास नहीं होता क्योंकि उनका तल भिन्न–भिन्न होता है।

एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण घोषणा, भूत और भविष्य भी वर्तमान ही हैं, किन्तु तल भिन्न है। ऐसा समझें एक आदमी वृक्ष के ऊपर बैठा है और हम वृक्ष के नीचे बैठे हैं। ऊपर से आदमी कहता है कि मैं देखता हूं एक बैलगाड़ी आ रही है। हम नीचे बैठे हैं, हमें तो कोई बैलगाड़ी नहीं दिखाई पड़ रही। हम कहते हैं हमें तो दिखाई नहीं पड़ रही। फिर दस मिनट बाद बैलगाड़ी हमारे सामने से गुजरती है। अब बैलगाड़ी हमारे लिए वर्तमान बनी। हम पेड़ पर बैठे उस आदमी से कहेंगे कि अद्‌भुत! तुम तो बहुत बड़े भविष्यद्रष्टा हो। लेकिन वास्तव में तो वह भविष्यद्रष्टा नहीं है, उसका वर्तमान थोड़ा ज्यादा विराट था, फैला हुआ।

हम नीचे के तल में हैं, हमारा वर्तमान संकरा है, संकीर्ण है। फिर बैलगाड़ी हमारे सामने से गुजर गई, हमारे लिए पास्ट, अतीत का हिस्सा हो गई। लेकिन ऊपर बैठा हुआ वह आदमी कहता है कि बैलगाड़ी अभी भी मेरे सामने से जा रही है। हम कहते हैं अद्‌भुत! तुम तो अतीत को भी देख पाते हो। तो केवल तल की भिन्नता है, हम जिसे वर्तमान, भविष्य और भूत में बांट रहे हैं, ऐसा कोई विभाजन वास्तव में नहीं है। चेतना किस तल पर है, यह उसपर निर्भर करेगा। प्रगट हों चाहे अप्रगट, भूत, भविष्य, वर्तमान में सत्व, रजस, तमस, ये तीनों गुण उपस्थित रहते हैं और इन तीनों की मात्रा में अनुपात के भेद से प्रत्येक जीव अद्वितीय हो जाता है।

ओशो के जीवन में हम देखते हैं इन तीनों तत्वों का अलग–अलग प्रभाव। एक समय था जब ओशो इतने आलसी थे, इतने तामसी थे कि लेटे हुए हैं, सांप उनके ऊपर से गुजर गया और वे हिल भी नहीं रहे और सांप को हटा भी नहीं रहे। जिस हॉस्टल में वे रहे, दरवाजे के पास ही उन्होंने अपना बिस्तर लगा रखा था ताकि कमरे में भीतर चलना न पड़े। चार कदम भी कौन चले! जो किताबें पढ़नी हैं वे बिस्तर पर ही तकिए के पास रखी हैं। दोस्त आते थे कभी साल–छः महीने में झाड़ू लगा देते थे कमरे में, वरना धूल की दो इंच मोटी परत जम गई थी। क्योंकि उन्हें कमरे में भीतर कभी जाना ही नहीं था।

एम.ए. फाइनल की परीक्षा लेने के लिए प्रोफेसर खुद आए, पकड़कर कार में बिठाकर ले गए क्योंकि उन्हें पता है कि ये आलसी राम खुद परीक्षा देने आने वाले नहीं! इतने तमस में जिए! फिर उनके जीवन में रजस का फेज आया, दूसरा फेज। फिर इतने कर्मठ इतने ऊर्जावान हो गए कि महीने में 15 दिन तो ट्रेन में रहते थे। सुबह बंबई में प्रवचन दे रहे हैं, दोपहर को अहमदाबाद में किसी क्लब में मीटिंग है, रात को दिल्ली में ध्यान प्रयोग करा रहे हैं। फिर इतने ऊर्जावान, इतने कर्मठ हो गए!

इसके बाद फिर तीसरा फेज आया, सत्व का फेज। सन 1974 के बाद जहां तमस और रजस संतुलित हो जाते हैं, और जीवन के अंतिम फेज में गुणातीत अवस्था में चले गए, तीनों गुणों के पार हो गए। इन तीनों गुणों की मात्रा का अनुपात बदल जाने पर व्यक्तित्व में भेद बढ़ जाता है। एक ही वस्तु अलग–अलग चित्तों को भिन्न–भिन्न भासती है क्योंकि चित्त रंगीन चश्मे जैसा काम करते हैं।

किसी वस्तु की सत्ता चित्त पर निर्भर नहीं है, उसका ज्ञात होना या अज्ञात होना इस बात पर निर्भर है कि चित्त उसके रंग में प्रतिबिंबित हुआ या नहीं हुआ। चित्त की वृत्तियां उसके मालिक, शुद्ध चैतन्य को सदा ज्ञात होती हैं, मन स्वयं को नहीं जानता वह केवल दृश्य है और कभी द्रष्टा नहीं हो सकता। विषय और चित्त का युगपत ज्ञान, 'साइमेंटेनियस्ली नॉलेज' संभव नहीं है। अगर हम ऐसा माने एक परिवर्तनशील मन दूसरे मन को जानता है, दूसरा मन तीसरे मन को जानता है तो फिर एक इन्फ्रेडरिग्नेशन का दोष पैदा हो जाएगा। पतंजलि कहते हैं इसलिए यह भ्रम ठीक नहीं है, यह विभ्रम की अवस्था है। मन ही मन को नहीं जानता, चैतन्य मन को जानता है। निष्क्रिय चेतना स्वप्रतिबिंबित होकर स्वयं को जानती है, दृश्य या द्रष्टा से रंगा हुआ चित्त दर्पण के समान उन्हीं जैसा भासने लगता है।

अनगिनत वासनाओं से चित्रित मन संसार में उपयोग हेतु हमें मिला है, ऐसा जानने से आत्मज्ञान की भावना उदित होती है और व्यक्ति विवेक उन्मुख होने लगता है, मुक्ति की ओर अग्रसर होने लगता है। फिर भी विवेक और ज्ञान के बीच–बीच में जो अंतराल, छिद्र आते हैं, उनमें से मन की पुरानी प्रवृत्तियां और संस्कार बारंबार प्रवेश कर जाते हैं। वे फिर कर्म और क्लेश का कारण बनते हैं। उनसे मुक्ति पाने का उपाय है जागरूकता।

विवेक ज्ञान से भी विरक्ति होने पर गहन समाधि लगती है, जिसे पतंजलि 'धर्मभेद समाधि' कहते हैं। फिर कर्म और क्लेशों से निवृत्ति होती है। जब सारे दुख मिट गए तब मन को जानने योग्य कुछ बचा ही नहीं, मन का काम पूरा हुआ। याद रखना, जानना और दुख पर्यायवाची हैं। संस्कृत में विद् धातु से वेद बना, विद्वान बना। विद्वान यानी जानने वाला, वेद यानी ज्ञान की किताबें और वेद से ही वेदना बना। दुख ही जाना जाता है, आनंद की कोई अनुभूति नहीं होती।

पतंजलि कहते हैं जब सारी वेदनाएं समाप्त हो गईं तो उनको जानने वाले मन का काम ही खत्म हुआ और इसलिए मन तिरोहित हो जाता है। मन का काम समाप्त होने पर तीनों गुणों के परिणाम भी धीरे–धीरे खत्म होने लगते हैं। क्षण–प्रतिक्षण यह सूक्ष्म सिलसिला या क्रम चलता रहता है। इसका पूरा प्रभाव कुछ समय के बाद स्थूल रूप से प्रगट होता है। जैसे हमने जमीन में बीज दबा दिया, उसमें से अंकुर निकल रहा है लेकिन अभी हमें पता नहीं चल रहा। हो सकता है महीना भर बाद अंकुर बाहर आए, तब हमें पता चलेगा कि कुछ हो रहा है। लेकिन पिछले एक महीने में भी कुछ–कुछ हो रहा था, अंधेरे में, भूमिगत, अंडरग्राउण्ड। उसका हमें ज्ञान नहीं था।

ठीक इसी प्रकार ध्यान और जागरूकता की साधना करते हुए भीतर–भीतर कुछ पल्लवित होता है, लेकिन पता तब चलता है जब बात बाह्य रूप से प्रगट हो जाती है। एक उदाहरण से पतंजलि समझाते हैं– जैसे वस्त्र का जीर्ण होना। आपके घर में कपड़े रखे हुए हैं, वे कपड़े धीरे–धीरे पुराने पड़ते जा रहे हैं। एक दिन ऐसा आएगा कि छूने से ही फट जाएंगे। ये घटना किस दिन घटी? रोज–रोज प्रतिक्षण घट रही थी। ठीक इसी प्रकार त्रिगुणों का अपने कारण में लीन हो जाना, अर्थात् लहरों का सागर में वापस बैठ जाना ही कैवल्य है। इति कैवल्यपाद समाप्त।

महर्षि पतंजलि को नमन और प्यारे सद्गुरू को बारंबार नमन!!